योग-मञ्जूषा

माननीय गुरुवर श्री ब्रह्म० कृष्णदत्त जी महाराज
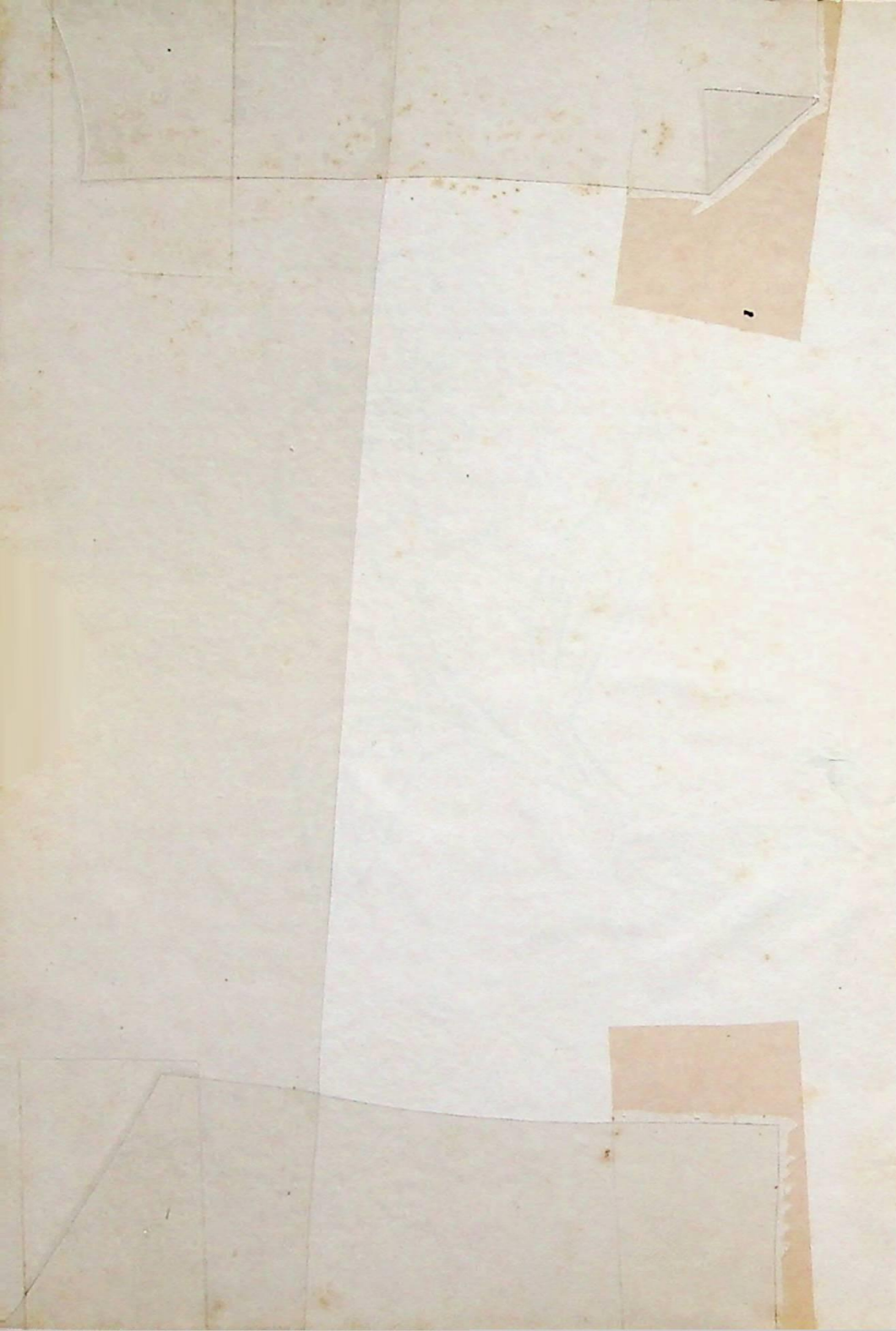
याग-मञ्जूषा

पूज्यपाद ब्रह्म० कृष्णदत्त जी महाराज
के
योग मुद्रा में प्रसारित वैदिक प्रवचन

गांधी धाम समिति (पंजीकृत)
श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, वारणावत
लाक्षागृह, बरनावा, मेरठ (उत्तर प्रदेश)–२५०३४५
वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजीकृत)
१, (प्रथम तल) गोखले मार्केट, तीस हजारी कोर्ट के पास,
फोन: २५१००७१, २६३२६०४

प्रथम संस्करण : जनवरी १६६५
प्रतियां : ११००
मूल्य : पच्चीस रुपये

प्रकाशक : **वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजीकृत)**
१, (प्रथम तल) गोखले मार्केट,
तीस हजारी कोर्ट के पास, दिल्ली–११००५४
फोनः २५१००७१, २६३२६०४

कम्पोजिंग : बी–५२२, अवन्तिका, रोहिणी, दिल्ली
मुद्रक : **नव प्रभात प्रिंटिंग प्रेस,**
बलबीर नगर, शाहदरा, दिल्ली–११००३२
फोन : २२८५७५३

प्राक्कथन

ब्रह्मवाणी वेद एवम् यज्ञों की कल्पना-भूमि, भारतवर्ष में परम्परागतों से समय-समय पर दिव्यात्माओं का अवतरण होता रहा है। और, अवतरण, प्राय: महान संस्कारों से जुड़े उद्देश्यों से बंधा रहता है। इस वाम-मार्ग के काल में भी अनेक दिव्यावतरण हुये। लेकिन ज्ञान एवं प्रयत्न के क्षेत्र में पूर्व-जन्म-संगृहीत ऋषि संस्कारों के महान आश्चर्य पूज्य ब्र.० कृष्णदत्त जी (आदि ब्रह्मा के वरिष्ठ शिष्य, श्रृंगी ऋषि की आत्मा) के रूप में एक दिव्यात्मा, योग, दर्शन, वेद-ज्ञान, वैदिक-इतिहास एवं यज्ञों के दिग्दर्शन के लिये अवतरित हुई। एक विशेष प्रक्रिया में समाधी में जाकर योग सिद्ध आत्माओं को सम्बोधित करते हुये इन्होंने असंख्य दिव्य प्रवचन किये। इनके प्रवचनों में सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिये पूर्ण साकल्य उपलब्ध है। अधिकांश प्रवचन अनेक पुस्तकों में प्रकाशित हो चुके हैं। इसी श्रृंखला में, जिज्ञासुओं के लिये, यज्ञ विषय पर यह पुस्तक प्रस्तुत है।

यूं तो पूज्य ब्रह्मचारी जी के अनेक प्रवचनों का विषय, यज्ञ एवं कर्मकाण्ड रहा है और उनके लगभग सभी प्रवचनों में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से याग विषय का उद्‌बोधन हुआ है, लेकिन, प्रस्तुत पुस्तक याग-अनुष्ठान और अनुशासन के विविध विषयों पर उनके अप्रकाशित प्रवचनों का अनूठा संकलन है। पुस्तक के श्रृंखलाबद्ध प्रवचन याज्ञिक को दिव्य अनुष्ठान और उसके लिये पूरी तैयारी की प्रक्रिया का संकेत करते हैं। पूज्य ब्रह्मचारी जी ने इन प्रवचनों में कर्मकाण्ड के अनेक गुप्त रहस्यों का सहज उद्‌घाटन किया है। गोमेध-याग, कन्या-याग, अश्वमेध-याग एवम् अन्य राष्ट्रीय-यागों की चर्चाओं के साथ-साथ महर्षि महानन्द जी की आधुनिक समाज एवं राष्ट्रीय व्यवस्था पर टिप्पणियां, अत्यन्त मनोहारी हैं। याग में ब्रह्मचर्य, अहिंसा, बाह्य एवम् आंतरिक शोधन और तरंगवाद की आवश्यकता का रोचक वर्णन है। होता-चयन प्रणाली का आध्यात्मिक और भौतिक विवेचन तो विशेष रूप से आकर्षक है। अधिक न कहते हुये, प्रस्तुत पुस्तक, मानव मात्र, समाज एवं राष्ट्र के लिये यज्ञ की उपयोगिता एवं आवश्यकता को सिद्ध करने की ज्ञान-मञ्जूषा है।

पूज्य ब्रह्मचारी जी ने अपना पूरा जीवन यज्ञों के क्रियात्मक प्रसार एवं प्रचार में लगा दिया। ग्राम-ग्राम, नगर-नगर घूमकर उन्होंने हजारों पारायण यज्ञों का आयोजन कराया। अनेक श्रद्धालुओं को दैनिक-यज्ञ में योजित किया। उनकी ही प्रेरणा से उनकी आश्रम-स्थली, लाक्षागृह बरनावा (वारणावत) में हर वर्ष शिवरात्रि के बाद पड़ने वाले रविवार से अगले रविवार तक चतुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन होता है। इस वर्ष 5 से 12 मार्च '95 तक होने वाले 36वें चतुर्वेद-पारायण यज्ञ के शुभावसर पर प्रकाशित प्रस्तुत पुस्तक सभी यज्ञ-प्रेमियों को समर्पित है।

वैदिक अनुसंधान समिति उन सभी महापुरुषों के प्रति आभार व्यक्त करती है जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के लिये सात्विक दान/प्रकाशन सहायता दी है। समिति प्रभु से उनके उत्तम स्वास्थ, दीर्घ जीवन, समृद्धि और भविष्य में भी ऐसे ही सहयोग की कामना करती है।

विषय-सूचि

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी, जिनकी चर्चा इस समय देश–विदेश के विद्वानों एवं साधारण जनता में विशेष रूप्र से हो रही है, उनके जीवन तथा प्रवचनों के सम्बन्ध में प्रत्येक जानना चाहता है। उनके प्रवचन इस पुस्तक में आपके सामने है जिनसे आप जान सकेंगे और विचार करेंगे कि एक साधारण कोटि के अनपढ़ व्यक्ति ने किस प्रकार ऐसे गहन एवं आध्यात्मिक प्रवचनों को किया है। यह विषय बहुत महत्वपूर्ण है और अनुसंधान चाहता है।

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी का जन्म स्थान, ग़ाज़ियाबाद जिले में मुरादनगर के पास खुरमपुर सलेमाबाद नामक ग्राम है। ब्रह्मचारी जी के पिता श्री नानक चन्द जी क़बीर पंथी रहे हैं। आज भी उनके यहां घर में कपड़े बुनने का काम होता है। वहां छोटा सा झोंपड़ीनुमा घर और निर्धनता का साम्राज्य है। ब्रह्मचारी जी की माता श्रीमती सोना देवी बहुत ही सरल स्वभाव की महिला है। ब्रह्मचारी जी के दो बड़े भाई और एक छोटी बहन है तथा ब्रह्मचारी जी अपने माता–पिता की तीसरी सन्तान हैं। इस परिवार में कोई भी व्यक्ति पढ़ा–लिखा नहीं, न इनके पिता अपने बच्चों को किसी प्रकार की शिक्षा दिलाने में समर्थ थे। जो व्यक्ति किसी प्रकार मेहनत–मजदूरी करके अपने बच्चों का दो समय कठिनता से पेट पाल सके, वह शिक्षा तो दिलाएगा ही कहां से। अतः यह सारा परिवार अशिक्षित है, इसलिए यह प्रश्न ही नहीं होता कि ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी को कोई उच्च शिक्षा मिली हो।

जिस मौहल्ले में ब्रह्मचारी जी का घर है वह पूरा का पूरा निर्धन मजदूर व्यक्तियों का है। इनके जन्म स्थान के पास कुछ मुसलमान जुलाहों के घर भी हैं। ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी का बाल्यकाल इन्हीं लोगों में बीता था। जब इनका जन्म हुआ तो इनकी माता जी को तीन दिन बहुत ही कष्ट

रहा और यह उल्टे पैरों उत्पन्न हुए। जिस प्रकार माता देवकी जी को भी योगीराज भगवान कृष्ण के पैदा होने में कष्ट हुआ था और वह भी उल्टे पैरों पैदा हुए थे उसी प्रकार जन्म होने से पड़ोस के व्यक्तियों ने इनका नाम 'कृष्णदत्त' रख दिया। गांव में अब भी इन्हें 'किशन भगत' के नाम से ही लोग जानते हैं।

ब्रह्मचारी जी की अवस्था जब ७–८ मास की थी तभी से इनका सिर हिलता था, उनकी पड़ोस की महिला 'नसीबन' ने, जिसने इन्हें बचपन में खिलाया था, बताया कि जब यह ९–१० मास का बैठने लगा तो इसका बूढ़ों की तरह कभी–कभी सिर हिलता था। इनकी पूज्य माता श्रीमती सोना देवी जी से मालूम हुआ कि जब वह तीन वर्ष के शिशु थे तभी से रात को जब कभी सीधे (चित्त) हो जाते तभी कुछ–कुछ बोलते थे। थोड़े दिनों के पश्चात् हमें इनकी कथाएं समझ में आने लगीं, उनमें रामायण, महाभारत, मोरध्वज, भक्त प्रह्लाद, ध्रुव आदि की कथाएं होती थी। रात को जब इनकी कथा प्रारम्भ होती तो हम लालटैन जलाकर बैठ जाते और सुनने लगते थे। बहुत देर होने पर मैं इसे करवट से लिटा देती और यह चुप हो जाता। ऐसका क्रम ६–७ वर्ष तक की, आयु तक चलता रहा। इस बीच में बहुत लोगों ने कहा कि इस बच्चे की भूत–प्रेतों का असर है। इमने अपनी अवस्था के अनुसार इसका कई जगहों पर इलाज कराया परन्तु कोई फायदा नहीं हुआ, अन्त में हमने भगवान के सहारे पर छोड़ दिया।

जब ब्रह्मचारी कृष्णदरत्त जी ७ वर्ष के हुए तो इनके पिता ने इन्हें अपने गांव के चौधरी खचेड़ू सिंह तथा चौधरी इन्द्रराज जी त्यागी के यहां मज दूरी पर रख दिया। हमने चौधरी साहब से सब बातें मालूम की, और उन्होंने बताया कि ये १५ वर्ष की आयु तक हमारे यहां काम करते रहे। पशुओं को जंगल में चराना, घास लाना, पशुओं का चारा, पानी, मेहमानों की सेवा करना, हुक्का भरना, पैर दबाना, कोल्हू में गन्ना डालना, गुड़ बनाना आदि खेती और घरेलू काम यह हमारे यहां करते रहे। बाद में चौधरी साहब बड़े दुःखी हुए कि ऐसी महान विभूति, उच्च आत्मा से हमने ऐसा काम क्यों लिया। किन्तु कर्मफल तो प्रत्येक को कर्मानुसार कष्ट उठाना पड़ता है।

इस प्रकार ब्रह्मचारी जी का १५ वर्ष तक की अवस्था का जीवन बड़ा कष्टमय एवं संघर्षमय बीता। उस समय वह बहुत कृशकाय और दुःखी रहते थे।

एक दिन रात में चौधरी इन्द्रराज जी त्यागी और ब्रह्मचारी कृष्णदत्ता खलियान में सोये। वहीं रात को सीधे होने पर इनका प्रवचन प्रारम्भ हो गया। वह बहुत घबराए, फिर इनको किसी तरह करवट से टेढ़ा किया तब यह चुप हो गए। अगले दिन चौधरी साहब ने इनके पिता को बुलाकर कहा कि भाई नानक तुम अपने लड़के को यहां से ले जाओ इसे रात कुछ हो गया था। तब इनके पिता ने कहा कि ताऊ जी! घबराओं नहीं इसे तो बाल्यकाल से ही ऐसा होता है। अब तो ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी गांव भर में प्रसिद्ध हो गए। लोग कहने लगे कि भाई नानक के लड़के को कुछ ऐसा होता है कि जब इसे सीधा लिटा दिया जाता है तब वह बेहोश होकर बूढ़ों की तरह वेद–पुराण की कथा करता है। इसके पश्चात् जो जब गांव में कोई अतिथि आता ब्रह्मचारी जी को वहां बुलाकर सीधे लिटा दिया जाता और जब तक इन्हें करवट न दिलाई जाती, तब तक यह बोलते ही रहते थे, फिर वह धीरे इन्हें करवट दिलाकर चुप कराते थे।

इसी बीच ६ वर्ष की अवस्था में ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी को चेचक निकली, उसमें इनकी ऐसी हालत हो गयी कि कोई भी पड़ौसी यह नहीं कहता था कि यह बच्चा बच जाएगा, क्योंकि चेचक में प्रायः सीधा रखते है और सीधा होने पर इनके प्रवचन प्रारम्भ हो जाते थे। अतः इनका सारा शरीर छिल–छिल कर एक फोड़े की तरह बन गया। उस समय भी सीधा होने पर यह इसी प्रकार गर्दन हिलाते और प्रवचन करते थे, पर भगवान की कृपा और जनता के अहोभाग्य से प्रभु की धरोहर उस कष्ट से सुरक्षित रही जो मानव कल्याण के लिए अमूल्य निधि है।

गृह त्याग

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के पिता इनसे बहुत रुष्ट रहते थे। उसका कारण केवल यही कि इनको सिर हिलाने और प्रवचन करने की बीमारी थी। उसके लिए वह अनेक बार इन्हे शारीरिक दण्ड भी देते थे। अनेक अवसरों पर, १५ वर्ष की आयु तक, उन्होंने इनकी पिटाई की। यह स्वभाव

इनके अपने वश की बात तो थी नहीं जो पिता की मार के भय से छोड़ देते, किन्तु बाद में यह बहुत सोचते कि क्या बात है जो मुझे इस बुरी तरह पीटा जाता है। इसी कारण यह बहुत दुखी और भयभीत रहते। इस प्रकार इस गांव में इनका समय व्यतीत हो रहा था। संयोग की बात है कि एक दिन इन्हें फिर इसी प्रकार का दौरा पड़ा और प्रवचन के बाद इनके पिता ने इन्हें बहुत पीटा, जिससे इन्हें बड़ा कष्ट हुआ और यह बहुत बेचैन हुए।

इसके पश्चात वहीं इस महापुरुष के मन में विचार आया कि यहां कब तक कष्ट पाते रहेंगे। यहां से चलकर कहीं अपना इलाज करावें। यदि अच्छा हो गया तो घर लौटूंगा नहीं तो घर नहीं आऊंगा और कहीं न कहीं अपना जीवन समाप्त कर दूंगा। यह विचार मन में आने पर शीत काल की मध्यरात्रि में एक बजे के लगभग अपनी जन्म–भूमि और माता–पिता, बन्धु–बांधुओं को छोडकर घर से भाग खड़े हुए। एक डेढ मास इधर–उधर भटकते हस्तिनापुर जा पहुंचे। कई दिन के भूखे थे, वहां इन्हें एक ठग साधु मिला। इन्होंने उससे ठहरने के लिए कहा और अपनी बीमारी की कष्ट कथा सुनाई और कहा कि किसी प्रकार आप मेरा यह रोग दूर कर दीजिए। साधु ने कहा कि बच्चा तेरा रोग तो दूर हो जाएगा लेकिन इसमें ४०० रुपए खर्च होंगे। अगर तू इतने रुपए दे तो हम इलाज कर देंगे। इन्होंने कहा कि मेरे पास रुपए नहीं, आप मेरा रोग खत्म कर दीजिए, मैं नौकरी करके आपका रुपया पूरा कर दूंगा। जब वह नहीं माना तो अन्त में इन्होंने कहा कि मुझे ठीक करके किसी को बेच देना, मैं उसके काम करके कर्ज उतार दूंगा। वह न माना। अन्त में यह क्रोध में वहां से भाग आए और दो मास इधर–उधर देहातों में घूमते–घामते, बरनावा आ पहुंचे जहां से इनके जीवन की धारा बदली और इन्होंने विशेष ख्याति पाई।

बरनावा में

यद्यपि बरनावा में आने से पहिले ही ब्रह्मचारी जी की चर्चा आसपास तथा दूर–दूर के देहातों में थी, मैंने वर्षों सहारनपुर में इनके विषय में सुना था। इनके ग्राम के पास के एक मा. हरस्वरूप जी ने इनके प्रवचनों को सुना था और मुझे बताया था, किन्तु मैं भी उस समय दूसरे भाइयों की तरह

इसे नहीं मानता था। भाई हरस्वरूप जी पौराणिक थे अतः यह कहकर कि आप तो ऐसी बातों पर विश्वास कर लेते हैं, यह कभी नहीं हो सकता कि बिना पढ़ा–लिखा कोई व्यक्ति इस तरह के भाषण दे सके, बात समाप्त कर दी।

बरनावा आकर यह महात्मा श्री धर्मवीर त्यागी के यहां ठहरे जिनका सम्बन्ध चौ० इन्द्रराज जी के यहां था और उनका परिवार इन्हें जानता था। वहां पर भी इनकी कथा होती रही। कई मास यह कथा चलती रही, लोग आते और सुनते किसी की समझ में कुछ आता, किसी की में नहीं। कोई श्रद्धा से बैठे रहते कोई कौतूहल से। अनेक महिलाएं भी आती रहती थीं।

बरनावा जिला मेरठ में हिण्डन और काली नदी के संगम पर है। यहीं महाभारत काल का प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान 'वारणावत' है जहां कौरवों ने पांडवों को अग्नि में जलाने के लिए लाक्षागृह का निर्माण किया था और सौभाग्य से पांडव वहां से बच निकले थे। आज भी वहां एक बड़ा ऊंचा टीला है। यह स्थान रमणीय है किन्तु यह स्थान उत्तर प्रदेश सरकार के 'वन विभाग' में आता है। इस स्थान से महानन्द मुनि का सम्बन्ध ब्रह्मचारी जी के भौतिक पिंड से हुआ, ऐसा बरनावा निवासियों से मालूम हुआ। उनका कथन है कि जिस समय प्रारम्भ में यहां ५–६ मास तक कृष्णदत्त जी की कथा हुई तो कभी कथा में महानन्द मुनि का कोई संकेत तथा नामोच्चारण नहीं हुआ।

एक दिन ब्रह्मचारी जी अपने चार साथियों के साथ घूमते हुए इस लाक्षा मंडप के स्थान पर गए। सायंकाल ४–५ बजे का समय था। थोड़ी देर वहां घूमकर यह आ गये और उसी दिन रात्रि की कथा में यह कहा गया कि गुरु जी आज तो आप हमारे आश्रम में गए थे। उसके पश्चात बराबर इनके प्रवचनों में महानन्द जी के प्रश्न आते हैं और वह अनेक बार कहते हैं कि महानन्द जी के संकेतानुसार ऐसा जान रहे हैं। इनके प्रश्नों से ऐसा आभास होता है कि कोई महानन्द जी नाम के इनके पूर्वजन्म के शिष्य सूक्ष्म शरीर से प्रवचन के समय इनके सम्पर्क में आते हैं और उस समय उनके अनेक गम्भीर एवं महत्वपूर्ण प्रश्न होते हैं जिनका यह बड़ा

की तर्कपूर्ण एवं शास्त्र–सम्मत उत्तर देते है। जब से महानन्द मुनि का सम्पर्क हुआ, इनके प्रवचनों में विलक्षणता आ गई, ऐसा वहां के श्रोता कहते हैं। हमने तो पूर्व के प्रवचन सुने नहीं हैं, यह उन लोगों से सुना है। अनेक बार उन्होंने अपना सम्पूर्ण भाषण अपनी उस विशेष स्थिति में केवल 'संस्कृत–तुल्य' भाषा में ही दिया।

बरनावा से ही इन्हें यज्ञों के प्रति रूचि हुई और यह धीरे–धीरे देहातों में घूमते रहे। वहां के लोगों में इनके प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई और यह महात्मा तथा ऋषि एवं किशना भगत के नाम से भिन्न–भिन्न स्थानों में प्रसिद्ध हुए। साथ ही इन्हें दूसरे स्थानों में भी बुलाया जाने लगा। मेरठ, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, गाजियाबाद शहरों में तथा इन जिलों के कस्बों और देहातों में इनके अनेक प्रवचन हुए, यह बरनावा में दिसम्बर मास में ३–४ वर्ष से एक यज्ञ कराते, और देहात के श्रद्धालुजन इन्हें बड़ा सहयोग प्रदान करते थे। ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी स्वयं तो पढ़े–लिखे न होने के कारण यज्ञ आदि करा नहीं सकते, अतः इन्होंने वैदिक आर्य विद्वानों को बुलाकर यज्ञ सम्पन्न कराए। शाहदरा (कबूलनगर) के श्री पं० सुरेन्द्र शर्मा गौड़ को जो प्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान थे, उन्हें यज्ञों में बुलाते और उन्होंने इनकी अद्‌भुत प्रतिभा से प्रभावित होकर उत्तर–प्रदेश प्रतिनिधि सभा के साप्ताहिक पत्र 'आर्यमित्र' में इनके विषय में लेख प्रकाशित कराया तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को भी लिखा कि एक ऐसा युवक है जो पढ़ा–लिखा न होने पर भी वेदों के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए, सुन्दर एवं प्रभावशाली भाषण करता है। किन्तु किसी ने कोई ध्यान नहीं दिया और महत्वपूर्ण तथा सार गर्भित प्रवचन उसी तरह बेकार जाते रहे, जैसे किसी को रत्नों का पता न होने से उन्हें वह फेंक देता है।

हमारा सम्बन्ध कैसे बना

यद्यपि ब्रह्मचारी जी की माता दिल्ली की ही कन्या है और मामा आदि भी इसी महानगरी में ही निवास करते हैं, यह बचपन से ही यहां आते रहे, और हमारे सम्पर्क में आने से पूर्व भी लोदी रोड, मालवीय नगर में दस–दस पांच–पांच व्यक्तियों की उपस्थिति में इनके प्रवचन कभी–कभी हुए किन्तु

इसे नहीं मानता था। भाई हरस्वरूप जी पौराणिक थे अतः यह कहकर कि आप तो ऐसी बातों पर विश्वास कर लेते हैं, यह कभी नहीं हो सकता कि बिना पढ़ा–लिखा कोई व्यक्ति इस तरह के भाषण दे सके, बात समाप्त कर दी।

बरनावा आकर यह महात्मा श्री धर्मवीर त्यागी के यहां ठहरे जिनका सम्बन्ध चौ० इन्द्रराज जी के यहां था और उनका परिवार इन्हें जानता था। वहां पर भी इनकी कथा होती रही। कई मास यह कथा चलती रही, लोग आते और सुनते किसी की समझ में कुछ आता, किसी की में नहीं। कोई श्रद्धा से बैठे रहते कोई कौतूहल से। अनेक महिलाएं भी आती रहती थीं।

बरनावा जिला मेरठ में हिण्डन और काली नदी के संगम पर है। यहीं महाभारत काल का प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान 'वारणावत' है जहां कौरवों ने पांडवों को अग्नि में जलाने के लिए लाक्षागृह का निर्माण किया था और सौभाग्य से पांडव वहां से बच निकले थे। आज भी वहां एक बड़ा ऊंचा टीला है। यह स्थान रमणीय है किन्तु यह स्थान उत्तर प्रदेश सरकार के 'वन विभाग' में आता है। इस स्थान से महानन्द मुनि का सम्बन्ध ब्रह्मचारी जी के भौतिक पिंड से हुआ, ऐसा बरनावा निवासियों से मालूम हुआ। उनका कथन है कि जिस समय प्रारम्भ में यहां ५–६ मास तक कृष्णदत्त जी की कथा हुई तो कभी कथा में महानन्द मुनि का कोई संकेत तथा नामोच्चारण नहीं हुआ।

एक दिन ब्रह्मचारी जी अपने चार साथियों के साथ घूमते हुए इस लाक्षा मंडप के स्थान पर गए। सांयकाल ४–५ बजे का समय था। थोड़ी देर वहां घूमकर यह आ गये और उसी दिन रात्रि की कथा में यह कहा गया कि गुरु जी आज तो आप हमारे आश्रम में गए थे। उसके पश्चात बराबर इनके प्रवचनों में महानन्द जी के प्रश्न आते हैं और वह अनेक बार कहते हैं कि महानन्द जी के संकेतानुसार ऐसा जान रहे हैं। इनके प्रश्नों से ऐसा आभास होता है कि कोई महानन्द जी नाम के इनके पूर्वजन्म के शिष्य सूक्ष्म शरीर से प्रवचन के समय इनके सम्पर्क में आते हैं और उस समय उनके अनेक गम्भीर एवं महत्वपूर्ण प्रश्न होते हैं जिनका यह बड़ा

की तर्कपूर्ण एवं शास्त्र–सम्मत उत्तर देते है। जब से महानन्द मुनि का सम्पर्क हुआ, इनके प्रवचनों में विलक्षणता आ गई, ऐसा वहां के श्रोता कहते हैं। हमने तो पूर्व के प्रवचन सुने नहीं हैं, यह उन लोगों से सुना है। अनेक बार उन्होंने अपना सम्पूर्ण भाषण अपनी उस विशेष स्थिति में केवल 'संस्कृत–तुल्य' भाषा में ही दिया।

बरनावा से ही इन्हें यज्ञों के प्रति रूचि हुई और यह धीरे–धीरे देहातों में घूमते रहे। वहां के लोगों में इनके प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई और यह महात्मा तथा ऋषि एवं किशना भगत के नाम से भिन्न–भिन्न स्थानों में प्रसिद्ध हुए। साथ ही इन्हें दूसरे स्थानों में भी बुलाया जाने लगा। मेरठ, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, गाजियाबाद शहरों में तथा इन जिलों के कस्बों और देहातों में इनके अनेक प्रवचन हुए, यह बरनावा में दिसम्बर मास में ३–४ वर्ष से एक यज्ञ कराते, और देहात के श्रद्धालुजन इन्हें बड़ा सहयोग प्रदान करते थे। ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी स्वयं तो पढ़े–लिखे न होने के कारण यज्ञ आदि करा नहीं सकते, अतः इन्होंने वैदिक आर्य विद्वानों को बुलाकर यज्ञ सम्पन्न कराए। शाहदरा (कबूलनगर) के श्री पं० सुरेन्द्र शर्मा गौड़ को जो प्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान थे, उन्हें यज्ञों में बुलाते और उन्होंने इनकी अद्भुत प्रतिभा से प्रभावित होकर उत्तर–प्रदेश प्रतिनिधि सभा के साप्ताहिक पत्र 'आर्यमित्र' में इनके विषय में लेख प्रकाशित कराया तथा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को भी लिखा कि एक ऐसा युवक है जो पढ़ा–लिखा न होने पर भी वेदों के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए, सुन्दर एवं प्रभावशाली भाषण करता है। किन्तु किसी ने कोई ध्यान नहीं दिया और महत्वपूर्ण तथा सार गर्भित प्रवचन उसी तरह बेकार जाते रहे, जैसे किसी को रत्नों का पता न होने से उन्हें वह फेंक देता है।

हमारा सम्बन्ध कैसे बना

यद्यपि ब्रह्मचारी जी की माता दिल्ली की ही कन्या है और मामा आदि भी इसी महानगरी में ही निवास करते हैं, यह बचपन से ही यहां आते रहे, और हमारे सम्पर्क में आने से पूर्व भी लोदी रोड़, मालवीय नगर में दस–दस पांच–पांच व्यक्तियों की उपस्थिलि में इनके प्रवचन कभी–कभी हुए किन्तु

किसी ने इन पर कोई ध्यान नहीं दिया। पौराणिक विचार वालों ने इसलिए कि इनके प्रवचनों से उनकी मान्यताएं समाप्त होती हैं, और आर्य विचारधारा वालों ने अविश्वास, ढोंग व पाखंड समझकर इस समस्या को हाथ में नहीं लिया। दिल्ली में मई १९६१ के आर्य महासम्मेलन पर भी ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी को ब्र० दयानन्द जी (जो कि स्व० स्वामी आत्मानन्द जी महाराज के शिष्य तथा विद्वान हैं) लेकर आये। उन्होंने सम्मेलन में कार्यकर्ताओं से कहा कि एक ऐसे महात्मा हैं, आप उनके प्रवचन सुनें, किन्तु किसी ने ध्यान नहीं दिया। मुझे यह पुनः मालूम हुआ कि यह ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी शामली तथा अन्य देहातों में प्रवचन कर रहे हैं और असंख्य लोग उन्हें सुनने आते हैं, तो मैंने शामली जाने का कार्यक्रम बनाया। जिस दिन मैं जाना चााहता था उसी दिन मेरे पूज्य पिताजी (श्री पं० मुरारीलाल जी शर्मा) इनके प्रवचन सुनने के बाद दिल्ली मेरे पास आ गए। उन्होंने इनके ८.९ प्रवचन सुने थे। उनके बताने पर मुझे अधिक इच्छा हुई कि इन्हं सुनना चाहिए। लगभग एक वर्ष तक हम बराबर खोजते रहे कि यह कहीं मिलें तो हम बुलाएं। मैंने अपने आर्यसमाज के मंत्री, श्री रोशन लाल जी गुप्त से कहा कि इस प्रकार के एक व्यक्ति हैं इनको यहां बुलाना चाहिए। उन्होंने कहा कि आप जैसे कहें, हम वहां जाने को तैयार हैं, किन्तु इनका कहीं पता नहीं चला। इसके दो वर्ष बाद मेरे पास श्री डॉ० बनवारी लाल जी शर्मा का पत्र आया और कुछ आकाशवाणी के पत्र व्यवहार की प्रतिलिपि, जिसमें लिखा था कि यदि ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी किसी समय दिल्ली आएं तो हम उनके प्रवचनों के टेप रिकार्ड करवाएंगे मैंने डॉ० साहिब को लिखा 'आप उन्हें भेज दें'। बहुत प्रयत्न के बाद २८ दिसम्बर १९६१ को ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी मेरे पास आए। मैंने अपने विनय नगर आर्य समाज के मंत्री जी तथा अन्य अधिकारियों से परामर्श कर इनका पहला प्रवचन भारत सेवक समाज में २९ दिसम्बर १९६१ को कराया, जिसमें २५० के करीब सज्जन पधारे थे। वह प्रवचन इतना प्रभावशाली एवं आकर्षक था कि सबने ही उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की और उसी समय निर्णय हुआ कि कल से इनके प्रवचन आर्य समाज विनय नगर में होने चाहिए।

प्रथम दिन का विषय 'आत्म–परमात्मा' विवेचन था और मानव को परमात्मा की उपासना क्यों करनी चाहिए, बिना भगवद् भक्ति के मानव का कल्याण कदापि नहीं हो सकेगा। इसका स्त्री पुरुषों पर बहुत अधिक प्रभाव हुआ। आगे ३० और ३१ दिसम्बर को आर्य समाज में प्रवचन हुए, जिनमें बताया कि अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि क्यों होती है, यज्ञों के न करने से कितनी हानि मानव समाज को होती है। तीसरे दिन के प्रवचन में अनेक विद्वान तथा मनोवैज्ञानिक डाक्टर आदि थे। हजारों की भीड़ में ३१ दिसम्बर का विषय 'प्राण महत्ता' पर था और इतना गम्भीर एवं दार्शनिक था कि विद्वान और वैज्ञानिक भी दांतों तले उंगली दबा रहे थे और उन्होंने बाद में मुझे कहा कि हम बड़े आश्चर्यचकित हैं कि हमने आज तक इतना महत्वपूर्ण भाषण इस धारा–प्रवाह से कभी नहीं सुना।

इसके पश्चात् १ जनवरी १६६२ से ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के प्रवचनों का टेप रिकार्ड किया गया। प्रत्येक दिन नया विषय होता था। नवीन ढंग से उपस्थित किया जाता था। जनता की उपस्थिति इतनी अधिक होती थी कि विनय नगर आर्य समाज के कार्यकर्त्ताओं को बड़ी कठिनता से जनता को अनुशासन में रखना पड़ता था। ७ जनवरी को विशेष यज्ञ हुआ और ब्रह्मचारी जी का ११ बजे से १२–३० बजे तक प्रवचन हुआ जिसमें १० हजार से भी अधिक उपस्थिति थी। उसके बाद ब्रह्मचारी जी हरदोई चले गए, वहां पंडित सुरेन्द्र शर्मा जी ने उन्हें बुलाया था।

ब्रह्मचारी जी के जाने के पश्चात् हमने आर्य समाज विनय नगर के तत्वावधान में एक प्रवचन अनुसंधान समिति का गठन किया और निर्णय किया कि इनके प्रवचनों को सुरक्षित रखने के लिए स्वयं एक टेप रिकार्ड खरीद लिया जाए और यह विषय अनुसंधान के लिए वैदिक विद्वानों तथा डॉक्टरों, वैज्ञानिक एवं योगियों के समक्ष रखा जाए। इस समय ७.जनवरी तक जो अनेक विशिष्ठ महानुभाव प्रवचन सुनने आए उनमें भूतपूर्व राष्ट्रपति महोदय के ज्येष्ठ पुत्र श्री डॉ० मृत्युञ्जय प्रसाद जी और डॉ० विश्वनाथ प्रसाद जी, डॉ० रणवीर जी रांगड़ा, डॉ० देशमुख महोदय, श्री वीरसेन जी वेदश्रमी, एवं अनेक वैदिक विद्वान तथा दार्शनिकों ने यह प्रवचन सुने।

अनुसंधान समिति ने बड़े प्रयत्न और भाग दोड़ के पश्चात् २५००/– रुपये में एक टेप रिकार्ड खरीद लिया। आर्य समाज विनय नगर के अधिकारी सर्वश्री महेन्द्रनाथ जी, श्री मनोहर लाल जी गुप्त, श्री चन्द्रप्रकाश जी, मंत्री श्री रोशन लाल जी, श्री बैजनाथ जी, श्री धर्मवीर जी, श्री बलवन्तराय खन्ना तथा श्री दीनानाथ जी आदि महानुभावों ने इस कार्य में दिन–रात समय दिया और सभी बन्धुओं ने इस कार्य को सफल बनाने में सहयोग दिया।

इन सभी प्रवचनों में मानव की अनेक समस्याओं का समाधान है। अनेक शंकाओं के उत्तर हैं, नए–नए विषयों का नए रूप से प्रतिपादन किया गया है। मानव समाज की अनेक भ्रांत धारणाओं का बुद्धि पूर्वक खण्डन कर विशुद्ध वैदिक मत उपस्थित किया गया है। लोक प्रचलित पौराणिक मान्यताओं का तर्कपूर्ण खण्डन एवं अनेक वैदिक अलंकारों का स्पष्टीकरण किया गया है। संक्षेप में मानव कल्याण के लिए यह प्रवचन इतने उपयोगी सिद्ध होंगे जिनके महत्व के विषय में लेखनी लिखने में असमर्थ है। इनके प्रवचनों से जनता में आस्तिकता एवं सात्विकता का प्रचार बढ़ा है।

(स्व०) प्रकाश चन्द भार्गव
भूतपूर्व प्रधान, प्रवचन अनुसंधान समिति
विनय (सरोजनी) नगर, नई दिल्ली।

महाप्रयाण

इस वाम मार्ग के काल में भी, यह दिव्यात्मा, योग, दर्शन, वेद–ज्ञान एवं यज्ञों का दिग्दर्शन करके १५ अक्तूबर १९९२ को ब्रह्म मुहर्त के समय, ब्रह्मलोक के लिये महाप्रयाण कर गई ! यद्यपि आज हमारे मध्य पूज्य ब्रह्मचारी जी आदि ब्रह्मा के शिष्य श्रृंगी ऋषि भौतिक रूप से विद्यमान नहीं हैं लेकिन, उनकी वेदवाणी, यज्ञों के विस्तार की भूमिका और उनकी दिव्य प्रेरणाएं, हमेशा मानव मात्र का मार्ग–दर्शन करती रहेगी !

यज्ञ विवेचना

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा को महिमा का गुणगान गाया जाता है। जितना भी यह जड़ जगत अथवा चेतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है, जब इसका मन्थन किया जाता है अथवा विचार-विनिमय किया जाता है तो वह परमपिता परमात्मा दोनों ही जगत के मूल में दृष्टिपात आता रहता है। मानव अपने में जब परमपिता परमात्मा की महती को जानना चाहता है तो इस संसार रूपी जगत, जो जड़वत में और चेतन्यवत में दृष्टिपात आ रहा है, उसको जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है क्योंकि परमपिता परमात्मा तो इसके मूल में ही विद्यमान रहता है।

आओ मेरे पुत्रो! हमारा वेद मन्त्र परमपिता परमात्मा को सर्वज्ञ और एक-एक कण-कण में दृष्टिपात आता हुआ वर्णन करता रहता है। परन्तु इसकी अनुपमता कितनी विशाल है कि वैज्ञानिकजन जब विज्ञान के युग में प्रवेश करते हैं तो वैज्ञानिक को एक-एक कण-कण में चेतना दृष्टिपात आती है और कहीं-कहीं तो ऋषि-मुनियों ने, निर्माणवेत्ताओं ने यह निर्णय दिया है कि एक-एक परमाणु के विभाजन करने से यह ब्रह्मांड उसमें दृष्टिपात आता रहता है। हमारा वेद मन्त्र विज्ञान के युग की चर्चा प्रकट करता रहता है, दोनों प्रकार के विज्ञान को मापता रहता है। एक विज्ञान वह कहलाता है जो भौतिकवाद में है और

एक आध्यात्मिक विज्ञान है। आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ताओं ने इस संसार को बड़ी गंभीरता से मापने का प्रयास किया और भौतिक विज्ञानवेत्ताओं ने तरंगों के ऊपर अन्वेषण किया, उसी अन्वेषण के द्वारा मानव अपने में अभ्युदय होता रहा है।

मेरे प्यारे महानन्द जी से मुझे एक प्रेरणा प्राप्त होती है कि याग के सम्बन्ध में कोई अपना विचार दीजिए। हमारे यहां याग के सम्बन्ध में पुरातन काल से, सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान के काल तक ऋषि-मुनियों के हृदयों में और क्रियाकलापों में याग का अपना बड़ा महत्व माना गया है। हमारे यहां जब भी कोई ऋषि-मुनि राष्ट्रवेत्ता के द्वार पर पहुंचा है तो राजा ने उनका स्वागत किया और राजा को ऋषियों ने सर्वप्रथम उपदेश यह दिया है कि हे राजन! तेरे राष्ट्र में सुगन्धि होनी चाहिए। जब तेरे राष्ट्र में सुगन्धि होगी तो तेरा राष्ट्र पवित्र बनेगा। जब राजा चरणों में ओतप्रोत हो करके सबसे प्रथम प्रश्न करते कि वह सुगन्धि कौन सी होगी तो उन्होंने कहा कि सबसे प्रथम तुम अपने गृहों में अग्नि का चयन करो क्योंकि अग्नि देवताओं का मुख कहलाता है। जब अग्नि के मुखारबिन्दु में तुम साकल्य प्रदान करोगे तो **जो तुम आहार करते हो उसी का साकल्य बनाया जाता है**, जब वह साकल्य अग्नि में प्रदान किया जाता है तो अग्नि उसे सूक्ष्म बना देती है, उसी को विभक्त कर देती है और जब उसका विभाजन हो जाता है तो वही अग्नि उग्र रूप धारण करके वह वायुमंडल का शुद्धिकरण करती चली जाती है। अग्नि के ऊपर मैंने बहुत विवेचनाएं दी हैं। राजा से ऋषि कहता है कि तेरे गृह में याग होना चाहिए।

विचारों की पवित्रता

याग का अभिप्राय यह है कि जैसे अग्नि के मुख में साकल्य सामूहिक बन करके सुगन्धि देता है वहां विचारों की सुगन्धि भी पवित्र होनी चाहिए।

जहां साकल्य से पवित्र बना रहा है वहां विचारों में सुगन्धि होना बहुत अनिवार्य है। विचारों में सुगन्धि जब आती है जब मानव के हृदय में हिंसा के विचार नहीं रह पाते। अहिंसा के विचार आ जाते हैं तो प्रत्येक मानव हृदय से परमपिता परमात्मा को अणु रूप में, सर्वत्रता में दृष्टिपात करता है। बिना परमात्मा की अनुपमता का विश्वास हुए, कोई भी मानव में सुगन्धि उत्पन्न नहीं हो सकती। मानव में एक-दूसरे की सुगन्धि जब ही आती है जब मानव यह जान लेता है कि यहां भी प्रभु अपना क्रियाकलाप कर रहा है। जैसे प्रभु मेरे अन्तर्हृदय में क्रियाकलाप कर रहा है, ऐसे ही प्रत्येक मानव के हृदय में क्रियाकलाप हो रहा है। मेरे मस्तिष्क में ध्वनि होती रहती है और वह प्रेरणा मुझे कहां-कहां से प्राप्त होती है? उसी प्रेरणा का स्रोत बन करके वही तो मेरे जीवन का कल्याण करने वाला है और वही संसार का कल्याण करने वाला है और वही संसार को महान बनाता रहता है, विचित्र बनाता रहता है। अपने विचारों को पवित्र बनाना बहुत अनिवार्य है।

राजा के हृदय में ब्रह्मज्ञान होना चाहिए, क्योंकि **बिना ब्रह्मज्ञान के नम्रता नहीं आती।** मानव के स्वत: अपने दर्शन किए बिना मानव के हृदय में नम्रता का भास नहीं हो पाता। मानव नम्र बन करके निर्भिमानी तभी बनता है जब उसे ज्ञान होता है, विवेक होता है। इसीलिए सर्वत्रता को धारण करने से मानव को यह जान लेना चाहिए कि तेरे अन्तर्हृदय में आत्मा जो क्रियाकलाप कर रहा है, वह सर्वज्ञ अपनी आभा में गति कर रहा है। उसकी मृत्यु भी नहीं होती, जब मानव अपने हृदय में यह स्वीकार करता है कि तेरे अन्तर्हृदय में जो अन्तर्ध्वनि हो रही है उसका विनाश नहीं होता। राजा से पुरोहित बन करके आचार्य ऋषि-मुनि कहते हैं कि याग करना है, सुगन्धि करनी है और वही सुगन्धि तेरे महान क्रियाकलापों में परिणित हो जाती है। ऋषि जब हृदयग्राही बन करके इन वाक्यों को प्रकट करता है तो राजा उनके

वाक्यों को स्वीकार करते हैं और नतमस्तक होकर यह कहते हैं कि हे भगवन्! आप तो तपस्वी हैं, आपका वाक्य विवेकमयी कहा जाता है।

इससे पूर्वकाल में हम तुम्हें अश्वमेध यागों की चर्चा कर रहे थे और भी नाना अपने वाक्यों की चर्चा कर रहे थे परन्तु यहां याग के सम्बन्ध में जितना भी कहा जाता है उतना ही सूक्ष्म है। इतने गहन, गम्भीर और मार्मिक रहस्य इसमें उद्धत रहते हैं कि उसको जान करके मानव अपने जीवन को ऊंचा बनाता है, क्योंकि मानव अपने विचारों का याग करता है। वाह्य जगत में अग्न्याधान करता है और उसी अग्न्याधान की सुगन्धि को ले करके वैज्ञानिकों ने बड़ा अनुसन्धान किया है। जब राजा ऋषि के द्वार पर जाते और यह प्रश्न करते हैं कि हे भगवन्! मैंने याग किया है परन्तु मैं यह नहीं जान पाया हूं कि याग का वास्तविक स्वरूप क्या है। तो ऋषि उत्तर देते कि याग वह है कि मानव का प्रत्येक शब्द अग्नि की तरंगों पर, धाराओं पर विद्यमान हो करके द्यौ लोक में स्थिर हो जाता है, यज्ञशाला का रथ बन जाता है और रथ बन करके वह इन तरंगों में ओतप्रोत हो जाता है। जब ऋषि इस प्रकार के अभ्युदय होने वाले शब्दों का गीत गाते हैं तो राजा अपने में प्रसन्न होता है और वह कहता है धन्य है प्रभु! यहां तक प्रतीत होता है।

महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने अपने विद्यालय में, अपने आश्रम में याग के द्वारा नाना प्रकार के यन्त्रों को जानने का प्रयास किया था। उनके आश्रम में जब कोई भी ऋषि-मुनि जाता तो भारद्वाज यह कहा करते कि तुम याग करो। जब उनके यहां याग होता तो कोई उनमें उद्‌गाता बनता, अध्वर्यु बनता, कोई यजमान और कोई ब्रह्मा बन करके वह याग करते तो वह एक यन्त्र को स्थिर करते थे और जैसे स्वाहा: ध्वनि उच्चारण हुई तो वही ध्वनि वैदिक ध्वनि के साथ अग्नि की तरंगों में उनके चित्र जाते हुए यंत्र में दृष्टिपात आते थे। वह कहा करते थे कि तुम्हारा जो वेदोक्त स्वाहा: शब्द है, हृदय

का शब्द है, वही तो अन्तरिक्ष में गति कर रहा है। वह द्यौ लोक में जाता है और द्यौ लोक वाला जो शब्द है, वह सूर्य की किरणों के द्वारा ऊर्जा सत्ता को प्रदान करता रहता है।

बेटा! यह बड़ा विशाल एक विज्ञानमयी जगत कहा गया है। भारद्वाज मुनि से भी ऋषि-मुनि नाना प्रकार के प्रश्न करते रहते थे और वह कहा करते थे कि हमारा यह जो शब्द है, यह द्यौ लोक में जाता है। उन्होंने कहा प्रियतम। उन्होंने एक वाक्य बड़ा महत्वपूर्ण कहा है कि **जिस काल में बुद्धिजीवी प्राणी होते हैं और सत्यवादी प्राणी होते हैं, याज्ञिक पुरुष होते हैं तो वह काल सर्वोपरि होता है** और जिस काल में मिथ्यावादी पुरुष होते हैं, एक-एक वाक्य पर मिथ्या उच्चारण करने वाले पुरुष होते हैं उसका भू-मंडल अशुद्धता में परिणित हो जाता है। जैसे **एक गृह में कलह रहता है तो वह नारकीय गृह कहलाता है** और जिस गृह में एक-दूसरे की सम्मति, विचार, एक-दूसरे की प्रतिभा एक-दूसरे पर प्रभावी वाचक होती रहती है, वही तो स्वर्ग कहलाता है। भारद्वाज मुनि ने अपने वाक्यों में यह कहा है कि मेरे माता-पिता ने मुझे यही शिक्षा दी है।

वेद की एक आख्यिका उनको स्मरण आयी कि याग करने वालों के क्रियाकलापों में जब उन्हें ले जाते हैं तो पुत्र याग में शिशु और ब्रह्मांड की प्रतिभा दृष्टिपात आने लगती है। ब्रह्मचारी सुकेता और ब्रह्मचारी कबन्धि ने अपने में यही तो विचारा था। उन्होंने भारद्वाज से कहा कि प्रभु! आप का वेद-मन्त्र कुछ कह रहा है, हम इसके ऊपर यन्त्र का निर्माण करना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि क्या कह रहा है? उन्होंने कहा कि माता के गर्भ में जब पितृयागी याग करते हैं तो वह पितृयाग हम भी यन्त्रों के द्वारा करना चाहते हैं। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम। उन्होंने उसी वेद मन्त्र को ले करके याग प्रारम्भ किया।

ऋषि-मुनियों ने प्रत्येक क्रियाकलाप को याग माना है। जितने भी सुक्रियाकलाप हैं, जितने भी कर्त्तव्यवाद हैं, उनको याग माना है। राष्ट्र को याग माना है। विद्यालयों में आचार्य शिक्षा देता है, वह भी याग है। माता अपने पुत्र का पालन कर रही है वह भी याग है, यह सर्वत्र ब्रह्मांड याग में ओतप्रोत मुझे दृष्टिपात आता रहता है। **जहां सुमति हो, सुविचार हो, सुहृदय हो, वही तो याग की प्रतिभा में निहित रहते हैं।** मुझे यह दृष्टिपात आता है कि प्रभु ने यह कैसा अनुपम जगत बनाया है, एक-दूसरा एक-दूसरे प्राणी का सहायक बना हुआ है, एक-दूसरे में ओतप्रोत होता हुआ माला के सदृश्य यह ब्रह्मांड दृष्टिपात आता रहता है। उस माला को हमें प्राय: धारण करना चाहिए जिस माला की चर्चाएं हम समय-समय पर उद्‍गीत रूप में गाते रहते हैं। उस माला को कौन धारण करता हैं? विज्ञान के युग में वैज्ञानिक करता है और योगेश्वर करता है जो योगाभ्यास में परिणित हो जाता है, व्यष्टि और समष्टि को अपने में पिरोना जानता है। तो मुनिवरो! अपने हृदय की आभा में रत्त रहना है क्योंकि हृदय में ही तो संसार समाहित हो जाता है। जब मानव संसार को दृष्टिपात करता हुआ हृदयरूपी यज्ञशाला में याग करता है, प्रत्येक इन्द्रियों के साकल्य को ले करके तो वह सब साकल्य ज्ञान रूपी अग्नि में भस्म हो करके हृदय में समाहित हो जाते हैं। अब मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे।

महानन्द जी का प्रवचन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मंडल! अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ रहे थे। वह याग की बड़ी विचित्र उड़ान उड़ते रहते हैं परन्तु जिस स्थलि पर हमारी यह वाणी जा रही है वहां मैं एक याग का दर्शन कर रहा हूं। मैं कोई अपना वक्तव्य देने नहीं आया हूं क्योंकि पूज्यपाद गुरुदेव का जो महान विचार है, उन विचारों के आगे कोई विचार देना मुझे शोभनीय नहीं। केवल यह कि आज का जो आधुनिक काल

है, यह वाममार्ग का काल है। इसमें वाममार्ग की प्रवृत्तियां विशेष हैं। इसमें सात्विक और देवताओं की प्रवृत्तियां मानव के हृदय में सूक्ष्म हैं।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ऋषि भारद्वाज की और भी पूर्वकाल की चर्चाएं प्रकट कर रहे थे परन्तु जब मैं आधुनिक काल की चर्चाएं या वर्तमान काल के मानव की चर्चाएं करने लगता हूं तो यह मुझे वाम मार्ग काल प्रतीत होता है। राजा रावण के राष्ट्र में भी वाम मार्ग की प्रवृत्ति थी, आज मैं पुनः दृष्टिपात कर रहा हूं क्योंकि प्रत्येक मानव का आहार और व्यवहार दोनों अशुद्ध हो गए हैं। दूसरे के रक्त को पान करने को वह अपने में ऊर्ध्वा में जाना स्वीकार करता है।

महाभारत के काल के पश्चात याग का तिरस्कार होने से वाम मार्ग की प्रवृत्तियां आनी प्रारम्भ हो गयीं क्योंकि यागों में मांस की आहुति देना, पशुओं की बलि देना, यह वाम मार्ग का ही काम है। अब यागों में बलि तो समाप्त हो गयी है। अब तो मानव अपने उदर में उस बलि को प्रदान कर रहा है। वह बलि तो कहीं-कहीं पर्वतीय क्षेत्रों पर रह गयी है। इस पृथ्वी मंडल पर यागों का चलन तो लुप्त हो गया। जब मैं यह विचारता हूं कि याग देवता तो शान्त हो गए हैं जहां अहिंसामयी कृतियां अशान्त हो गयी हैं। हे मानव! तू कैसा बन गया है? तू अपने राष्ट्र में याज्ञिक बन। अब यज्ञों में बलि की प्रथा तो समाप्त होने लगी है परन्तु मानव अपनी रसना में बलि प्रदान कर रहा है। यह वाम मार्ग समाज मुझे प्रतीत होता है। यह कहता है कि इसमें ऊर्जा है, इसमें शक्ति है। आज मैं इस वाक्य को उच्चारण करने नहीं आया हूं।

राष्ट्रीय प्रणाली का भ्रष्ट होना ही इसके दोषी होने का मूल कारण मुझे प्रतीत आ रहा है, इसीलिए राष्ट्रीय प्रणाली को विचित्र बनाना चाहिए।

मैं वेद के विद्वानों से यह कहता रहता हूं कि हे वैदिक आचरण करने वालो! तुम राजा से प्रार्थना करो कि वह अपने आहार को पवित्र बना ले। यदि तुम्हारा आहार पवित्र हो गया, तुम्हारा व्यवहार पवित्र हो गया तो यह राष्ट्र और हमारा जनजीवन पवित्र हो जाएगा। उससे यह मत कहो कि तू हिंसा प्रवृत्ति को शान्त कर दे, इसमें हिंसा ऐसे शान्त नहीं होगी। यह प्रार्थना करो कि राजन! तुम अपने हृदय से हिंसा को त्याग करके अहिंसामयी बन जाओ तो वेद की आभा को तब तुम प्रकट कर सकोगे और राजा यदि शोधन कर जाता है तो समाज का शुद्धिकरण हो जाता है। मेरा तो एक ही मन्तव्य है कि प्रत्येक मानव के हृदय में अहिंसा परमोधर्मः आ जाए, प्रेम आ जाए, प्रीति आ जाए, स्नेह आ जाए परन्तु जब तक मानव एक-दूसरे के रक्त को पान करता रहेगा और विज्ञान का दुरुपयोग, जो इस काल में हो रहा है, तब तक यह समाज ऊंचा नहीं बन पाएगा।

मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था कि मुझे तो प्रतीत होता है कि विज्ञान का जितना भी दुरुपयोग होगा उतना ही मानव अधिकार को चाहता है। जब अधिकार ही अधिकार रह जाता है तो रक्तभरी क्रान्तियां हुआ करती हैं। जहां कर्त्तव्यवाद नहीं होता वहां रक्तभरी क्रान्तियां हुआ करती हैं, जहां कर्त्तव्यवाद होता है वहां रक्तभरी क्रान्तियों का दमन हो जाता है। इसलिए मेरा तो समाज के लिए यह अन्तिम विचार रहता है कि कर्त्तव्य का पालन करो। कर्त्तव्य की वेदी पर जब निहित हो जाओगे तुम्हें अधिकार की पुकार ही नहीं रहेगी। जब कर्त्तव्य होगा तो अधिकार तो स्वतः प्राप्त हो जाएगा।

आज मैं पूज्यपाद गुरुदेव से यही अपना विचार देने आया हूं कि हे यजमान! सदैव मेरे हृदय की कामना है कि तुम्हारे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे क्योंकि **गृह में द्रव्य का सदुपयोग होना बहुत अनिवार्य है।** गृहों

में द्रव्य का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। जितना द्रव्य का दुरुपयोग होता है वही द्रव्य उसकी अन्तरात्मा को नष्ट कर देता है और यदि सदुपयोग होता है वही द्रव्य उसकी आत्मा को ऊंचा बना देता है। हे यजमान! मेरा हृदय तुम्हारे समीप रहता है। मैं कहता रहता हूं कि तुम्हारे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे, पवित्र बना रहे। इन वाक्यों के साथ ही मैं अपने वाक् को समाप्त कर रहा हूं।

(गुरु जी) मेरे प्यारे ऋषिवर! महानन्द जी ने अपने विचारों को व्यक्त किया। उनके विचार बड़े मार्मिक होते हैं। विज्ञान के दुरुपयोग की इन्होंने चर्चाएं कीं। आज उन्होंने एक वाक्य बड़ा प्रिय उच्चारण किया है कि यह जो द्रव्य है, यह भौतिक काल में बहुत अनिवार्य है। द्रव्य का सदुपयोग होता रहे तो द्रव्य मां बन करके मानव का कल्याण करता है, उसकी रक्षा करता है। जब इस द्रव्य का दुरुपयोग होता है यह द्रव्य अश्लीलता में परिणित हो जाता है। जिस द्रव्य से मेरी पुत्रियों के चरित्रों को हनन किया जाता हो वह द्रव्य एक उग्र रूप धारण करके मानव को नष्ट कर देता है। यह वाक्य उन्होंने बहुत प्रिय कहा है। इसलिए प्रत्येक मानव को याग की सुगन्धि में, अपने विचारों की सुगन्धि में द्रव्य का सदुपयोग करना, अग्नि के मुखारबिन्दु में विचारों की अग्नि का समन्वय करना, यह याग का अभिप्राय है। आज का विचार समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

सरोजनी नगर, नई दिल्ली
१२-१०-१९८६

अहिंसा

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, वेदों का उद्‌गीत चलता है। आज का हमारा वेद मंत्र उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन कर रहा था जिसकी आभा में सदैव वह चैतन्य देव रहता है। जब हम चेतना के ऊपर विचार करते हैं तो संसार की नवीन से नवीन वस्तुएं हमारे समीप आनी प्रारम्भ हो जाती हैं और हम क्रियाकलापों में परिणित हो करके अपने जीवन को महान बनाने का प्रयास करते हैं।

आओ मेरे पुत्रो! मैं विशेष विवेचना तो तुम्हें देने नहीं आया हूं। हमें उस आभा में रत्त होना है जहां हमारे जीवन की एक भूमिका बनती है और उस भूमिका के आंगन में जब हम विद्यमान हो जाते हैं तो एक आनन्दमय स्त्रोत की हमें अनुभूति होने लगती है। आज का हमारा वेद मन्त्र नाना प्रकार की उड़ाने उड़ने के लिए बाध्य कर रहा है, नाना प्रकार की आभाओं में रत्त हो करके मानव उसकी भी कल्पना कर लेता है। उस याग का प्रारम्भ है जिस याग का एक रथ बन जाता है, ऐसे याग में हम सब विद्यमान हैं। मेरे प्यारे! यागाम् भविताम् लोके: वह जो नाना प्रकार के स्वरूपों में याग हो रहा है, वह बड़ा विचित्र प्रतीत होता है परन्तु मैं यागों की चर्चाएं विशेषता में परिणित

नहीं करा रहा हूं। केवल जो विचार हमारे समीप आते रहते हैं, उन्हीं विचारों को वाह्य जगत में उद्‌बुद्ध कर देते हैं।

इससे पूर्व काल में ऐसे याग का वर्णन कराया जा रहा था, जिस याग में प्रजा और राजा दोनों सुखद होते हैं, मेरे पुत्रो! मैंने कई काल में प्रकट करते हुए कहा है कि इस संसार की प्रतिभा में मानव को प्रतिभाषित हो जाना चाहिए जिससे जीवन में एक नवीन मार्ग प्राप्त हो। संसार में जो ज्ञान और विज्ञान है इसमें वृद्धपन नहीं आता है। यह सदैव एक रस रहने वाली एक अनुपम चेतना है और उस चेतना के गर्भ में ही हम सब विद्यमान रहते हैं। याग के कर्मकांडो की चर्चायें प्राय: हमारे वैदिक साहित्य में होती रहती हैं। आज बेटा! हमें अपने में विचित्र बनने के लिए, अपनी मौलिकता को ऊंचा बनाने के लिए अनुसंधान करना है, ऊंची-ऊंची उड़ाने उड़ना है। याग के कर्मकांड में हमारे यहां ऐसा माना है कि यज्ञशाला में जो ब्रह्मा निर्वाचन करता है, उस निर्वाच्चन के आधार पर मानवीय प्रतिक्रिया बड़ी विच्चित्र चला करती है। कर्मकांड की प्रतिभा में हम सदैव रत्त रहते हैं। कोई भी संसार का प्राणी ऐसा नहीं है जो कर्मकांड से विमुख हो जाए। जो भी जिसका क्रियाकलाप है, उसे वह विशुद्ध रूप से करता है। यह सब क्यों हो रहा है? इसलिए कि वह अपने जीवन में कर्त्तव्य की प्रतिभा में निष्पक्ष निहित रहते हैं। **कर्त्तव्य ही मानवीय जीवन का प्राण है और पुरुषार्थ उस सूत्र के मनके हैं।**

मेखला

बेटा! मैंने तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि मानव को याज्ञिक हो जाना चाहिए। सब वस्तुओं का निराकरण वेद के वांग्मय में हो जाता है, वेद की प्रतिभा में हो जाता है। आज का हमारा वेद मन्त्र जल प्रोक्षण के सम्बन्ध में वर्णन कर रहा है। जब यज्ञ की मेखला के समीप यजमान जाता है तो कहता है कि हे मेखला! अब मैं तेरे रास्ते से गमन कर रहा हूं। वह मेखला अवृति

कहलाती है, जैसे परमपिता परमात्मा ने मेखला के स्वरूप का वर्णन किया है। पूर्व दिशा में मानव जल को प्रोक्षण करता है तो वह दक्षिणायण से उत्तरायण को गमन करता है, वह दक्षिणायण से उत्तरायण को गमन करता है ऐसा क्यों है? इस प्रकार की उसकी क्रियाएं क्यों चल रही हैं? वह अपने में क्यों प्रसन्न हो रहा है? मुनिवरो! यह वार्ता प्रारम्भिक रूपों में प्रकट हो रही थी परन्तु इसके गर्भ में क्या नहीं है? क्योंकि संसार में ज्ञान सदैव नवीन ही नवीन रहता है। सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान काल तक जितनी गणना करोगे, वह नवीन रहती है, **ज्ञान में वृद्धपन नहीं आता।** ज्ञान चाहे सूर्य मंडल में जाने वाले यानों के निर्माण करने वाला है, चाहे वह पृथ्वी और समुद्रों की आभा में खनिज इत्यादि कोई भी विज्ञान हो परन्तु वह सदैव नवीन रहता हैं, उसमें वृद्धपन नहीं आता। जो यह कहता है कि यह धर्म वृद्ध बन गया है, वह वृद्ध नहीं बना है, उसका विच्छेद होना है क्योंकि यह संसार अपनी-अपनी आभा में परिवर्तित हो गया है।

परम्परागतों से ही ज्ञान तो नवीन है, उसमें वृद्धपन नहीं आता। मानव के अकर्मण्य बनने के कारण शरीर में वृद्धपन आ जाता है क्योंकि वह कर्मों से विमुख हो गया है परन्तु आत्मा में वृद्धपन नहीं आता। जल, अग्नि, तेज, वायु यह सब सदैव नवीन के नवीन रहते हैं तो इसी प्रकार भगवान का जो विज्ञान और ज्ञान है, वह अनूठा है, वह सदैव नवीन का नवीन रहता है। जैसे प्रकाश है, वह सदैव नवीन रहता है। प्रकाश के साथ-साथ जो क्रियाकलाप करता है, वह भी सत्य है, वह अपने में नवीन है। वृद्धपन कोई भी वस्तु नहीं होती। वृद्धपन उसका समय और काल होता है, वृद्धपन उसका दूसरी प्रवृत्तियों में प्रवेश होना है।

हमारे यहां पुरातन काल की अश्वमेध याग की वार्ता चल रही थी। प्रोक्षण का वर्णन हो रहा था। **यजमान दक्षिणायण से उत्तरायण को प्रोक्षण**

करता है और दक्षिणायण से पुनः उत्तरायण को वह ईषाण कोण में समाप्तम् ब्रहे। हमारे यहां मेखला के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न याज्ञिक पुरुषों के विचार हैं। उन विचारों को प्रकट करने के लिए हम सदैव उद्यत रहते हैं। मेखला सुवृणत कहलाती है। बुद्धिमानों ने कल्पना की है कि जैसे परमपिता परमात्मा ने पृथ्वी रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया तो समुद्र उसकी मेखला बनाई, जो भी पृथ्वी पर विष उगलता है वही वह ग्रहण कर लेता है, उसका अपने में समन्वय कर लेता है। तो विचार क्या कि यजमान अपनी प्रदक्षिणा क्यों कर रहा है? हे अग्नि! तू ज्योतिवान है, कहीं तेरे में विकृत्तता न आ जाए इसलिए आपो की आवश्यकता है, आपो तेरे लिए है।

राजा जब अश्वमेध याग करता है तो अश्वमेध याग में जो ब्राह्मण अथवा पुरोहित का निर्वाचन किया और उस ब्राह्मण का स्थान नीचा होता है। इसमें प्रसंग आता है ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए क्योंकि ब्राह्मण प्रजा है और राजा अश्व है। ब्राह्मण प्रजा में निहित होता है। यदि ब्राह्मण नियम और संयम से अपने को न बना सका तो राजा उसे दंडित भी कर सकता है। इसलिए **अश्वमेध याग की यज्ञशाला में ब्राह्मण का स्थान नीचे हो जाता है और राजा ऊर्ध्वा में विराजमान हो आसन ग्रहण करता है।** अश्वमेध याग के कर्मकांड में ईषाण कोण में जो जल है, उसमें वह स्नान करता है, अबृत स्नान करने के पश्चात वह पुनः यज्ञशाला में सबके स्वागतार्थ उपस्थित होता है। याग का जो कर्मकांड है वह एक ही समान है परन्तु उसकी क्रियायें भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। मुझे वह काल स्मरण है जब राम ने अयोध्या में याग किया तो ऋषि-मुनि सब उनके कथनानुसार पधारे। महर्षि भारद्वाज, महात्मा जमदग्नि और भी नाना ऋषिवर विद्यमान हुए जो याज्ञिक थे, अश्वमेध याग के कर्मकांड के ज्ञानी थे।

हिंसा

जिस समय राजा अपने राष्ट्र में शिक्षा प्रणाली के लिए सर्वांग विद्या देने के लिए तत्पर हो जाते हैं तो वह शिक्षा प्रणाली ऊंची बन जाती है, परन्तु उसमें हिंसा नहीं होनी चाहिए। **याग वह होते हैं जिनमें हिंसा नहीं होती, अहिंसा होती है, अहिंसा परमोधर्म होता है।** मानव जब अपने में विचारता है कि मैं हिंसा न करूं तो हिंसा का प्रारम्भ दर्शनकारों ने प्रायः मानव के विचारों से वर्णन किया है। तीन प्रकार से हिंसा होती है मनसा, वाचः और कर्मणा। मन में विचार आया और वाणी में आया तथा वाणी के पश्चात क्रिया में जाता है परन्तु विचार में आना ही हिंसा की कृतिका प्रारम्भ हो जाती है।

एक शासक अपने में अनुशासित है और प्रजा को अनुशासन में लाना चाहता है, परन्तु यदि प्रजा यह कहती है कि हे राजन! यह कार्य इस प्रकार नहीं, तो हिंसा प्रारम्भ हो गयी। विपरीतता में ही हिंसा का प्रादुर्भाव हो जाता है। जब हम यह विचारते हैं कि हिंसा का प्रारम्भ कहां से होता है तो विचार आता है कि मन से हिंसा कहां हो गयी? आत्मा के समीप जाने वाला हिंसक बन गया है। मनसा पाप कर्म करना भी एक हिंसा कहलाती है। **वासना का अकर्त्तव्य रूप में उत्पन्न होने का नाम भी हिंसा माना गया है,** राष्ट्र के लिए विपरीत माना गया है। राजा जब मानव की रक्षा करता है, समाज की रक्षा में लग जाता है तो हिंसक प्राणी को कहीं-कहीं दंडित करने के लिए वह विचार हिंसा न हो करके, अहिंसा में परिणित हो जाता है। मैं यह विचार इसलिए दे रहा हूं कि हमारे यहां हिंसा कहां से प्रारम्भ होती है? मानव के आन्तरिक विचारों से उत्पन्न हुआ करती है। आन्तरिक विचार हिंसा के नहीं रहने चाहिए। वाह्य और आन्तरिक विचार एक ही तुल्य होने चाहिए।

मुझे तो कहीं-कहीं विज्ञान की बहुत सी वार्ताएं उपलब्ध हो जाती हैं। जब हम अन्तरिक्ष में हिंसा की ऊर्ध्वा प्रवृत्ति बना करके उद्‌बुद्ध करते

हैं तो क्रोधाग्नि बना करके वायुमंडल में सात्विक परमाणुओं को समाप्त कर देना भी हिंसा मानी गयी है। एक समय महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में यह निर्णय हो रहा था कि हिंसा क्या है? महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज, महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज के द्वार पर पहुंचे। नाना ऋषि मुनियों का एक समाज एकत्रित था और उन्होंने यह प्रश्न किया कि विज्ञान के वांग्मय में हिंसा का प्रादुर्भाव कहां से होता है? तो महर्षि भारद्वाज मुनि ने यह कहा कि यदि तुम जानना चाहते हो तो मानव के मस्तिष्क से हिंसा की उपलब्धि होती है। **मन की इच्छा पूर्ण न होने से क्रोधाग्नि का जागरूक होना ही हिंसा कहलाती है।** उन्होंने अपने यन्त्रों में इन वाक्यों को ले करके दृष्टिपात कराया। विज्ञान के वांग्मय में जब यह प्रस्तुत किया जाता है कि यह अन्तरिक्ष परमाणुओं का समूह है, इसमें मानव जब अपवाद करता है, अशुद्ध वाणी उच्चारण कर रहा है तो वह उस समय वायुमंडल में भरण हो जाता है। उससे वायुमंडल दूषित हो गया है और दूषित हो जाने से हिंसा बन गयी है।

हिंसा एक बड़ी विचित्र धारा है, जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से अन्वेषण कर रहा है, विचार रहा है। माता-पिता गृह में वास करते हैं। वनस्पतियों के रस पथ के द्वारा हमारे शरीर में गतियां कर रहे हैं। जिन परमाणुओं से हमें ब्रह्म को प्राप्त करना था उन परमाणुओं की हम ध्रुवागति बना करके और संसार के अभ्रतों में परिणित हो रहे हैं, तो वह भी हिंसा कहलाती है। माता-पिता पुत्र याग करते हैं। पति-पत्नी की इच्छा हुई कि हम पुत्र याग करें। पुत्र याग हो गया, **पुत्र याग के पश्चात ऊर्जा प्रतिभा को समाप्त करना भी हिंसा कहलाती है।** आज मैं बहुत गम्भीरता में तुम्हें ले जा रहा हूं जिससे समाज, वायुमंडल और गृह में शुद्ध परमाणुओं का जन्म होता है। **विचारों में शुद्धिकरण आना ही वायुमंडल को पवित्र बनाना है। द्रव्य का दुरुपयोग करना भी हिंसा कहलाती है।** द्रव्य का सदुपयोग हो, जैसे यजमान यज्ञशाला में विद्यमान हो करके द्रव्य का सदुपयोग कर रहा है। वह अग्नि के मुखारबिन्दु में साकल्य

प्रदान कर रहा है और यजमान को प्रतीत नहीं होता वह साकल्य कहां जाएगा। वह यही विचारता है कि मेरा जो स्वाहा: है, वह द्यौ लोक में जाना चाहिए परन्तु इसके लिए हृदय पवित्र होना चाहिए, हृदय में वह महानता स्वाहा: देते समय हो तो उसका स्वाहा: 'द्यौ' लोक में चला जाता है। वही शब्द रथ पर विद्यमान हो करके 'द्यौ' लोक में प्रवेश हो जाता है, द्यौ लोक से सूर्य उस ऊर्जा को अपने में ग्रहण करता है। उसी ऊर्जा के द्वारा वही स्वाहा: का परमाणु यजमान को प्राप्त होता रहता है।

मेरे पुत्रो! विचारों से ही यह गृह और समाज ऊंचे बनते हैं, जब प्रत्येक मानव यह विचारता है कि हम तो प्रभु के आंगन में, प्रभु के राष्ट्र में आये हैं। एक मानव द्रव्य का दुरुपयोग करता है तो दूसरा प्राणी दुखित हो रहा है। वह क्यों हो रहा है? वह यह विचारता है कि हम सब एक ही सूत्र के मनके हैं, परमपिता परमात्मा वह सूत्र है जिसके हम सब प्राणी मनके हैं। माला का एक मनका अशुद्ध हो गया, मानव का विचार अशुद्ध हो गया तो जब तक वह मनका माला से नहीं चला जाता, तब तक माला को पवित्र नहीं स्वीकार कर सकते। इसी प्रकार हमारा मानवीय जगत है। परमपिता परमात्मा सूत्र है, हम सब मनके हैं, उसमें पिरोए हुए हैं, माला बनी हुई है। उस माला का एक भी हमारा मनका अपवित्र नहीं होना चाहिए। यदि हम वेद के मर्म को जानना चाहते हैं, वेद की आभा में रत्त होना चाहते हैं तो वेद हमें यह कहता है कि हे मानव! तू हिंसक मत बन, तू अहिंसा परमोधर्म: वाला बन।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे एक समय यह प्रकट कराया कि यागों में हिंसा का प्रादुर्भाव हुआ। मानव ने याग को जाना नहीं, अर्थों का अनर्थ कर दिया है, कहां तक हिंसा की चर्चा करूंगा। एक ब्राह्मण अपने स्वार्थ के कारण एक पोथी में स्वार्थ को वर्णित कर देता है तो सर्वत्र पोथी अशुद्ध बन गयी है और वह हिंसक बन गया है। एक वेद का अलंकार है, उस अलंकार

को यदि बुद्धिमत्ता से विशुद्ध रूप नहीं दे सकता, वही अलंकार साहित्य में लाना प्रारम्भ कर देता है तो भविष्य के लिए वह हिंसा का एक मूल बनता है। हमें यह विचारना है कि हम जब लेखनियां बद्ध करें तो लेखनियों में वह शब्द होने चाहिएं जो शब्द वेद के मर्म के आधार पर हों, वेद और प्रकाश पर आधारित होने चाहियें। मैंने ऐसा समय दृष्टिपात किया है जहां अग्नि के कांड हो गए हैं।

मुझे स्मरण आता रहा है, एक समय बहुत पुरातन काल की वार्ता है कि भारद्वाज मुनि के यहां ब्रह्मचारियों में संघर्ष हुआ। वह संघर्ष किसको लेकर हुआ? एक वेद मंत्र का अध्ययन किया गया, उस अध्ययन में कहीं सूर्य को चन्द्रमा से और चन्द्रमा को समुद्रों से और समुद्रों को पृथ्वी से और पृथ्वी को सूर्य मंडल से और सूर्य मंडलों को बृहस्पति से और बृहस्पति को आरूणी मंडल से, इन सब मंडलों को मिल करके आकाश गंगा से मिलान कराया तो कुछ ब्रह्मचारियों ने इसको साहित्यक रूप दे दिया परन्तु यह था अलंकार। अलंकार उसे कहते हैं जिसका मिलान मिलाने से कोई वार्ता विशुद्ध रूप से हम जाने सकें। **कोई भी वेद मन्त्र ऐसा नहीं है जिसमें अलंकार न हो।** अलंकार को यदि साहित्य में लाना चाहते हैं तो वही अलंकार साहित्य का विनाश करके एक हिंसा बन जाती है। वह हिंसक बन गया है। आगे आने वाला समाज उस पोथी के, वेद के अलंकार को यदि साहित्यिक बनाना चाहता है तो साहित्य भ्रष्ट हो जाएगा, साहित्य की प्रतिभा समाप्त हो जाएगी और नाना प्रकार की रूढ़ियों में यह समाज परिवर्तित हो जाएगा। वह नाना प्रकार की रूढ़ि भी राष्ट्र और मानव समाज के लिए हिंसा मानी गयी है। वह रूढ़ियां भी नहीं होनी चाहियें।

अहिंसा

विचार विनिमय क्या कि हम हिंसक न बनें, अहिंसा परमोधर्मी बनें। अहिंसा परमोधर्मः क्या है? अब प्रश्न यह आता है कि जब हम सभी वस्तु

हिंसा में परिवर्तित कर रहे है तो फिर अहिंसा क्या है? अहिंसा वह है जो मानव को बुद्धियुक्त विचार में नहीं आ रहा है तो एक दूसरे बुद्धिमान से उसका परामर्श होना चाहिए। निष्पक्ष हो करके यदि वह मानवता से न आए तो यौगिकता में पहुंच जाओ और यौगिकता का संघर्ष किया हुआ जो चिन्तन है, वह महान होता है, पवित्र होता है। विचारों में अन्तर्मुखी हो जाओ, अन्तर्हृदय से जानकारी लो। अन्तर्हृदय की वार्ता को किसी बुद्धिमान के समीप पहुंचाओ तो विचार होगा, संघर्ष होगा और उसमें विज्ञान की प्रतिभा और यौगिक पुट जब लग जाती है तो वही शब्द अकाट्य बन जाता है, उसको कोई नष्ट नहीं कर सकता।

मैंने कई काल में तुम्हें वर्णन कराया था कि वेद मंत्र के तीन-तीन भाव हमारे समीप आते हैं। एक लौकिक भाव आता है कि हमें संसार में किस प्रकार विचार करना चाहिए, किस प्रकार क्रियाकलापों में रत्त रहना चाहिए, हमारा व्यवहार कैसा हो? याग में सबसे प्रथम व्यवहार की चर्चा आती है कि सबसे प्रथम हम जल की पूजा करें, हम अग्नि की कैसे पूजा करें। यह सब एक व्यवहार है परन्तु उस व्यवहार को हम यौगिकता में लाना चाहते हैं। यौगिकता कैसे कि आपोमयी ज्योति का पूजन कर रहे हैं। हम एकन्तस्थलि पर विद्यमान हो करके अपने शरीर के ऊपर विचारें कि यह जो अन्न है, यह प्राण का सूचक हैं, प्राण का प्रतिनिधि है, वह मन का भी प्रतिनिधि कहलाया गया है क्योंकि अन्न प्रकृति का है, मन प्रकृति का है। अन्न से मन की प्रतिभा का जन्म होता है।

मैं आज एक और वाक्य उच्चारण करना चाहता हूं। वेद का वाक्य कहता है कि **पाप से कमाया हुआ अन्न भी हिंसा कहलाती है। वह मन की प्रतिभा को नष्ट कर देता है।** वह मन की तरंगों में चंचलता लायेगा, वही चंचलता हिंसा के रूप में परिवर्तित हो जाती है। मुझे पुरातन काल की

वार्ता स्मरण है। एक समय ऋषि-मुनियों का समाज महाराजा अश्वपति के यहां पहुंचा। अश्वपति ने ऋषि-मुनियों का स्वागत किया। वह महर्षि वैशम्पायन की अध्यक्षता वाला समाज था। उनके गृह में सूचना हो गई कि आज तपस्वियों का आगमन हुआ है तो राजलक्ष्मी ने उनका भोज बनाया। राजा ने कहा कि आइये भगवन्! मेरे यहां अन्न पान कीजिए। सभी ऋषियों-मुनियों ने एक स्वर में कहा कि हम राष्ट्र के अन्न को ग्रहण नहीं करते हैं क्योंकि राष्ट्र का अन्न दूषित होता है, वह ऊंची तरंगों वाला नहीं होता। हमारा मन प्रकृति के रूप में तरंग है और अन्न से ही उसकी प्रतिभा का जन्म होता है और अन्न का मिलान प्राण से होता है। प्राण और मन दोनों मिलन करते हैं। दूषित अन्न से उनका क्रियाकलाप अशुद्ध हो जाता है, हमारी यौगिकता नष्ट हो जायेगी।

मेरे प्यारे! जब ऋषियों ने यह कहा तो महाराजा अश्वपति ने नत-मस्तक हो करके कहा कि प्रभु! मैं स्वयं ही कला-कृतियों में रत्त रहता हूं। प्रातःकाल मैं माता वसुन्धरा से उद्यम करता हूं। उसके द्वारा अन्नाद की उत्पत्ति होती है, उसको मैं पान करता हूं। जो राजा स्वयं क्रियाकलाप करता है, वह राष्ट्र को विशुद्ध बना सकता है। मुझे स्मरण आ रहा है कि उनकी पत्नी को यह प्रतीत हुआ कि ऋषिवर तेरे यहां से बिना अतिथ्य के चले जाएंगे तो उसने ऋषि-मुनियों से कहा कि प्रभु! हम प्रार्थना कर रहे हैं, मैंने गायत्राणि छन्दों के द्वारा अन्न की उपलब्धि की है, अन्न को अग्नि में तपाया है। ऋषियों ने उसके पश्चात उस अन्न को ग्रहण किया। देखो, अन्न से मानव के मन की प्रवृत्ति अशुद्ध हो जाती है तो यौगिकवाद समाप्त हो जाता है। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने इसी वाक्य को ले करके नाना प्रकार की वार्ताएं प्रकट कीं। उन्होंने कहा कि हम व्यवहार से यौगिकवाद में जाना चाहते हैं तो वेद का भाष्य करने वालों, वेद के वांग्मय में जाने वालों का व्यवहार और अन्न पवित्र हो।

वेद में तीन प्रकार की प्रतिभा कहलाती है। एक व्यवहार है, एक विज्ञान है और तृतीय यौगिकवाद है। जो मानव व्यवहार को जानता है, वह

विज्ञान की प्रतिभा में जाने के लिए तत्पर हो जाता है और जो विज्ञान और व्यवहार को जानता है, वह यौगिकवाद में प्रवेश कर जाता है। वेद का एक-एक अक्षर मानव के हृदय में समाहित हो जाता है। एक मानव ने व्यवहारिक उसका अर्थ लिया है, एक मानव ने उसको वैज्ञानिक लिया है, एक मानव ने उसे यौगिकवाद में परिणित किया है। तीनों का स्वरूप एक ही रूप में परिणित हो रहा है। यदि व्यवहार में ज्ञान और विवेक नहीं है तो वह व्यवहार अशुद्ध हो जाता है। यदि विज्ञान में क्रिया नहीं है या ईश्वरवाद नहीं है, यौगिकवाद नहीं है तो वह विज्ञान राष्ट्र और प्रजा को निगलता चला जाएगा, विज्ञान का दुरुपयोग हो जाता है और यदि उस विज्ञान में विवेक निहित रहता है, यौगिकवाद रहता है तो वही विज्ञान कर्त्तव्य की प्रतिभा में आ करके, सार्थक बन करके समाज को ऊंचा बना सकता है और राष्ट्र की पद्धति को महान बना सकता है।

आज का हमारा वाक् यह कहता है कि हे मानव! तेरे यहां ज्ञान, विज्ञान और व्यवहार एक तुल्य रहने चाहिए, एक समान रहने चाहिए और यदि इनमें अन्तर्द्वन्द्व आ गया है तो राष्ट्र उसका दोषी बन जाता है। इसीलिए राजा प्रजा को सुखद बनाने के लिए, व्यवहार को उत्तम बनाने के लिए अश्वमेध याग करता है क्योंकि उसमें क्रियात्मकता है, यौगिकता है। मेरे पुत्रो! विचार केवल यह है कि व्यवहार विज्ञान और विवेक जिसे यौगिकवाद कहते हैं, यह मानव के समीप होते हैं क्योंकि बिना व्यवहार के विज्ञान की उपलब्धि नहीं होती और विज्ञान में यदि विवेक की पुट नहीं लगती तो वह विज्ञान मानव का हनन कर देता है, समाज को निगल जाता है। परिणाम क्या कि आज हम अपने जीवन को ऊंचा बनाने के लिए उस आभा में हिंसा और अहिंसा दोनों को विचारने वाले बनें। हिंसा के शब्दों के कारण भयंकर से भयंकर यातनाएं मानव के शरीरों का प्राणान्त कर देती हैं।

तुम्हें स्मरण होगा, मैं महाभारत काल की या राम के काल की चर्चा करता रहता हूं और भी चर्चाएं होती रहती हैं। एक शब्द के कारण ही सीता ने बारह वर्ष वन में बिताए वह हिंसा का शब्द था। जो माता स्वीकार कर रहा है, जो चरणों की वंदना कर रहा है, आज उसके प्रति यदि हमें मनसा पाप है तो वह हिंसा है। माता सीता ने अपने जीवन को कितनी तपस्या से व्यतीत किया परन्तु उसी हिंसा के शब्द ने उनको रावण के कारागार में डाल दिया। देखो, हिंसा का एक शब्द मानव को कहां से कहां ले जाता है। हिंसा शब्द का प्रारम्भ मानव के हृदय से होता है इसीलिए मानव का हृदय और मनस्तव दोनों महान चिन्तन वाले होने चाहिएं।

आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूं। मैं हिंसा की चर्चा करने लगूं तो कई समय व्यतीत हो जाएंगे। मैं इसका संक्षिप्त परिचय दिया करता हूं कि हिंसा नहीं होनी चाहिए। मानव के अन्तर्हृदय में अन्न और व्यवहार से हिंसा का प्रारम्भ होता है। इसीलिए व्यवहार को परिवर्तन कर लिया जाए तो वही विशुद्ध रूप बन जाता है, उसी को प्राप्त हो जाता है। आज का वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए जीवन व्यतीत करें। हम कर्मकांड की शेष चर्चा तो कल प्रकट करेंगे। आज का वाक्य समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

माडल टाऊन, दिल्ली
२५-१०-१९८६

ब्रह्मचर्य व्रत

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज़ हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। जब वह गुणगान मानवीय हृदय से गाता रहता है तो मानव का हृदय अगम्य बन जाता है और वह अपने में यह अनुभव करने लगता है कि मैं प्रभु के आनन्दमयी जगत में विद्यमान हूं। जब वह अपने मनस्तव, शान्तना आभा को ले करके उन तरंगों में रमण करने लगता है तो उनमें तरंगित हो करके वह अपने को द्यौ–लोक में पहुंचा देता है।

आज हम वेदों की उस आभा में अपने को ले जाते चले जा रहे थे जहां परमपिता परमात्मा की आभा का प्रायः गुणगान गाया जाता है और परमपिता परमात्मा की आनन्दमयी जो प्रतिभा कहलाती है, वह प्रायः उस महानता का दिग्दर्शन है जिन दर्शनों में जाने के पश्चात परमपिता परमात्मा की महिमा अथवा उसकी रचनाओं के ऊपर हमारा विचार विनिमय होता रहता है। वह परमपिता परमात्मा कितना रचयिता है और वह प्रायः राष्ट्रपिता कहलाता है जो संसार रूपी राष्ट्र को अपने में धारण कर रहा है और इस

राष्ट्र को अपने में संचालन कर रहा है। तो हम उस परमपिता को यह स्वीकार करते हैं कि राष्ट्रपिता तो वह परमपिता परमात्मा है ही परन्तु वह विष्णु बन करके इस संसार रूपी राष्ट्र का संचालन कर रहा है। प्रत्येक मानव जब प्रत्येक वस्तु में उस का भान करने लगता है तो वही तो अनुशासन में रहने वाला है। वह परमपिता परमात्मा राष्ट्रपिता है।

मुनिवरो! जो नाना प्रकार के इस ब्रह्मांड में क्रियाकलाप हो रहे हैं, चाहे वह शब्दों के द्वारा हो रहे हैं, चाहे वह मौन हो करके हो रहे हैं, चाहे वह शब्दों के आकार के रूप में परमाणु एक दूसरे में रत्त हो रहा है, उनको अनुशासन में बनाने वाला वह राष्ट्रपिता कहलाता है। एक मानव के मुखारबिन्दु से एक शब्द का उच्चारण होता है, परन्तु वह शब्द इतने आकार वाला है, जितना मानव का यह शरीर है और उतने आकारों में वह परमाणुवाद भ्रमण करता हुआ, मानो उसी के आकार के रूप में वह अन्तरिक्ष में रमण करता है। वह शब्द अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो जाता है और विद्यमान हो करके उसी आकार का वह शब्द है और उसी आकार के शब्द में मानो चित्र विद्यमान हैं और उसी आकार का वह चित्र कहलाता है। कोई न कोई तो इसका विज्ञानवेत्ता है, मानो जो यह विज्ञान है जो प्रत्यक्षवाद में नहीं था, उसका निर्माणवेत्ता तो वह मेरा देव ही कहलाता है।

मेरे प्यारे! कैसे अनुशासन में उसका क्रियाकलाप होता है और उतनी ही गतियों मे वह रत्त होता रहता है, तो यह कौन कर रहा है? मानो वही तो वह मेरा देव परमपिता परमात्मा है जो नाना प्रकार के अन्नाद में विद्यमान है। चाहे मानव हो, चाहे कोई भी प्राणी मात्र हो परन्तु सबमें एक ही रूप का वनस्पतियों के रस का निर्माण होता रहता है और उन्हीं रसों के द्वारा इस संसार की रचना होती रहती है। वह मेरा प्यारा प्रभु कितना विज्ञानवेत्ता है अथवा वह नियन्त्रण में है और उसी गति से वह गतिवान है, मानो उसी

प्रकार से उसका क्रियाकलाप हो रहा है। वह निर्माणवेत्ता निर्माण कर रहा है परन्तु उस परमपिता परमात्मा का कोई उद्गीत गाने लगे तो बेटा! गाया नहीं जाता। वह इतना अनूठा है, इतना विचित्र है कि उसके गान गाने में मानव की वाणी मौन हो जाती है, नेत्र दृष्टिपात करना शान्त कर देते हैं, श्रोत्र शब्दों से वंचित हो जाते हैं। तो विचार क्या, बेटा! ऐसा अनुपम, ऐसा भव्य यह जगत है जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से अन्वेषण, अनुसन्धान करता रहता है।

मेरे प्यारे! आओ मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूं जहां महर्षि पिप्पलाद मुनि के द्वार जिज्ञासु जाते हैं। जब उन्होंने अनुसन्धान करते हुए, परमपिता परमात्मा को राष्ट्रवेत्ता स्वीकार करते हुए, यह स्वीकार कर लिया कि ब्रह्म है तो बेटा! उन्होंने कहा कि हमें एक वर्ष तक गऊओं का पालन करना है। बेटा! यहां गऊओं के कई अर्थ माने जाते हैं। गौ नाम पृथ्वी को, इन्द्रियों और पशु को भी कहा जाता है। जब जिज्ञासुओ को निर्देश प्राप्त हो गया कि तुम्हें गऊओं का पालन करना है तो वह गऊओं का पालन करने लगे। इन्द्रियों को संयम करते हुए और आश्रम में जो गौ नाम का पशु है, उस पशु का दुग्ध आहार करते हुए, उनकी भी वह सेवा करते थे। **इन्द्रियों के ऊपर संयम का नाम उसकी सेवा है** और पशु की सेवा करने का नाम गौ सेवा कहलाता है। यहां प्रकरण यह कहता है कि गौ नाम पशु का तो होता ही है परन्तु गौ नाम यहां इन्द्रियों को माना गया है। मेरे प्यारे! ऋषि ने यह कहा था कि ब्रह्मचर्य में रहना है। जब वे जिज्ञासु है तो क्या वे ब्रह्मचारी नहीं थे? वे थे, तो भी उन्हें आदेश प्राप्त होता है कि तुम्हें ब्रह्मचर्य से रहना है।

मेरे पुत्रो! ब्रह्मचर्य का अभिप्राय यह है कि जो कई काल में तुम्हें हमने वर्णन किया है, **ब्रह्मचर्य व्रत वह कहलाता है जो अपने में ब्रह्म**

और चरि दोनों को प्रत्येक सांस के सूत्र में पिरोना है, एक सूत्र में सूत्रित करना है और माला बना करके ब्रह्मरूपी जो सुमेरू है अथवा उसी को तो हमें एक प्रतिष्ठा में पहुंचाना है, उसी की हमें प्रतिष्ठा करनी है। तो मेरे पुत्रो! मुझे कुछ ऐसा स्मरण आता है, इनके जीवन कालों में अथवा उनके आश्रमों से यह दृष्टिपात हुआ कि ब्रह्म की जिज्ञासा कितनी विशाल होती है और कितनी महान मानवीयता की उड़ान ऊर्ध्वा में परिणित होती रही है। बेटा! एक समय वह सभी जिज्ञासु रात्रि के मध्यकाल में अपनी स्थलि पर विद्यमान हो कर विचारने लगे कि हमें जो आचार्य ने यह उपदेश दिया है कि तुम ब्रह्मचारी रहो और यह कहा कि ब्रह्म की तो निष्ठा हो गयी है, तो क्या हम ब्रह्मचारी नहीं हैं? तो आचार्य ने हमें ब्रह्मचर्यव्रत के लिए क्यों कहा है। जब इतना समय हमें गृह का वास किये हुए हो गए हैं, ब्रह्म की जिज्ञासा के लिए हमने बारह-बारह वर्ष के तीन अनुष्ठान किए हैं और उसके पश्चात भी आचार्य कहता है कि तुम ब्रह्मचर्य का पालन करो, तो यह ब्रह्मचर्य क्या है, इसके ऊपर भी तो विचारना है।

गार्गे ने कहा कि **ब्रह्मचर्य तो मानव के मन की प्रवृत्ति है। वह प्रवृत्ति प्राण में तल्लीन हो जाए या प्राण में मन तल्लीन हो जाए तो ऐसा मानो कि वह ब्रह्मचारी है।** इसके पश्चात उन्होंने कहा कि हम यह भी स्वीकार कर सकते हैं परन्तु इसीलिए नहीं किया जाता कि प्राण भी और मन भी, यह तो एक ही सूत्र के दोनों मनके हैं। मन और प्राण को एकाग्र करके हमने ब्रह्म को जाना है, ब्रह्म की पिपासा को जाना है तो आज इस वाक्य को हम कैसे स्वीकार करें? इसमें ब्रह्मचारी कबन्धि ने कहा कि आचार्य ने इस लिए कहा है कि तुम्हारा जो यह शरीर है, यह ब्रह्मचर्य से जकड़ी एक आकृत्ति कहलाता है। ब्रह्मचर्य और प्रकृति के सन्निधान का नाम ही ब्रह्मवर्चोसि कहलाता है, इसीलिए दोनों के जानने का नाम ही ब्रह्मचर्यव्रत कहा है। सुनीति बोले कि नहीं, भगवन्! यह भी विचार हमारे

आंगन में नहीं आया है क्योंकि यह तो दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। उन्होंने अपना निर्णय दिया कि मेरे विचार में तो यह है कि हम इस ब्रह्मांड को जान लें, ब्रह्मांड और पिण्ड दोनों को जान करके दोनों का हम समन्वय कर दें तो उसका नाम ब्रह्मचरिष्यामि कहलाता है।

मेरे प्यारे! यह भी वाक्य उनके आंगन मे नहीं आया। विचारा कि जैसे राष्ट्र और प्रजा दोनों सम्मिलित हो करके राष्ट्र का संचालन करते हैं। प्रजा के बिना राष्ट्र शून्य है और राजा के बिना प्रजा शून्य कहलाती है। इसी प्रकार दोनों का समावेश और संचालन हो रहा है। ऐसे ही ब्रह्म इसमें पिरोया हुआ है, उस ब्रह्म को स्वीकार करना ही हमारा ब्रह्मचर्यत्व कहलाता है। यह वाक्य पान करते हुए महर्षि अवरेतु ऋषि ने कहा कि मेरे विचार में नहीं आ रहा है, यह तो स्वतः हो रहा है। यह सब तो हम जानते हैं, परन्तु आचार्य ने ब्रह्मवर्चोसि कहा है। अवरेतु ऋषि ने कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है कि जैसे ऊर्ध्वा में यह गतियां हो रही हैं, उन गतियों को ऊर्ध्वा और ध्रुवा दोनों में जानने का नाम ब्रह्मचर्यव्रत कहलाता है। मेरे प्यारे! अन्तिम जिज्ञासु ने कहा कि ऐसा नहीं है। मेरे विचार में यह आता है कि जो श्वास पर श्वास अपनी ध्वनियां कर रहा है, जैसे प्रातःकाल में सूर्य की ऊर्जा आती हैं, सूर्य की किरणें आती हैं और वह सूर्य की किरणें पृथ्वी को तपायमान करती हैं और पृथ्वी नाना प्रकार के व्यंजनों वाली बन जाती है, नाना प्रकार की वनस्पतियों में नवीन ऊर्जा वाला प्राण आ जाता है तो इससे मुझे यह प्रतीत होता है कि इसी प्रकार जैसे ऊर्जा किरण आयी और गति कर गयी, फिर आयी, पुनः गति कर गयी, ऐसे ही मानव का स्वभाविक श्वास गति कर रहा है। मानो इस श्वास में ब्रह्म को मध्यस्थ बना करके प्राण और मन के साथ में दोनों का चिन्तन करना, मनका बनाना और मनका बना करके उसको ब्रह्मसूत्र में पिरोने का नाम ब्रह्मचर्य कहलाता है। अन्तिम निर्णय दिया कि संसार में ब्रह्मचारी कौन कहलाता है? **जो अपने**

श्वास की गति को जान करके, ब्रह्म को मध्यस्थ बना करके जो श्वासों के मनके बनाता है और मनके बना करके उनकी ब्रह्म को सुमेरू बना करके माला बना देता है, वह ब्रह्मचारी कहलाता है। वह वाह्य जगत में भी मनकों का निर्माण करता है।

मुनिवरो! वाह्य जगत में कैसे निर्माण हो रहा है? वाह्य जगत में यह जो ब्रह्मांड है, इसके तथ्यों को जान करके विज्ञान के वांग्मय में प्रवेश करते हुए अपने मे जो पिरोना जानता है, वैज्ञानिक उसकी तरंगों को जान करके, मानो उसके अंग और परमाणु को जान करके यन्त्रों को निर्माण कर देता है तो वह कहता है कि ब्रह्म के रचनामयी तथ्यों को एकत्रित करके मैंने यन्त्रों का निर्माण किया है। मैंने यन्त्रशाला में जो यन्त्रों का निर्माण किया है तो मैंने ब्रह्मसूत्र एक मनका बनाया है। जब वैज्ञानिक यह स्वीकार करता है कि यह मनका परमात्मा की एक धरोहर है और वायु मंडल में वह धरोहर विद्यमान है, उस धरोहर को हमने कुछ जाना है, वाह्य जगत में उनका प्रदर्शन कर दिया है, उसका जो रचयिता है वह ब्रह्म कहलाता है, वही आभा में निहित हो रहा है। मेरे पुत्रो! जब इस प्रकार का विचार वैदिक आचार्य ने दिया, उस समय ऋषियों का अन्तरात्मा गद्‌गद् हो गया। वह विचार होता रहा और अन्त में यह निर्णय हो गया कि **प्रत्येक श्वास का मनका बना करके ब्रह्मसूत्र में पिरोने का नाम ब्रह्मचर्य कहलाता** है और वह ब्रह्मचारी अपने में ब्रह्मवर्चोसि बन जाता है। बेटा! मैं बहुत दूर चला गया हूं, बहुत गम्भीर मुद्रा में चला गया हूं।

मेरे पुत्रो! एक रात्रि समाप्त हो गयी, द्वितीय रात्रि आयी तो मध्यरात्रि में सब जिज्ञासु गऊओं का पालन करते हुए, मानो ब्रह्मचर्य की आभा में निहित होते हुए निर्णय करने लगे कि आओ! आज हम यज्ञ करेंगे। मध्यरात्रि

के अन्तिम पहर में, मानो प्रातःकालीन उन्होंने याग करना प्रारम्भ किया। यज्ञशाला में विद्यमान हो करके अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा इत्यादि उस जिज्ञासु के समीप पहुंचे जो यजमान बन रहा था। यजमान ने उनका स्वागत किया। उन्होंने कहा कि भगवन्! हम इस लिए आए हैं कि तुम जो इस रूप में विद्यमान हो, हम उसको जानना चाहते हैं कि तुम यजमान क्यों बने हो? ब्रह्मचारी सुनीति मुनि जो यजमान बने हुए थे, उन्होंने कहा कि यजमान मैं नहीं; यजमान तो प्रभु हैं जो इस संसार रूपी यज्ञशाला का प्रतिनिधित्व करने वाला है। मैं भी अपना भौतिक याग रच रहा हूं। आध्यात्मिक याग में प्रवेश होने के लिए और संसार के ऋणों से उऋण होने के लिए मैं यज्ञशाला में विद्यमान हूं। उन्होंने कहा कि प्रभु! आप यज्ञ क्यों कर रहे हैं? तो यजमान कहता है कि मैं याग इस लिए कर रहा हूं कि यह जो संसार है मानो यह परमात्मा से प्रतिष्ठित हो रहा है परमात्मा ही इस संसार रूपी प्राण-प्रतिष्ठा का प्रतिनिधित्व करने वाला है। जैसे राजा राष्ट्र की आभा में अपने चरित्र की प्रतिष्ठा समन्वय करके एक राष्ट्रीय माला बना देते हैं, राष्ट्र उसी माला को ले करके प्रतिष्ठित हो जाता है।

मेरे प्यारे! विचार क्या कि यजमान कहता है, मैं यज्ञशाला में विद्यमान हूं। इस यज्ञ में से जो भी तरंगें मेरी भावना के साथ साकल्य में प्रविष्ट हो करके वायुमंडल में जा रही हैं, मैं भी मानो, परोक्ष रूप में उन देवताओं के समीप जाना चाहता हूं, जो देवत्तमयी श्वास लेते हैं, जो देवत्तमयी विचारते हैं, देवता तुल्य वह अपने को बना करके देवताओं की सभा में सुशोभनीय हो जाते हैं, मैं ऐसे रथ को निर्धारित करना चाहता हूं जिस रथ में विद्यमान हो करके मैं द्यौ लोक में जा सकूं। उस रथ के जो आरे हैं वह मेरा आचरण है। रथ का जो वाहन ऊर्ध्वा में गति करेगा तो वह मेरा स्वाहाः उच्चारण करना है, वह याग का प्राण माना गया है जिसे प्राणों की प्रतिष्ठा में, मानो उसमें प्रतिष्ठित करना चाहता हूं। वेद का ऋषि इस प्रकार अपने उद्गार

देता हुआ कहता है कि मेरा तो यही मन्तव्य रहा है कि मेरे संसार के समन्वय में कोई स्वार्थपरता नहीं है। मैं तो यह चाहता हूं कि यह जो प्रकृति का खाद्य है, यह अग्नि में प्रवेश हो करके, यह चेतना मेरी भावना रूपी वृत्तियों में परिणित हो करके यह द्यौ-लोक में छा जाए, जिससे वायु मंडल पवित्र हो जाए।

मेरे प्यारे! उन्होंने एक वाक्य और बड़ा महत्वपूर्ण कहा कि जब मानव यज्ञ में स्वाहा: उच्चारण करता है और वह तरंगें भावना के साथ और साकल्य श्रद्धामयी घृत के साथ जब वायु मंडल में प्रवेश होती हैं तो जितना दूषित वायुमंडल है, जितना दूषित परमाणुवाद है, उस परमाणु को वह निगलता रहता है और अपनी प्रतिभा को चौमुखी बना करके वायुमंडल में वह छा जाता है। तो मेरे प्यारे! इसीलिए हमारे आचार्यों ने कहा है कि राजा को अश्वमेध, गौमेध, नाना प्रकार के यागों में परिणित रहना चाहिए। मेरे पुत्रो! यजमान की पत्नी कहती है कि मेरा अन्तर्हृदय, अन्तर्मुखी जो आकाश है वह इतना महान बन जाए कि जिससे मैं इस संसार में अपने कर्तव्यवाद में परिणित हो सकूं और कर्तव्यवाद अपनी आभा मे रत्त रहने वाला है।

मेरे पुत्रो! विचार क्या कि छः जिज्ञासु पिप्पलाद मुनि आश्रम में मध्यरात्रि के पश्चात निद्रा से तल्लीन, निद्रा से आकृतियों में रत्त होते हुए वह अपने मे इस प्रकार का विचार विनिमय करते रहते थे। प्रातः कालीन याग करना, याग करने के पश्चात पुनः छः जिज्ञासु अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके अपने-अपने विचार व्यक्त करने लगे। उन्होंने कहा महाराज! यह जो याग हमने किया है, इस याग का हमारे आध्यात्मिकवाद से क्या समन्वय है? तो कबन्धि ने कहा कि प्राणी जब आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता है तो वह अपने वातावरण को, अपने वायुमंडल को अनुकूल बनाता है जिससे वह इन तरंगों में विद्यमान हो करके, अपनी तरंगों को तरंगित

करके उस लक्ष्य पर पहुंच सके, जो लक्ष्य उसने बनाया है। मानो, मैं ब्रह्मा हूं या मैं राष्ट्रीयवाद में प्रवेश करना चाहता हूं तो मेरी विचारधारा उसके अनुकूल और चरित्र की प्रतिभा में रत्त हो जाए। ब्रह्मचारी कबन्धि ने अपना वक्तव्य दिया कि जब हमारा वाह्य जगत पवित्र बन जाता है तो वही आध्यात्मिकवाद में सहायक बन करके, विज्ञान में प्रवेश हो करके परमात्मा के राष्ट्र को अच्छी प्रकार समष्टि रूप में जान सकेगा। जब उन्होंने यह वाक्य कहा तो ऋषि बड़े प्रसन्न हुए।

मेरे प्यारे! सुनीति ने कहा कि मैं यजमान बना हूं, मानो प्रभु इस संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माणवेत्ता है, वह निर्माण कर रहा है, वह यज्ञ का रचयिता है, वह यजमान है परन्तु हम तो केवल निमित्त कहलाते हैं। आध्यात्मिकवाद तो हमारा जीवन है। जब परमपिता परमात्मा का और हमारे क्रियाकलापों का, दोनों का समन्वय हो जाता है तो हम परमपिता परमात्मा के चेतन्यमयी, प्रकाशमयी राष्ट्र में अथवा उसके राज्य में जब अपने को स्वीकार करते हैं तो वही हमारा आध्यात्मिकवाद है क्योंकि हम वाह्य जगत से उपरामता को चले गए हैं, मानो हम उस मार्ग के पथिक बनने जा रहे हैं, जिस मार्ग में जा करके हम शान्तना को प्राप्त हो सकें।

मेरे प्यारे! तृतीय जिज्ञासु ब्रह्मचारी ने कहा कि हमारे इस याग का आध्यात्मिकवाद से क्या समन्वय रहता है कि हम अनुष्ठान करते हैं, हमारा हृदय पवित्र हो जाता है और हमारे वाह्य जगत में जो देवता हैं, पंचीकरण जो हो रहा है वहीं पंचीकरण हमारे हृदय में विद्यमान है, वही हमारे शरीरों में विद्यमान है। जब वाह्य जगत और आन्तरिक जगत दोनों का समन्वय हो जाता है, दोनों से विजातीय पदार्थ नष्ट हो जाते हैं जैसे प्राण चिकित्सा वाला जब प्राण चिकित्सा करता है, तो विजातीय प्राण अथवा जो वायु श्वास के साथ में प्राणायाम करने से हमारे शरीर में प्रवेश कर गया है उसका शुद्धिकरण

हो जाता है। वह विजातीय को नष्ट कर देता है, स्वच्छता को प्रदान कर देता है। इसी प्रकार हम जो याग कर रहे हैं, इसका आध्यात्मिकवाद यह है कि हम अपने में शुद्धिकरण करते हुए अपने आन्तरिक जगत में जो देवता क्रियाकलाप कर रहे हैं, उनका शुद्धिकरण के साथ वास हो जाता है, विजातीयता नष्ट हो जाती है। तो वाह्य देवता और आन्तरिक देवता दोनों के मध्य में से विजातीय नष्ट हो करके, सजातीय करके हम वाह्य और आध्यात्मिक दोनों जगत का समन्वय कर लेते हैं।

इस प्रकार जब ऋषियों ने अपना-अपना निर्णय देना प्रारम्भ किया तो चतुर्थ जिज्ञासु ने कहा कि हम जो अपने में विद्यमान हैं, वह आध्यात्मिकवाद के लिए नही, हम इस लिए उसमें विद्यमान हैं कि हम सर्वत्र जगत को जान करके ब्रह्म का दर्शन करना चाहते हैं। जैसे हम निःस्वार्थ हो करके, अग्नाध्यान करके जब हम स्वाहाः कहते हैं, स्वाहाः यज्ञ का आत्मा बन करके और हमारी अन्तरात्मा का उद्‌गार उत्पन्न हो करके वाह्य जगत की प्रसन्नता और आन्तरिक जगत की प्रसन्नता दोनों मिल करके, मानो एक ब्रह्म की आभा का जन्म हो करके हम द्यौ–लोक को प्राप्त हो जाते हैं। तो मेरे प्यारे! इस याग का आध्यात्मिक और भौतिकवाद दोनों का समन्वय हो करके,हम ब्रह्मसूत्र में अपने को पिरो करके और ब्रह्म को सुमेरू बना करके हम उस परमपिता परमात्मा को प्राप्त कर सकें। ऐसा सदैव हमारा मन्तव्य रहता है जिसमें भौतिक विज्ञान, आध्यात्मिक विज्ञान और दर्शन विद्यमान रहता है।

मेरे प्यारे! राजा इस लिए राष्ट्र का निर्माण करता है कि मैं अपनी प्रजा का शुद्धिकरण कर सकूं। राजा आहार में और व्यवहार मे अपना शुद्धिकरण कर लेता है तो प्रजा भी आहार और व्यवहार में शुद्धिकरण करके राष्ट्रीयता को सजातीय बना करके आध्यात्मिकवादी और बुद्धिजीवी बन

करके, उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा को जान करके इस सागर से पार हो जाए, यह हमारा सदैव मन्तव्य रहता है। मेरे प्यारे! मैंने कई काल में यह वर्णन करते हुए कहा था कि जब ऋषि-मुनियों के क्षेत्रों में अथवा उनकी वार्ताओं में परिणित होते हैं तो हमारा जीवन धन्य होने लगता है। हम अपने में यह स्वीकार करते हैं कि यह उनकी कितनी देन है, उनके महान उद्‌गीतों में हमें कितना उपदेश प्राप्त होता है जिससे हम उस परमपिता परमात्मा, जो महान देव है, उस राजा के राष्ट्र में हम प्रवेश हो जाएं, विष्णु बन करके हम अपना कल्याण कर सकें और जो पालन करने वाला देव है, जो हमारे अंग-संग रहता है, उसे हम जान सकें। यह हमारा मन्तव्य रहा है। विचार विनिमय यह कि छः के छः जिज्ञासु अपना-अपना मन्तव्य दे रहे हैं, अपने-अपने विचार और इन्द्रियों का पालन कर रहे हैं।

बेटा! आज का विचार यह कि हम उस परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, वह महान जो जनजीवन को उद्‌गीत दे रहा है, मानो प्रबल बना रहा है, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए अपने में निश्चय कर लें। साधक वही होता है जो परमपिता परमात्मा के अनुशासन से अपने विचारों को गूंथ देता है, अपने विचारों की माला बना देता है। जैसे यजमान अपनी यज्ञशाला में स्वाहाः की माला बना देता है, प्रत्येक मन्त्र के साथ मे जो ज्ञान और विज्ञान है, उन तरंगों के साथ में स्वाहाः कह करके परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में प्रवेश करना चाहता है। जब तक मानव यह स्वीकार नहीं करेगा कि मैं परमात्मा के राष्ट्र में हूं, परमात्मा राष्ट्रपिता है, सर्वत्र प्राणी उसकी प्रजा हैं, तब तक कोई भी साधक संसार में अपनी साधना को पूर्ण नहीं कर सकता। जब तक प्राण और मन का मनका बन करके, ब्रह्मसूत्र में श्वास के साथ में मनका नहीं पिरोया जाता, तब तक मानव की वाणी का, विचारों का शुद्धिकरण नहीं होगा और जब तक शुद्धिकरण नहीं होगा तो ब्रह्म को कैसे प्राप्त करेंगे।

आज का विचार हमारा यह कह रहा है कि हम यह स्वीकार करें कि परमपिता परमात्मा राष्ट्रपिता है और वह जन-जन में विद्यमान है, वह कण-कण में विद्यमान है, वह जल-आपो की तरंगों में, वायु तरंगों में, एक-एक शब्द के रूप में अनुशासन कर रहा है और वह अनुशासनवेत्ता है। उसका अनुशासन बड़ा विशाल है, बड़ा अनुपम है, बड़ा गम्भीर कहलाता है। इसके ऊपर हम प्रायः विचार विनिमय करते रहते हैं। आज का विचार यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। इन जिज्ञासुओं को विचार करते-करते एक वर्ष बीत जाएगा तो यह विचार कल प्रकट करेगें। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन।

लाक्षागृह, बरनावा
३-३-१९८७

ऋत् और सत्

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों को गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। वह परमपिता परमात्मा महान है, मानो उसकी महानता इस संसार रूपी राष्ट्रवाद की प्रतिभा में निहित रहती है। हमारे यहां एक-एक वेद मंत्र में राष्ट्रवाद की चर्चा होती रहती है और भिन्न-भिन्न प्रकार के राष्ट्रों में अथवा राष्ट्रों की जो भिन्न-भिन्न प्रणाली हैं अथवा मानव के मस्तिष्कों की जो उपज है, वह वेद के वांग्मय में निहित रहती है। इसीलिए वह परमपिता परमात्मा राष्ट्रपिता है। मानव नाना प्रकार के मार्ग से होता हुआ जब वह परमपिता परमात्मा के सर्वमार्ग में प्रवेश करता है अथवा उसमें ओतप्रोत हो जाता है तो उसे यह अनुभूति होती है कि मैं ऐसे राष्ट्रपिता के राष्ट्र में आ गया हूं जैसे माता का बालक क्षुधा से पीड़ित हो करके माता की लोरियों में प्रवेश करता है तो उसकी नाना रूप में जो क्षुधा जागरूक हो रही थी वह शान्त हो जाती है।

परमपिता परमात्मा का जो राष्ट्र है, वह बड़ा अनूठा है, उसमें जाने के पश्चात मानव इस नाना प्रकार के बन्धनों का जो जगत है, इससे वह

उपराम हो जाता है और वह सर्वत्र उसी में अपने को प्रवेश कर देता है अथवा समर्पित कर देता है तो मेरे प्यारे! प्रत्येक मानव यह विचारने लगेगा कि यह परमात्मा का राष्ट्र है और हम सबको उसके अनुशासन में अपने जीवन को व्यतीत करना चाहिए। परन्तु जब उसके जीवन में और परमात्मा की जो जीवन सत्ता है, उसके मध्य में अन्तर्द्वन्द प्रतिपादित रहे, मानो उनका बहिष्कार कर देता है तो बेटा! सजातीय विचार रह जाते हैं, सजातीय क्रियाकलाप रह जाता है और जिन सजातीय क्रियाकलापों में प्रवेश हो करके मानव अपने में ऊंची-ऊंची कल्पनाएं, ऊर्ध्वा में कल्पना करने लगता है। आओ मेरे पुत्रो! विचार यह कि मानव को,अपने को परमात्मा के राष्ट्र में स्वीकार करना चाहिए। जिस प्रकार अबोध बाल्य माता की लोरियों को, उसकी आभा को अपना राष्ट्र स्वीकार करता है, इसी प्रकार ज्ञान और विज्ञान के मार्ग से गमन करता हुआ, परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में से अपने को स्वीकार कर लेना चाहिए।

पुत्रो! आज मैं तुम्हें वहीं ले जा रहा हूं जहां छः जिज्ञासुओं को ऋषि पिप्पलाद ने यह आज्ञा दी कि तुम जाओ और ब्रह्मचर्य व्रत से रहो और एक वर्ष तक गऊओं का पालन करो। तो मानो अपने-अपने विचार व्यक्त करते हुए उनका एक वर्ष व्यतीत हो गया। एक वर्ष पूर्व के अन्त माह में एक समय बेटा! छः जिज्ञासु विद्यमान हो गए और यह मनन-चिन्तन करने लगे कि आचार्य ने इससे पूर्व एक शब्द कहा था, मानो उसका एक वर्ष होने को है और उन्होंने यह कहा कि ब्रह्मचारियो तुम व्रत से रहो और मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे सकता हूं। परन्तु द्वितीय विचारों में उन्होंने यह कहा कि मैं जानता होऊंगा तो अवश्य उत्तर दूंगा। मुनिवरो! ऋषि-मुनियों की जो बुद्धि है, वह बड़ी तपोमयी कहलाती है और वह मेधा में जब प्रवेश कर जाते हैं तो वह प्रत्येक वाक्य को और प्रत्येक शब्द को बड़ा चिन्तनमयी बना करके, मानो अपनी बुद्धि और मेधा में प्रवेश हो करके उसके स्वरूप

को अपने अन्तर्हृदय में एक विषय बना लेते हैं। तो बेटा! उन्होंने पिप्पलाद जी के इस वाक्य को ले करके अपना एक चिन्तन का विषय बनाया।

ब्रह्मचारी कबन्धि ने यह कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है कि ऋषि ने यह कहा है कि मैं जानता होऊंगा तो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूंगा। तो उन्होंने यह क्यों कहा? क्योंकि ऋषि-मुनियों में अभिमान नहीं होता और वह जो भी शब्द उद्‌गीत रूप में गाते हैं, मानो वह उपराम हो करके गाते हैं और उसमें निष्काम कर्म की बड़ी विवेचना मानी गयी है। बेटा! आदि ऋषियों ने निष्कर्म अपने को बनाया और राष्ट्र को भी यह उपदेश दिया और परमात्मा के राष्ट्र में रहने के लिए परमात्मा का उद्‌गीत गाया और यह कहा कि परमपिता परमात्मा किसे प्राप्त होते हैं? **परमात्मा उसे प्राप्त होते हैं तो निष्कर्म होता है, जो निष्कर्मवादी करने वाला होता है।** निष्कर्म कौन करता है? निष्कर्म वह महान पुरुष करते हैं जिनके हृदयों में विशाल ज्ञान रूपी अग्नि जागरूक होती है और वह दूसरों के प्रति जागरूक रह करके अपने को जगाते रहते हैं। दूसरों को जागरूक बनाना और अपने को सुषुप्ति में लाना, यह एक नारकिक जीवन माना गया है, मानो द्वितीय को जगाना और अपने में सर्तक रहना है, अपने में यागाम ब्रह्मः जगाना है। जो अपने को नहीं जगाता है, वह दूसरों को भी नहीं जगा सकता, वह दूसरों को जागरूक नहीं बना सकता। इसीलिए **प्रत्येक मानव का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने को जागरूक बनाए,** दूसरों को जागरूक बनाने से पूर्व अपने में जागरूक बने।

मेरे पुत्रो! ऋषि-मुनियों का एक बड़ा विशाल विचार रहा है। उन्होंने कहा कि आचार्य ने हमें जागरूक बनाया है। इस लिए कहा है कि तुम उस समय तक गऊओं का पालन करो, जिससे तुम्हें अभिमान न आ जाए। मैं जानता हूं और मैं जानता होऊंगा तो उत्तर दूंगा, यह दो वाक्य हो गए।

जैसे उनका तप और अध्ययन था, उसके अनुसार तो आचार्य जानते थे परन्तु यह उच्चारण करना कि मैं जानता होऊंगा तो उत्तर दूंगा, उसका अभिप्राय यह है कि वह उस वाक्य को इस लिए उद्गीत रूपों में गाते रहते थे कि मैं परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में हूं, मैं उसकी प्रजा हूं और वह मेरा स्वामी है, मेरी रक्षा करने वाला है, हो सकता है कि मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर न दे सकूं। मेरी बुद्धि सीमित हो जाए, मैं सुषुप्ति में चला जाऊं, जागरूक न रह सकूं तो इस लिए मैं जानता होऊंगा तो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे सकूंगा।

मेरे प्यारे! इसका अभिप्राय यह हुआ कि **मानव को अभिमान नहीं करना चाहिए।** ज्ञान हो, ज्ञान के साथ में विवेक हो, विवेक के साथ में तप हो। तप, ज्ञान और विवेक यह तीनों एक ही सूत्र के मनके कहलाते हैं। उन्होंने यह वाक्य इस लिए कहा कि ऋषि और तपस्वी जो होते हैं वह निर्भिमानी होते हैं। वह परमात्मा के विषयों को ऐसे अपने में ओझल कर देते हैं जैसे मेघों में विद्युत अपना प्रकाश देती, मेघों को तपाती है परन्तु मेघों में अपने को ओझल कर लेती है। इसी प्रकार मानव परमात्मा के विषय में अपने को ओझल कर लेते हैं। तो विचार क्या? एक वर्ष तक उनका तप, चिन्तनमयी विचार चलता रहा और ब्रह्मचारी कबन्धि ने कहा कि वास्तव में आचार्य सुयोग्य हैं, यह पूज्य हैं, मानो निर्भिमानी हैं।

मेरे प्यारे! जब एक वर्ष समाप्त होने वाला था, सब जिज्ञासुओं ने अपनी यह विचारधारा बनायी कि हमें भी तो गऊओं का पालन करते हुए, गऊओं को अपने में धारयामि बनाते हुए, उनका दुग्धाहार करते हुए एक वर्ष होने वाला है। हमारे यहां बेटा! दो प्रकार के दुग्धाहार होते हैं। एक तो भौतिक होता है, जिससे शरीर का पालन-पोषण होता है, मानो वह तो पशु माना गया है। उस गौ नाम के पशु की रक्षा करना है। एक इन्द्रियों का जो रक्षक है, इन्द्रियों की रक्षा करनी है। रक्षा का अभिप्राय यह है कि

प्रत्येक इन्द्रिय का जो विषय है, उसका जितना भी ज्ञान है, विज्ञान है, उस ज्ञान और विज्ञान को जान करके हमें क्रियाशील बनाना है और उनका एक साकल्य बनाना है, साकल्य बना करके यज्ञशाला में उसकी आहुति देनी है, स्वाहा: कहना है। जैसे यज्ञशाला में यजमान नाना प्रकार के साकल्य को एकत्रित करता है, श्रद्धामयी घृत को ले करके अपने अन्तर्हृदय से स्वाहा: उच्चारण करता है तो उस यजमान की माला बन करके रहती है। जैसे मानव चक्षु प्रकाश के आश्रित रहता है, रसना स्वादों के रसों के आश्रित रहती है, त्वचा प्रेम और स्पर्श की आभा बन करके रहती है, इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है, उन सबका समावेश हृदय में माना गया है। हृदय में यह केन्द्रित हो जाते हैं और सबका साकल्य बन करके हृदय ही उनका कोष कहलाता है। यजमान इस प्रकार अपने हृदय का वह साकल्य बना करके आहुति देता है तो स्वाहा: रूपी शब्द पर साकल्य की तरंगें बन करके, अग्नि को अपना स्वरूप बना करके वह द्यौ लोक को प्राप्त हो जाती हैं और द्यौ लोक से जो यजमान चाहता है, देवताओं से वही प्राप्त कर लेता है। वही उन्हीं को प्राप्त होता है।

राम द्वारा वाजपेयी याग

बेटा! हमारे यहां नाना प्रकार के यागों में मुझे बहुत सा काल स्मरण आता रहता है। जब हम साहित्य में जाते हैं तो राष्ट्र का राजा जब अपने यहां याग करता है तो उसमें महानता की एक प्रतीति होने लगती है। मुझे स्मरण आता रहता है, त्रेता के काल की यह वार्ता है। भगवान राम ने जब लंका को विजय करके अयोध्या में प्रवेश किया तो उसके पश्चात बारह वर्ष का उन्होंने तप किया और तप करने के पश्चात राष्ट्र पिता बने, राष्ट्रवेत्ता बने तो कुछ समय तक वह राष्ट्र का पालन करते रहे परन्तु कुछ समय के पश्चात उनके राष्ट्र में एक अकाल पड़ गया और वह भयंकर अकाल

था। सब और जल प्लावन आ गया। तो मुनिवरो! राम ने यह विचारा कि अब मैं क्या करूं? माता अरुन्धति और वशिष्ठ दोनों विद्यालय में ब्रह्मचारियों को अध्ययन कराते रहते, ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ाते रहते। राम और उनकी देवी सीता दोनों ने भ्रमण करते हुए आचार्यकुल में प्रवेश किया। माता अरुन्धति और वशिष्ठ ने उनका आदर किया तो राम ने कहा कि प्रभु! आपको प्रतीत नहीं है कि हमारे राष्ट्र में अकाल हो रहा है। उन्होंने कहा कि प्रिय राम! तुम क्या चाहते हो? राम ने कहा यह अकाल नहीं रहना चाहिए, यह अकाल समाप्त होना चाहिए। उन्होंने कहा बहुत प्रिय।

मेरे प्यारे! महर्षि वशिष्ठ मुनि ने वार्ता प्रकट करते हुए यह कहा था कि तुम एक याग करो। उन्होंने अग्निष्टोम याग को त्याग करके वाजपेयी याग किया और ऋषि ने पन्द्रह दिवस तक उनके हृदय को हृदय ग्राही बनाया। राम और सीता, पति और पत्नी दोनों ने अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके पन्द्रह दिवस तक उन्होंने विद्या का अध्ययन किया और उस अन्न को पान किया,जिस अन्न पर किसी का अधिकार नहीं था। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है कि राम जैसे महापुरुष इस पृथ्वी के गर्भ से नाना प्रकार के अन्न को उत्पन्न करके पान करते थे। एक गऊ थी जो महात्मा वशिष्ठ से उन्हें प्राप्त हुई। वह कामधेनु गऊ का दुग्ध आहार करते थे और उस अन्न को पान करते जो स्वयं पुरुषार्थ करके उन्हें प्राप्त होता। इसके पश्चात उन्होंने वाजपेयी याग किया। वाजपेयी याग करने के पश्चात मेघ समाप्त हो गए। वायु मंडल में क्या, उनका विचार, उनका क्रियाकलाप स्वाहाः के साथ में द्यौ-लोक में चला गया।

मेरे प्यारे! तीन प्रकार के शब्दों की मैंने तुम्हें विवेचना की है, एक शब्द भूः, भुवः, स्वः मानो भूः से मध्य लोक को ऊंचा बनाना; भूवः में रहना, निचले तल को ऊंचा बनाना और स्वः लोक में जाना जहां यह तीनों

समाहित हो जाते हैं। तो विचार क्या? यह जो स्वः है, यह द्यौ मंडल कहलाता है। **द्यौ उसे कहते हैं जहां सर्वस्व प्रभु का भण्डार विद्यमान हो जाता है अथवा स्थिर हो जाता है।** वही अतिवृष्टि, अनावृष्टि के रूप में सूर्य की किरण के साथ में पृथ्वी की आभा गुरुत्व को ले करके इसे जलमग्न करता रहता है या उष्णता में परिणित करता रहता है। तो परिणाम यह कि वह अकाल समाप्त हो गया। राम का हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ। बेटा! हमारे इन विचारों का तारतम्य यह है कि यजमान जब यज्ञशाला में विद्यमान हो तो उसे अपने विचार कैसे बनाने हैं। यदि वह यह चाहता है कि अग्निष्टोम याग के द्वारा मैं अकाल को समाप्त करूं और वाजपेयी याग और अग्निष्टोम के द्वारा वृष्टि का संचार हो जाए तो यजमान, अध्वर्यु और ब्रह्मा के हृदय से मिलान करता उद्‌गाता जब वेद मन्त्रों की ध्वनि को गाता है तो वह द्यौ लोक में छा जाती है। वही द्यौ लोक तो इस संसार का केन्द्र माना गया है। जैसे मानव के कण्ठ का भाग शरीर का केन्द्र माना गया है, इसी प्रकार वह भी एक केन्द्र माना गया है। तो विचार क्या कि भगवान राम ने इसी प्रकार का याग किया और यागों का कर्मकाण्ड बड़ा विचित्र है।

मुनिवरो! विचार यह चल रहा था कि छः जिज्ञासु कल्पना कर रहे थे, वह उच्चारण कर रहे थे कि हृदय अगम्य है और मानव के हृदय, यजमान के हृदय का परमात्मा के हृदय से जब मिलान होता है तो प्रभु से जो वह अपने हृदय से चाहता है, वही उसे प्राप्त हो जाता है। वह इतना गम्भीर, इतना उद्‌गत और अद्वित्य विचारों वाला बन जाता है कि वह परमपिता परमात्मा की मुख्यता को प्राप्त कर लेता है। मेरे पुत्रो! विचार देता हुआ मैं इतनी दूरी चला गया हूं। गम्भीर विचारों से मैं साहित्य में चला गया हूं, विचार यह चल रहा था कि ऋषि-मुनि अपने में अध्ययन करते हुए मध्यरात्रि के अन्तिम पहर में वह महर्षि पिप्पलाद मुनि महाराज के कक्ष में पहुंचे। महर्षि पिप्पलाद मुनि महाराज जागरूक थे और अपने प्रभु से वन्दना कर

रहे थे और यह उच्चारण कर रहे थे कि हे प्रभु! तू तो अनन्त है, स्वतः प्रकाश है, स्वतः मानो याग है, आध्यात्मिक हो चाहे भौतिक हो। इस प्रकार वह अपने प्रभु से एकान्त स्थलि में शान्त वायुमंडल में प्रभु के हृदय से अपने हृदय का मिलान कर रहे थे। समन्वय हो करके, मानो संसार की आभा को त्याग करके शून्य बिन्दु की तरंगों में अपने को शान्त करना चाह रहे थे। मेरे प्यारे! जब छः जिज्ञासुओं ने इस प्रकार ऋषि के कौतुक को दृष्टिपात किया तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि ऋषि तो बड़े विचित्र हैं, यह सदैव चिन्तन में लगे रहते हैं और प्रभु के सान्निध्य में अपने को समर्पित कर रहे हैं। इसी प्रकार हमने भी अपने को समर्पित कर दिया है।

इसी विचार में एक वर्ष हो गया। जब अन्तिम दिवस आया तो छः जिज्ञासु उस गौ-शाला को, उस गौ-स्थलि को त्याग करके ऋषि पिप्पलाद के द्वार पर पहुंचे। पिप्पलाद मुनि ने कहा, आओ विराजो। ब्रह्मचारी एक पंक्ति में विद्यमान हो गए। सबसे प्रथम ब्रह्मचारी कबन्धि ने यह कहा कि महाराज! हम आपसे कुछ प्रश्न करना चाहते हैं। पिप्पलाद मुनि ने कहा, कीजिए। ब्रह्मचारी कबन्धि ने कहा कि प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं कि ऋत् और सत् किसे कहा जाता है? ऋषि ने उसका उत्तर दिया कि प्रकृति को ऋत् कहते हैं और ब्रह्म को सत् कहते हैं। सत् का ऋत् में पिरोना और ऋत् का सत् में पिरोने का नाम, मानो यह जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है। यदि ऋत् और सत् नहीं होंगे तो प्रकृति नहीं होगी, ब्रह्म ही ब्रह्म होगा तो यह रचना दृष्टिपात नहीं आएगी। हम भी तो ऋत् और सत् में पिरोए हुए हैं। माता के गर्भ में ऋत् और सत् दोनों का ही समन्वय होता है। तभी तो माता अपने महान पुत्र को जन्म देती है। उन्होंने अपना यह एक विचार दिया।

ब्रह्मचारी कबन्धि मौन होने लगे तो मौन होते-होते कबन्धि ने कहा कि प्रभु! यह ऋत् और सत्मयी जगत है? उन्होंने कहा सर्वत्र जगत ऋत्

समाहित हो जाते हैं। तो विचार क्या? यह जो स्वः है, यह द्यौ मंडल कहलाता है। **द्यौ उसे कहते हैं जहां सर्वस्व प्रभु का भण्डार विद्यमान हो जाता है अथवा स्थिर हो जाता है।** वही अतिवृष्टि, अनावृष्टि के रूप में सूर्य की किरण के साथ में पृथ्वी की आभा गुरुत्व को ले करके इसे जलमग्न करता रहता है या उष्णता में परिणित करता रहता है। तो परिणाम यह कि वह अकाल समाप्त हो गया। राम का हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ। बेटा! हमारे इन विचारों का तारतम्य यह है कि यजमान जब यज्ञशाला में विद्यमान हो तो उसे अपने विचार कैसे बनाने हैं। यदि वह यह चाहता है कि अग्निष्टोम याग के द्वारा मैं अकाल को समाप्त करूं और वाजपेयी याग और अग्निष्टोम के द्वारा वृष्टि का संचार हो जाए तो यजमान, अध्वर्यु और ब्रह्मा के हृदय से मिलान करता उद्गाता जब वेद मन्त्रों की ध्वनि को गाता है तो वह द्यौ लोक में छा जाती है। वही द्यौ लोक तो इस संसार का केन्द्र माना गया है। जैसे मानव के कण्ठ का भाग शरीर का केन्द्र माना गया है, इसी प्रकार वह भी एक केन्द्र माना गया है। तो विचार क्या कि भगवान राम ने इसी प्रकार का याग किया और यागों का कर्मकाण्ड बड़ा विचित्र है।

मुनिवरो! विचार यह चल रहा था कि छः जिज्ञासु कल्पना कर रहे थे, वह उच्चारण कर रहे थे कि हृदय अगम्य है और मानव के हृदय, यजमान के हृदय का परमात्मा के हृदय से जब मिलान होता है तो प्रभु से जो वह अपने हृदय से चाहता है, वही उसे प्राप्त हो जाता है। वह इतना गम्भीर, इतना उद्गत और अद्वित्य विचारों वाला बन जाता है कि वह परमपिता परमात्मा की मुख्यता को प्राप्त कर लेता है। मेरे पुत्रो! विचार देता हुआ मैं इतनी दूरी चला गया हूं। गम्भीर विचारों से मैं साहित्य में चला गया हूं, विचार यह चल रहा था कि ऋषि-मुनि अपने में अध्ययन करते हुए मध्यरात्रि के अन्तिम पहर में वह महर्षि पिप्पलाद मुनि महाराज के कक्ष में पहुंचे। महर्षि पिप्पलाद मुनि महाराज जागरूक थे और अपने प्रभु से वन्दना कर

रहे थे और यह उच्चारण कर रहे थे कि हे प्रभु! तू तो अनन्त है, स्वतः प्रकाश है, स्वतः मानो याग है, आध्यात्मिक हो चाहे भौतिक हो। इस प्रकार वह अपने प्रभु से एकान्त स्थलि में शान्त वायुमंडल में प्रभु के हृदय से अपने हृदय का मिलान कर रहे थे। समन्वय हो करके, मानो संसार की आभा को त्याग करके शून्य बिन्दु की तरंगों में अपने को शान्त करना चाह रहे थे। मेरे प्यारे! जब छः जिज्ञासुओं ने इस प्रकार ऋषि के कौतुक को दृष्टिपात किया तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि ऋषि तो बड़े विचित्र हैं, यह सदैव चिन्तन में लगे रहते हैं और प्रभु के सान्निध्य में अपने को समर्पित कर रहे हैं। इसी प्रकार हमने भी अपने को समर्पित कर दिया है।

इसी विचार में एक वर्ष हो गया। जब अन्तिम दिवस आया तो छः जिज्ञासु उस गौ-शाला को, उस गौ-स्थलि को त्याग करके ऋषि पिप्पलाद के द्वार पर पहुंचे। पिप्पलाद मुनि ने कहा, आओ विराजो। ब्रह्मचारी एक पंक्ति में विद्यमान हो गए। सबसे प्रथम ब्रह्मचारी कबन्धि ने यह कहा कि महाराज! हम आपसे कुछ प्रश्न करना चाहते हैं। पिप्पलाद मुनि ने कहा, कीजिए। ब्रह्मचारी कबन्धि ने कहा कि प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं कि ऋत् और सत् किसे कहा जाता है? ऋषि ने उसका उत्तर दिया कि प्रकृति को ऋत् कहते हैं और ब्रह्म को सत् कहते हैं। सत् का ऋत् में पिरोना और ऋत् का सत् में पिरोने का नाम, मानो यह जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है। यदि ऋत् और सत् नहीं होंगे तो प्रकृति नहीं होगी, ब्रह्म ही ब्रह्म होगा तो यह रचना दृष्टिपात नहीं आएगी। हम भी तो ऋत् और सत् में पिरोए हुए हैं। माता के गर्भ में ऋत् और सत् दोनों का ही समन्वय होता है। तभी तो माता अपने महान पुत्र को जन्म देती है। उन्होंने अपना यह एक विचार दिया।

ब्रह्मचारी कबन्धि मौन होने लगे तो मौन होते-होते कबन्धि ने कहा कि प्रभु! यह ऋत् और सत्मयी जगत है? उन्होंने कहा सर्वत्र जगत ऋत्

और सत् में है। मानव हृदय से संकल्प करता है और हृदय में ही वह संकल्प समाहित हो करके वह वाह्य रूप में आता है। हम ऋत् और सत् को जान करके अपने विचारों को क्रिया में लाना चाहते हैं। मेरे प्यारे! क्रिया तो उसी समय हो गयी जब संकल्प जागरूक हो गया और संकल्प का वाह्य रूप हो जाना यह हृदय के आन्तरिक उद्‌गार होते हैं। ऋषि कहता है कि यह संसार भी मानवीय सृष्टि का वर्णन है और ऋत् और सत् में यह प्रभु की सृष्टि का वर्णन है, मानो ब्रह्म का वर्णन है। यह मानवीय सृष्टि का जितना संकल्प है, इनका समन्वय बेटा! ऋत् और सत् से होता है। मेरे प्यारे! पिप्पलाद मुनि ने यह उत्तर दे दिया तो ऋषि बड़े प्रसन्न हुए।

द्वितीय सुनीति ब्रह्मचारी ने कहा कि हे प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं कि मानव किस के आश्रित रहता है, मानव किस के आधार पर अपने जीवन को व्यतीत करता है? तो ऋषि ने कहा कि मानव जाने-अनजाने में प्राण पर अपने जीवन को निर्धारित कर रहा है, अपने को स्वीकार कर रहा है। यह प्राण ही सखा है जो संसार को निगलता रहता है। बेटा! मानव नाना प्रकार का आहार करता है। आहार के पश्चात प्राण ही व्यवहार करता है क्योंकि उसमें क्रिया है, क्रिया के बिना व्यवहार अथवा वह अपने में गतिशील नहीं होता तो इसीलिए वही प्राण संसार की प्रत्येक वस्तु को निगल रहा है, वही उसे सूक्ष्म बनाता है, वही पृथ्वी पर आ करके, पृथ्वी से समन्वय करके दूसरे रूप में परमाणु विद्यमान हो जाते हैं। यह प्राण ही तो सखा है जो आता-जाता रहता है, उद्‌गीत गाता है। यह प्राण ही तो सखा है, जो आहार कर रहा है। आहारों से गतियां चल रही हैं, परमाणु बन करके अन्तरिक्ष में गमन कर रहे हैं। शब्दों की प्रतिभा में ध्वनि, ध्वनित हो करके द्यौ लोक में प्रवेश कर रही है, भू-लोक में प्रवेश कर रही है। यह प्राण सखा श्वास के साथ में परमाणुओं को ले करके क्षुधा के मूल में विद्यमान है। पृथ्वी

के गर्भ में वही आपो को प्राण शक्ति देता है, नाना प्रकार की वनस्पतियां उपज जाती हैं और वही वनस्पति मानव के किसी रुग्ण में, आहार के रूप में विद्यमान रहती हैं।

मेरे प्यारे! कैसा यह अनूठा जगत है? आज मैं इसके वर्णन करने में असमर्थ हो जाता हूं, ऐसा यह विचित्र जगत है। एक-एक वस्तु पर विचार विनिमय करो तो तुम्हारी वाणी मौन हो जाएगी, वाणी अपना क्रियाकलाप त्याग देगी। इसीलिए विचारने से प्रतीत होता है कि यह प्राणसत्ता कहीं वायु के साथ रहती है, कहीं आपो-जल के साथ रहती है। कहीं प्राणसत्ता अग्नि के साथ रहती है, कहीं यही प्राणसत्ता अन्तरिक्ष के गर्भ में ओतप्रोत रहती है। जितनी भी क्रियाएं हैं, यह सब ऋत् और सत् से गुथी हुई हैं। जैसे मानव के हृदय में जितना संसार का भौतिक या आध्यात्मिक विज्ञान हमें दृष्टिपात आ रहा है, यह मानव के हृदय से गुथा हुआ है और मानव का हृदय ऋत् और सत् से गुथा हुआ है। ऋत् और सत् का ब्रह्मव्रतो ज्ञान है, वह ब्रह्म का हृदय माना गया है। बेटा! मैं कहां चला गया हूं, यह विचार बड़े विचित्र हैं। दर्शनों में या वेद के वांग्मय में जब हम जाते हैं तो वह अथाह समुद्र कहलाता है, वह ब्रह्म का समुद्र है। जो यह कहता है कि मैं ब्रह्म हूं, वह ब्रह्म नहीं है, ब्रह्म तो एक अनूठा है, अरे! मानव तो मानव ही रहेगा।

बेटा! एक समय मैंने ऋषि के विचारों को ग्रहण किया था। च्यवन ऋषि की २००० वर्ष की आयु हो गयी, वह ब्रह्म के ऊपर चिन्तन करते रहते थे। एक समय वह यह उच्चारण करने लगे कि हे प्रभु! यदि मैं ऋत् और सत् के सम्बन्ध में जानता रहूं तो मेरी सहस्त्रों वर्ष की आयु होनी चाहिए और इसके पश्चात भी मैं निश्चय नहीं कर सकता कि मैं आपके सम्बन्ध में सर्वत्रता को जानता हूं। ऋषि-मुनियों का जो निर्भिमानी, निर्भय विचार है, वह बड़ा विचित्र रहा है, वह बड़ा अनूठा रहा है। मानव के ज्ञान और

विज्ञान में एक तीव्रता होनी चाहिए, महानता का दर्शन होना चाहिए, इससे वह ज्ञान और विज्ञान की उड़ाने उड़ सकेगा।

मुनिवरो! महर्षि पिप्पलाद मुनि ने उत्तर दिया कि यह प्राण ही तो आहार करता है। प्राणसत्ता ही आपो के रूप में पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार के खाद्य और खनिजों का निर्माण कर देती है। वही निर्माण मानव किन्हीं न किन्हीं रूपों में मांगता रहता है, विचारता रहता है, सूक्ष्म बनाता रहता है। वह प्राण उसी वस्तु को वहीं ले करके उस ऋत् में उसको पिरो देता है। जैसे स्वर्ण है, स्वर्ण का परमाणु बन गया है, परमाणु बन करके नाना रूपों में परिणित हो जाता है और फिर उसी परमाणु के रूप में प्रवेश हो जाता है। कोई वस्तु न कहीं जाती है न कहीं से आती है, मानो यह एक ऐसा क्रियाकलाप बना हुआ है कि अपनी-अपनी क्रियाओं में अणु और परमाणु रत्त रह करके अपने रूपों में प्रवेश कर जाते हैं। अपने रूप में बन करके वह आध्यात्मिक विज्ञान, भौतिक विज्ञान के रूप में प्रवेश करके, वह योगी बन करके वह योग में अपने में प्रयोग कर लेता है। राजा के यहां वैज्ञानिक उसी वस्तु में विज्ञान में रत्त हो जाते हैं। उन्हीं का यन्त्र बना करके उन्हीं तरंगों का, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में गमन करने लगते हैं। यह प्राण अपने में अनूठा है, यही आहार करता है, यही त्यागता है, यही मानव को अकृत बना देता है। पिप्पलाद यह कह करके मौन हो गए और कहा कि यह सृष्टि का चक्र बड़ा विचित्र है।

आज का विचार हमें प्रेरणा दे रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना और उसके ज्ञान को जानते हुए अपने में महान बनते चले जाएं। मेरे पुत्रो! ऋषि मुनि सब मौन हो गए तो पिप्पलाद ने उन्हें यह उपदेश दिया कि **ऋत् में मन और सत् में प्राण है।** इसीलिए मुनिवरो! सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान जितना भी साधक वर्ग हुआ है, वह अपने जीवन

का तारतम्य बनाता है, परमात्मा के मिलन करने का एक ही रूप बनाता है क्योंकि उन दोनों का विभाजन हो गया है। ऋत् का विभाजन हो गया है, सत् का विभाजन हो गया है। साधक उस विभक्त क्रिया को एक सूत्र में लाना चाहता है। वह कैसे लाता है? वह प्राण को ऋत् में पिरो देता है और ऋत् को सत् में पिरो करके उन दोनों का समन्वय हो करके एक पिण्ड बन जाता है, एक धारा बन जाती है, मानो एक तारतम्य बन जाता है, एक माला बन जाती है और उस माला को धारण करके साधक उस ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

बेटा! वेद का ऋषि अपना विचार देता हुआ, अपने विचार व्यक्त करते हुए इस संसार सागर से पार होने की कल्पना करता है। महानता में जाने की कल्पना करता है और यह चाहता है कि मेरे अन्तर्हृदय में शान्ति आ जाए, मैं मृत्युंजय बन जाऊं, मानो मैं अन्धकार में न रहूं, प्रकाश में चला जाऊं। तो मानव को प्रभु के राष्ट्र में जाने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। आज का विचार अब यह समाप्त होने जा रहा है, आज के विचारों का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार से पार हो जाएं। समय मिलेगा तो मेरे प्यारे महानन्द जी, जिनकी धीमी-धीमी प्रेरणा आती रहती है, कल उनका विचार व्यक्त किया जा सकेगा। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन पाठन।

लाक्षागृह, बरनावा
४-३-१९८७

सार्थक जीवन

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस महान मेरे ममतामयी देव की महिमा का गुणगान हम गाते ही रहते हैं; क्योंकि हमारी अन्तरात्मा का स्वभाव ऐसा विचित्र बन जाता है कि जैसे अपने सखा के लिए यह अग्रसर हो रहा है, जैसे माता का पुत्र बाल्यकाल में माता के लिए अग्रसर रहता है, मानो वह माता की गाथा गा रहा था। नाना प्रकार की सूर्य की किरणें संसार को प्रकाशित करती रहती हैं परन्तु प्रकाश करने के पश्चात भी वह उसी में ओतप्रोत हो जाती हैं, उसी में लिप्त हो जाती हैं। क्यों हो जाती हैं? क्योंकि वह उसका सखा है। इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी चाहे वह वाह्य रूप में अपने प्रमाद में, अपनी लोलुपता में उसका वाह्य जगत कुछ और ही बना हुआ है परन्तु जब वह शान्त मुद्रा में विद्यमान होता है तो अपने सखा के लिए वह कामना कर रहा है। वह अपने दुर्गुणों के ऊपर चिन्तन कर रहा है और यह विचार रहा है कि मेरे में जो किसी प्रकार का अवगुण है, वह शान्त हो जाना चाहिए। यह प्रत्येक प्राणी के जीवन में घटित होता है चाहे वह प्रमादी भी क्यों न हो।

बेटा! एक नहीं, इस विश्व में सर्वत्र प्राणी यह चिन्तन करता है कि मैं अपने सखा के द्वार पर आना चाहता हूं। क्योंकि जब माता का पुत्र माता

से मिलन की कामना कर रहा है तो क्या यह आत्मा अपने प्रभु के लिए, अपने सखा के लिए कामना नहीं करता है? जिस प्रकार अग्नि यज्ञशाला में प्रदीप्त करते हैं तो अग्नि का ऊर्ध्वा मुख बन जाता है। वह क्यों बनता है? क्योंकि उसका जो सखा है,वह ऊर्ध्वा में रहता है, वह अपने सखा के लिए उड़ान उड़ रहा है। तो विचार क्या? प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्याएं, प्रत्येक मेरा भोला ऋषि मंडल, सर्वत्र प्राणियों की यह कामना रहती है कि मेरे जीवन में सुखद और आनन्द की वृष्टि होनी चाहिए। परन्तु यह बिना तप के नहीं होती, आलस्य और प्रमादियों की नहीं होती। यह जो कर्मठ प्राणी होते हैं,उनके लिए होती है।

महानन्द जी की प्रेरणा

आओ मेरे पुत्रों! मैं विशेष चर्चाएं तुम्हें इस सम्बन्ध में नहीं प्रकट करने आया हूं, केवल परिचय देने के लिए आया हूं। महानन्द जी मुझे नाना प्रकार की प्रेरणा देते रहते हैं, प्रेरित करते रहते हैं। यह तो मैं नहीं जान पाता कि यह प्रेरित क्यों करते हैं परन्तु इनका एक स्वभाव बना हुआ है। जैसे पुत्र का माता के प्रति स्वभाव है, जैसे सूर्य की किरण का सूर्य के प्रति स्वभाव है, इसी प्रकार इनका एक स्वभाव ही हम स्वीकार करते हैं। कोई वाक्य नहीं, इनकी नाना प्रेरणाएं चलती रहती हैं।

सूर्य का नाम शिव

मेरे पुत्रो! हमारे यहां वैदिक साहित्य में रूद्र की विवेचना आती रहती है। रूद्रश्चमा रूद्रा न हरणस्वतम् ब्रह्मे:, हे रूद्र! तू हमारा कल्याण करने वाला है। इस मानव के शरीर में जब रूद्र का वास हो जाता है तो देवासुर संग्राम प्रारम्भ हो जाता है। देव: प्रवृत्तियों की आभाएं कभी किसी काल में ऊर्ध्वा में और किसी काल में ध्रुवा में हो जाती हैं। परन्तु जब देव प्रवृत्ति बलवती

हो जाती है तो वह जो संकीर्णता है, अधूरापन है जीवन में, वह समाप्त हो जाता है। असुर प्रवृत्तियों का ह्रास हो जाता है तो उम काल में हमारे यहां वैदिक साहित्य में भिन्न-भिन्न प्रकार की विवेचना आती रहती हैं। एक-एक शब्द के नाना पर्यायवाची शब्द आते हैं जैसे वेद मन्त्रों में सूर्य की विवेचना है।

बेटा! मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में वर्णन किया कि शिव के नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्द हैं। जैसे शिव नाम सूर्य को कहते हैं, शिव नाम आत्मा को कहते हैं, शिव नाम पर्वतों को कहते हैं वैसे शिव नाम परमपिता परमात्मा को भी कहा जाता है । इसके नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्द है परन्तु वेद मन्त्र यह कहता है कि दैत्य और देवताओं का जब संग्राम होता है तब यह पृथ्वी विष उगलने लगती है और पृथ्वी के विष को शिव अपने कंठ में धारण कर लेता है। वह कौन सा शिव है जो विष को पान कर रहा है? जब ग्रीष्म ऋतु आती है तो यह पृथ्वी विष उगलने लगती है, पर्वतों से विष उगलना प्रारम्भ हो जाता है तो उस समय यह जो शिव रूपी सूर्य है, यह अपने में उस विष को मानव कल्याण के लिए पान कर लेता है। वह शिवम सुन्दरम बन जाता है। उसकी नाना प्रकार की जो किरणें हैं, कहीं शोधन कर रही हैं, कहीं विषधरों का निर्माण कर रही हैं। इसको वेद नाना रूपों में परिणित कर रहा है। जब यह शिव बन करके उस विष को पान कर लेता है तो यहां इस प्रकरण में तो शिव नाम सूर्य का है।

आत्मा का नाम शिव

बेटा! एक वेद मन्त्र और आता है कि एक स्थलि में शिव नाम आत्मा को कहते हैं जब यह अपने कामदेव को विजय कर लेता है। कामदेव क्या है? इस संसार की और चित्त की जितनी प्रवृत्तियां हैं, उनको समेट करके

यह उन पर अनुशासन कर लेता है, इन्द्रियों पर अनुशासन कर लेता है। इन्द्रियों पर अनुशासन करने के पश्चात जितनी विडम्बना मानव के हृदय में होती है, वह किसी भी काम से हो, वह समाप्त हो जाती हैं। संसार की जितनी कामना है, वह इसके ऊपर अधिपत्य कर लेता है तो उस समय यह आत्मा शिव बन करके जितने भी संसार के स्वादन हैं, वह इस शिव रूपी आत्मा के समीप नृत्य करने लगते हैं। त्रिगुणी माया में यह ब्रह्मांड है, यह जो त्रिगुण हैं रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण, इनकी प्रतिक्रियाएं भी समाप्त हो जाती हैं, एक रस हो जाती हैं। रजोगुण, तमोगुण न रह करके वह सतोगुण में रमण करता है। सत् से भी ऊर्ध्वा में रमण करता है। उस योगी को, काम को विजय करने वाले उस शिव को विषधर सर्प भी प्रिय हो जाते हैं। उन्हें वह योगेश्वर अपने कंठ में धारण कर लेता है।

विषधर शिव

मेरे पुत्रो! वह विषधर काम, क्रोध, लोभ, मोह थे जो अनेकों मानव में विषधर का कार्य कर रहे थे। यह पृथ्वी पर रहने वाले सर्प की विवेचना नहीं है, मानो वह सर्प के आकार का कौन? रजोगुण, तमोगुण जो मानव को संसार-सागर में लाते रहते हैं और उससे मानव अपमानित हो जाता है, उससे वह योगेश्वर अपने में घृणित हो जाता है। परन्तु जब वह शिव बन जाता है, शिवम् सुन्दरम बन जाता है उस समय वह त्रिगुणी माया, अन्तर्हृदय में समाहित हो जाती है और सर्प राज कंठ में आ जाते हैं और जो चन्द्रमा इस पृथ्वी को अमृत दे रहा था योगी उसका आस्वादन ले रहा है। वह कैसा शिव है? वाह रे देव! तू कैसा प्रिय है? वह शिव आनन्द ले रहा है। रसों का स्वादन ले रहा है और उसके आंगन में से उसकी ऊर्ध्वा से गंगा का निकास हो रहा है। निर्मल गंगा उसकी जटाओं में विद्यमान रहती है। मेरे प्यारे! एक गंगा ही नहीं रहती, यमुना भी रहती है, सरस्वती भी रहती है।

हो जाती है तो वह जो संकीर्णता है, अधूरापन है जीवन में, वह समाप्त हो जाता है। असुर प्रवृत्तियों का ह्रास हो जाता है तो उस काल में हमारे यहां वैदिक साहित्य में भिन्न-भिन्न प्रकार की विवेचना आती रहती हैं। एक-एक शब्द के नाना पर्यायवाची शब्द आते हैं जैसे वेद मन्त्रों में सूर्य की विवेचना है।

बेटा! मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में वर्णन किया कि शिव के नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्द हैं। जैसे शिव नाम सूर्य को कहते हैं, शिव नाम आत्मा को कहते हैं, शिव नाम पर्वतों को कहते हैं वैसे शिव नाम परमपिता परमात्मा को भी कहा जाता है । इसके नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्द है परन्तु वेद मन्त्र यह कहता है कि दैत्य और देवताओं का जब संग्राम होता है तब यह पृथ्वी विष उगलने लगती है और पृथ्वी के विष को शिव अपने कंठ में धारण कर लेता है। वह कौन सा शिव है जो विष को पान कर रहा है? जब ग्रीष्म ऋतु आती है तो यह पृथ्वी विष उगलने लगती है, पर्वतों से विष उगलना प्रारम्भ हो जाता है तो उस समय यह जो शिव रूपी सूर्य है, यह अपने में उस विष को मानव कल्याण के लिए पान कर लेता है। वह शिवम सुन्दरम बन जाता है। उसकी नाना प्रकार की जो किरणें हैं, कहीं शोधन कर रही हैं, कहीं विषधरों का निर्माण कर रही हैं। इसको वेद नाना रूपों में परिणित कर रहा है। जब यह शिव बन करके उस विष को पान कर लेता है तो यहां इस प्रकरण में तो शिव नाम सूर्य का है।

आत्मा का नाम शिव

बेटा! एक वेद मन्त्र और आता है कि एक स्थलि में शिव नाम आत्मा को कहते हैं जब यह अपने कामदेव को विजय कर लेता है। कामदेव क्या है? इस संसार की और चित्त की जितनी प्रवृत्तियां हैं, उनको समेट करके

यह उन पर अनुशासन कर लेता है, इन्द्रियों पर अनुशासन कर लेता है। इन्द्रियों पर अनुशासन करने के पश्चात जितनी विडम्बना मानव के हृदय में होती है, वह किसी भी काम से हो, वह समाप्त हो जाती हैं। संसार की जितनी कामना है, वह इसके ऊपर अधिपत्य कर लेता है तो उस समय यह आत्मा शिव बन करके जितने भी संसार के स्वादन हैं, वह इस शिव रूपी आत्मा के समीप नृत्य करने लगते हैं। त्रिगुणी माया में यह ब्रह्मांड है, यह जो त्रिगुण हैं रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण, इनकी प्रतिक्रियाएं भी समाप्त हो जाती हैं, एक रस हो जाती हैं। रजोगुण, तमोगुण न रह करके वह सतोगुण में रमण करता है। सत् से भी ऊर्ध्वा में रमण करता है। उस योगी को, काम को विजय करने वाले उस शिव को विषधर सर्प भी प्रिय हो जाते हैं। उन्हें वह योगेश्वर अपने कंठ में धारण कर लेता है।

विषधर शिव

मेरे पुत्रो! वह विषधर काम, क्रोध, लोभ, मोह थे जो अनेकों मानव में विषधर का कार्य कर रहे थे। यह पृथ्वी पर रहने वाले सर्प की विवेचना नहीं है, मानो वह सर्प के आकार का कौन? रजोगुण,तमोगुण जो मानव को संसार-सागर में लाते रहते हैं और उससे मानव अपमानित हो जाता है, उससे वह योगेश्वर अपने में घृणित हो जाता है। परन्तु जब वह शिव बन जाता है, शिवम् सुन्दरम बन जाता है उस समय वह त्रिगुणी माया, अन्तर्हृदय में समाहित हो जाती है और सर्प राज कंठ में आ जाते हैं और जो चन्द्रमा इस पृथ्वी को अमृत दे रहा था योगी उसका आस्वादन ले रहा है। वह कैसा शिव है? वाह रे देव! तू कैसा प्रिय है? वह शिव आनन्द ले रहा है। रसों का स्वादन ले रहा है और उसके आंगन में से उसकी ऊर्ध्वा से गंगा का निकास हो रहा है। निर्मल गंगा उसकी जटाओं में विद्यमान रहती है। मेरे प्यारे! एक गंगा ही नहीं रहती, यमुना भी रहती है, सरस्वती भी रहती है।

हो जाती है तो वह जो संकीर्णता है, अधूरापन है जीवन में, वह समाप्त हो जाता है। असुर प्रवृत्तियों का ह्रास हो जाता है तो उस काल में हमारे यहां वैदिक साहित्य में भिन्न-भिन्न प्रकार की विवेचना आती रहती हैं। एक-एक शब्द के नाना पर्यायवाची शब्द आते हैं जैसे वेद मन्त्रों में सूर्य की विवेचना है।

बेटा! मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में वर्णन किया कि शिव के नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्द हैं। जैसे शिव नाम सूर्य को कहते हैं, शिव नाम आत्मा को कहते हैं, शिव नाम पर्वतों को कहते हैं वैसे शिव नाम परमपिता परमात्मा को भी कहा जाता है । इसके नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्द है परन्तु वेद मन्त्र यह कहता है कि दैत्य और देवताओं का जब संग्राम होता है तब यह पृथ्वी विष उगलने लगती है और पृथ्वी के विष को शिव अपने कंठ में धारण कर लेता है। वह कौन सा शिव है जो विष को पान कर रहा है? जब ग्रीष्म ऋतु आती है तो यह पृथ्वी विष उगलने लगती हैं, पर्वतों से विष उगलना प्रारम्भ हो जाता है तो उस समय यह जो शिव रूपी सूर्य है, यह अपने में उस विष को मानव कल्याण के लिए पान कर लेता है। वह शिवम सुन्दरम बन जाता है। उसकी नाना प्रकार की जो किरणें हैं, कहीं शोधन कर रही हैं, कहीं विषधरों का निर्माण कर रही हैं। इसको वेद नाना रूपों में परिणित कर रहा है। जब यह शिव बन करके उस विष को पान कर लेता है तो यहां इस प्रकरण में तो शिव नाम सूर्य का है।

आत्मा का नाम शिव

बेटा! एक वेद मन्त्र और आता है कि एक स्थलि में शिव नाम आत्मा को कहते हैं जब यह अपने कामदेव को विजय कर लेता है। कामदेव क्या है? इस संसार की और चित्त की जितनी प्रवृत्तियां हैं, उनको समेट करके

यह उन पर अनुशासन कर लेता है, इन्द्रियों पर अनुशासन कर लेता है। इन्द्रियों पर अनुशासन करने के पश्चात जितनी विडम्बना मानव के हृदय में होती है, वह किसी भी काम से हो, वह समाप्त हो जाती हैं। संसार की जितनी कामना है, वह इसके ऊपर अधिपत्य कर लेता है तो उस समय यह आत्मा शिव बन करके जितने भी संसार के स्वादन हैं, वह इस शिव रूपी आत्मा के समीप नृत्य करने लगते हैं। त्रिगुणी माया में यह ब्रह्मांड है, यह जो त्रिगुण हैं रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण, इनकी प्रतिक्रियाएं भी समाप्त हो जाती हैं, एक रस हो जाती हैं। रजोगुण, तमोगुण न रह करके वह सतोगुण में रमण करता है। सत् से भी ऊर्ध्वा में रमण करता है। उस योगी को, काम को विजय करने वाले उस शिव को विषधर सर्प भी प्रिय हो जाते हैं। उन्हें वह योगेश्वर अपने कंठ में धारण कर लेता है।

विषधर शिव

मेरे पुत्रो! वह विषधर काम, क्रोध, लोभ, मोह थे जो अनेकों मानव में विषधर का कार्य कर रहे थे। यह पृथ्वी पर रहने वाले सर्प की विवेचना नहीं है, मानो वह सर्प के आकार का कौन? रजोगुण,तमोगुण जो मानव को संसार-सागर में लाते रहते हैं और उससे मानव अपमानित हो जाता है, उससे वह योगेश्वर अपने में घृणित हो जाता है। परन्तु जब वह शिव बन जाता है, शिवम् सुन्दरम बन जाता है उस समय वह त्रिगुणी माया, अन्तर्हृदय में समाहित हो जाती है और सर्प राज कंठ में आ जाते हैं और जो चन्द्रमा इस पृथ्वी को अमृत दे रहा था योगी उसका आस्वादन ले रहा है। वह कैसा शिव है? वाह रे देव! तू कैसा प्रिय है? वह शिव आनन्द ले रहा है। रसों का स्वादन ले रहा है और उसके आंगन में से उसकी ऊर्ध्वा से गंगा का निकास हो रहा है। निर्मल गंगा उसकी जटाओं में विद्यमान रहती है। मेरे प्यारे! एक गंगा ही नहीं रहती, यमुना भी रहती है, सरस्वती भी रहती है।

मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में एक वाक्य कहा था पुत्रो! तुम्हें स्मरण होगा। एक समय जब समुद्र का देवताओं और दैत्यों ने मन्थन किया तो उस समय दैत्यों ने समुद्र के फेन से इन्द्र को आच्छादित कर दिया था। तुम्हें यह प्रतीत है, यह वाक्य वेद के एक मन्त्र की कुछ आख्यिाकाओं में रमण कर रहा था। इसका अभिप्राय: यह है कि योगेश्वर गंगा, यमुना, सरस्वती तीनों का मिलन करके त्रिवेणी बनता है। त्रिवेणी के ऊर्ध्वा भाग में मस्तिष्क है और मस्तिष्क के ऊर्ध्वा भाग में दो कृतिका होती हैं। गंगा, यमुना, सरस्वती इन तीनों नाड़ियों में जो सुन्दरम् प्राण तत्व गति कर रहा है उससे कृतिकाओं में गति आ जाती है तो ब्रह्मरन्ध्र में गति आ जाती है। प्राण और मन की धुकधुकी से आत्मा का सहवास होने लगता है तो ब्रह्मरन्ध्र में जो चक्की होती है वह गति करने लगती है और ब्रह्मरन्ध्र में से तरंगे उत्पन्न होती हैं। लोक-लोकान्तरों, आकाश गंगाओं से, उन तरंगों का समन्वय हो जाता है और वह उस समय इन्द्र को आच्छादित कर देती हैं जो अभिमान में परिणित रहता है, जो पद की लोलुपता में रहता है। इन्द्र के नाना पर्यायवाची शब्द हैं परन्तु यहां इन्द्र तो संसार रूपी समुद्र है, इसके फेन से आभाम् ब्रह्मणे, उसके मस्तिष्क को दूरी कर दिया जाता है, वह अभिमान है।

मुनिवरो! देखो, मैं उस शिव की कल्पना कर रहा था, उस शिव कि गर्भ की वार्ता प्रकट कर रहा था जो अपने में विष धारण करता है। वह जो संसार का विष है काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह, उसे भी वह आत्मारूपी शिव पान कर लेता है तो यहां योगे योगे योगे योगे शिवम् सुन्दाणी अकृतानी दवम् योगसात:, योग की विवेचना में शिव की कल्पना की जाती है। मेरे पुत्रो! मैंने पुरातन काल में तुम्हें बहुत सी वार्ताएं स्मरण कराई थीं परन्तु आज मैं फिर शिव की आभा में चला गया हूं। शिव नाम यहां आत्मा को माना है और शिव नाम परमात्मा का भी है। जो संसार पर शासन कर रहा है, ब्रह्मांड को गति दे रहा है, उसे अनुशासित कर रहा है, उस परमपिता परमात्मा का

नाम शिव है। यहां प्रकरण क्या कहता है कि सर्पम ब्रह्मणे: वरुणास्तुते, वह सर्वत्र कामनाओं को अपने में वशीभूत कर लेता है। ऐसे योगी को हमें अपने हृदय से नमस्कार करना चाहिए, ऐसे योगी को हम अपने में धारण करते चले जाएं जिससे हमारा जीवन महान बन जाए।

व्याकरण

मुनिवरो! शिव की एक कल्पना एक ध्वनि की आराधना और रही है। हमारे यहां वैदिक साहित्य में एक डमरू की आभा आती है। सृष्टि के पिता ने जब संसार को रचा तो यह प्रकृति रूपी पार्वती नृत्य करने लगी, शिव का तांडव नृत्य होने लगा और डमरू की ध्वनि आ रही है। हमारे यहां इस सम्बन्ध में नाना प्रकार के विचार हैं। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में भी वर्णन किया था कि हमारे यहां नाना प्रकार का पंचीकरण है। मस्तिष्क में एक ब्रह्मरन्ध्र है, दो कृतिका हैं और गंगा, यमुना, सरस्वती का मिलन होता है। ब्रह्मरन्ध्र के ऊर्ध्वा भाग में एक पिपाद स्थान है। इस पिपाद स्थान में अमृत रहता है। इन सबका जब मिलन होता है तो वहां एक तांडव अर्थात नृत्य होने लगता है और वहां एक विचित्र ध्वनि उत्पन्न होती है। प्राण और मन की सहकारिता से और प्रकृति के सन्निधान मात्र से उस ध्वनि को योगेश्वर लेखनीबद्ध कर देता है।

मेरे प्यारे! यहां ही व्याकरण की उत्पत्ति मानी जाती है और विचारों का इस सम्वन्ध में चिन्तन किया जा सकता है। वह जो ध्वनि होती है, उसको ऋषि अनहद कहते हैं। इस ध्वनि को श्रवण करना, इन शब्दों को लाना, सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने यह कार्य किया। ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने बहुत अभ्यास किया। अंगिरस ऋषि ने अनुसन्धान किया। वायु मुनि महाराज ने इस ध्वनि को जानने के लिए अभ्यास किया और इस ध्वनि में जो भी शब्दावलियों की कड़ीबद्ध ध्वनि बनती है, उसी का नाम व्याकरण है। मेरे प्यारे! जब रसना

और तालु का समन्वय होता है और वह कृतिका रमण करती है, मिलन होता है तो शब्द का आकार बन जाता है। इस शब्द के आकार को, जो कि ब्रह्मरन्ध्र में होता है, इस आकार को जानने के लिए मौन हो करके प्राण और मन दोनों की ध्वनि के मिलान होने से, दोनों की ध्वनि के जानने से इसकी प्रतिभा तुम्हें प्राप्त होने लगती है। इससे तुम बहुत अनुसन्धान कर सकते हो। मैं इस सम्बन्ध में केवल इतना उच्चारण कर सकता हूं।

बेटा! अपने पूज्यपाद गुरु के द्वारा मैंने १०१ वर्ष तक योग के अभ्यास में जीवन को परिणित किया था। आज मैं इस आपत्ति काल में कुछ नहीं उच्चारण कर सकता। समय की विकृति जब आ जाती है, समय की जब ध्वनि परिवर्तित होती है तो देखो, इसमें मानव कहीं का कहीं चला जाता है। विचार तुमने जान लिया होगा। अभ्यास करने से यह सब कुछ प्राप्त होता है। मेरी प्यारी माताएं इस अभ्यास को प्राय: करती रही हैं।

महाराजा दिलीप का पुत्रेष्टि याग

तुम्हें प्रतीत हो गया होगा पुत्रो! जब दिलीप के कोई सन्तान नहीं हुई तो ऋषि-मुनियों को एकत्रित किया गया और यह कहा कि महाराज! द्वितीय संस्कार तो मेरे लिए एक शाप है, मेरे कुल में ऐसा नहीं हुआ परन्तु मेरी इच्छा यह है कि पुत्रेष्टि याग हो और सन्तान का जन्म होना चाहिए। उस समय सब ऋषियों ने एक स्वर में कहा था कि तुम नन्दिनी की सेवा करो, तपस्या करो और देवी पत्नी से कहो कि तुम प्राणायाम करो। तुम मन और प्राण को एकाग्र करके ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वा गति बनाओ। क्योंकि बारह वर्षों का जीवन वैसे ही पूर्ण नहीं होता। देवी ने नत मस्तक हो करके कहा प्रभु! ऐसा ही होगा। मेरे प्यारे! उनका नाम सुलक्षणा था, ऐसा रघुवंश में आता है और बेटा! मुझे स्मरण भी है। उनसे आग्रह किया गया कि सन्तान का जन्म होना चाहिए।

एक पुत्रनिर्तिका प्राणायाम होता है। यह बहुत विचित्र वाक्य मैं तुम्हें प्रकट करा रहा हूं। बहुत पुरातन काल में महाराजा अश्वपति के यहां मैं बारह वर्ष तक पुत्रियों को अभ्यास कराता रहा। परन्तु वह कैसे अभ्यस्त होता है? पुत्रो! मैं यह वाक्य कभी किसी काल में ही प्रकट कराता हूं। महाराजा दिलीप की धर्म देवी सुलक्षणा की एक सहपाठिन का नाम शकुन्तला था। दोनों को अभ्यस्त कराया कि तुम मन और प्राण को इस संसार की प्रत्येक आभा में दृष्टिपात करो। उन्होंने कहा बहुत प्रिय। इसके पश्चात एक वृक्ष जिसका नाम ही पुत्रदा है, उसका पांचांग बनाया। उसके समकालीन पांचों वस्तुओं को ले करके और उसमें पीपल के फल को लिया और वट वृक्ष के दुग्ध को लिया और उसे अग्नि में तपा करके उसका पात बना लिया गया। बारह वर्षों तक वही उसका पान रहा क्योंकि उसमें जो सूक्ष्मता थी, रज जन्मव्रहे वरुणा सरस्वतम वहि कृतानी। बेटा! तुम जान गए होंगे। यह वस्तु न रहने से उन्हें कुछ अन्न का सूक्ष्म आहार भी कराते थे। उस अन्न के आहार में तन्दुल होते हैं और तन्दुलों में 'ग्रहीस्ताम' गो रस होता है। वह पान कराया गया।

बारह वर्ष तक महाराजा दिलीप तो कामधेनु के पीछे गति कर रहे हैं और देवी प्राणायाम कर रही है। पांचांगों का पान करती हुई वह प्राणायाम कर रही है। पुत्रदा प्राणायाम कौन सा होता है? मेरे प्यारे! देखो, पद्म आसन और सिद्धासन, दोनों आसनों से प्रातःकाल विद्यमान हो खेचरी मुद्रा का अभ्यास किया जाता है और शंकुचित प्राणायाम किया जाता है। मध्य काल में चन्द्रवाहिनी प्राणायाम किया जाता है। रसना का तालु से समन्वय मिलाते हुए और उसमें जब प्राण से वायु का सिंचन किया जाता है तो वायु में चन्द्रमा के जो परमाणु गति कर रहे हैं, वही परमाणु शरीर में आएंगे, द्वितीय परमाणु नहीं आ सकता।

बेटा! मैं बहुत विचित्र वाक्य प्रकट करा रहा हूं। एक वायु केतु प्राणायाम होता है। इसमें पृथ्वी के परमाणु आते हैं। चन्द्रमा के जब त्रिवान परमाणु आने

लगे तो वह मां सुलक्षणा प्रभु की गोद में चली गयी, प्रभु के आंगन में रमण करने लगी। मेरे पुत्रो! उद्देश्य क्या कि यह राष्ट्र चले और लक्ष्य यह कि मैं प्रभु को प्राप्त करूं। इनके द्वारा यह दोनों लक्ष्य थे। महाराजा दिलीप कामधेनु नन्दिनी के पीछे, नन्दिनी जहां जाती है, वहीं जाते हैं। बेटा! यह इतिहास है। मुझे स्मरण है बारह वर्षों में दिलीप जी कहां-कहां रहे, यह तो विषय बहुत विस्तृत है। एक-एक वर्ष के एक-एक दिवस की मैं विवेचना करूंगा तब यह पुत्रेष्टि यज्ञ की विवेचना पूर्ण हो सकेगी, आज तो केवल मैं परिचय दे रहा हूं। उसके पश्चात बारह वर्ष उन्होंने पुत्रदा पांचांग का पान किया और दिलीप जी नन्दिनी को ले करके जब अयोध्या में आए तो उन्होंने ऋषि-मुनियों को एकत्रित कर पुत्रेष्टि याग किया।

पुत्रेष्टि याग का जो कर्मकांड है उसमें उसी प्रकार का साकल्य एकत्रित होता है। पुत्रदा की पांचों वस्तु सामग्री में, साकल्य में परिणित होती हैं। तन्दुल होते हैं, अन्नाद होता है और भी भिन्न-भिन्न प्रकार की औषधियां होती हैं जो आन्तरिक जगत में परमाणु प्रवेश करा देती हैं। उससे वह परमाणु उत्पन्न हो जाते हैं, जिन परमाणुओं से माता अपने लक्ष्य में पूर्णता को प्राप्त हो जाती है। मेरे पुत्रो! वह साकल्य बनाया गया। देखो, याग के पूर्ण होने के नौ माह नौ दिन के पश्चात महाराजा रघु का जन्म हुआ था। रघु कैसा विचित्र था, यह मुझे साक्षी देने की आवश्यकता नहीं। जितना राष्ट्र में द्रव्य था, उसका सर्वत्र याग कर देता था। महाराजा कुबेर से ले करके ब्रह्मचारी कौत्स को दान दे रहा है। कैसे विचित्र बालक माताओं के गर्भ से उत्पन्न होते हैं, इनका साक्षी देना मेरे लिए कोई शोभनीय नहीं रहा।

बेटा! मैं अपने विषय से दूर न चला जाऊं। विचार यह चल रहा था कि हम इस संसार में आए हैं, हमारे जीवन में कोई लक्ष्य होते हैं, कोई न कोई मूलताएं होती हैं। हम आत्मवेत्ता बनें, ज्ञान को पान करने वाले बनें

और उसमें अभ्यस्त हो जाएं, जिससे जीवन एक महान बनता चला जाए। आज का यह विचार क्या कह रहा है, तुम्हें यह प्रतीत होना चाहिए। आज मैं महानन्द जी की प्रेरणा के आधार पर इन वाक्यों को प्रकट कर रहा हूं। विचार क्या कि हम नाना औषधियों के विज्ञानवेत्ता भी बनें और योगियों की अपने अन्तर्हृदय में कल्पना भी करें। जीवन को सार्थक बनाने का प्रयास करें।

बेटा! यह तो विचारों का वन है। विचारों के वन में जब चले जाते हैं तो कोई मार्ग भी प्राप्त नहीं होता। यह तो योग की कथाओं का वन है। इसमें जाने के लिए अत्यन्त प्रसन्नता होती है। विचार यह कि हम शिवम्--सुन्दरम् बनें, हम शिव बनें, योगेश्वर बनें। विष को अमृत जान करके पान करें और अमृतमयी बन जाएं तो वह विष, विष नहीं रहता। विष जब तक है जब तक विष के सम्बन्ध में अज्ञान है। परन्तु सर्प-सर्प नहीं रहता, सिंहराज-सिंहराज नहीं रहता, सब नम्र और मौन हो जाते हैं। हिंसा, हिंसा नहीं रहती, अहिंसा में जीवन परिवर्तित हो जाता है। यह संसार परिवर्तित हो जाता है। परन्तु देखो, यह मार्ग साधारण प्राणियों के लिए, विलासितावादी प्राणियों के लिए तो कठिन है। यह तो ऊंची उड़ान उड़ने वालों के लिए विचार हैं, विलासिता के लिए यह विचार नहीं है। यह उन योगेश्वरों के लिए विचार है जो अभ्यास करने वाले हैं।

बेटा! आज का विचार यह कि गृह में रहने वाले पति और पत्नी भी योगेश्वर बन जाते हैं जब चिन्तन की दीक्षा, चिन्तन का मार्ग द्वितीय रूपों में हम परिवर्तित करना चाहते हैं। बेटा! अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

अमृतसर
३-५-१९८०

अन्तःकरण की व्याख्या

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है जो परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है और सर्वज्ञ है। हम उस देव की महिमा का सदैव गुणगान गाते रहें। हमारे यहां ऋषि-मुनि अपनी एकांत स्थलियों पर विद्यमान हो करके उस परमपिता परमात्मा की महती और उसके विज्ञान पर प्रायः विचार-विनिमय करते रहे हैं, उनका अध्ययन बड़ा विचित्रतम रहा है। ऋषि-मुनि जब अपने में विचार-विनिमय प्रारम्भ करने लगते हैं तो प्रायः वह गागर में सागर की कल्पना करने लगते हैं, एक वेद का शब्द ले करके सर्वत्र ब्रह्मांड की विवेचना में लग जाते हैं। वे जब ब्रह्मांड की विवेचना करने लगते हैं तो वेद का मंत्र और शब्द एक सूत्र में सूत्रित हो करके मानव को पवित्र बनाना प्रारम्भ कर देता है। इसीलिये मानव जब भी किसी चिन्तन में लगे तो उसका मन, कर्म और विचार ये तीनों एक ही सूत्र में सूत्रित होने चाहिएं। चिन्तन रूप में रमण करता मानव अपनी आभा में प्रकट हो जाता है।

ऋषि-मुनि जब वेद मन्त्रों के ऊपर अध्ययन करना प्रारम्भ करते हैं तो उनके अध्ययन करने की शैली बड़ी विचित्र रही है। वे पिंड को ब्रह्मांड से और ब्रह्मांड को पिंड से, दोनों का प्रायः समन्वय करते रहे हैं और जानते

रहे हैं कि यह ब्रह्मांड अपने में क्या है। यह भी विचारते रहे हैं कि इनका विज्ञान क्या है। विज्ञान में भी दो प्रकार की अनुपम धारा मानी गई हैं। एक आध्यात्मिक विज्ञान कहलाता है और दूसरा भौतिक विज्ञान कहा जाता है। भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विज्ञान के समन्वय में प्राय: ऋषिगण अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके वृत्तियों में रत्त रहे हैं। विचार आता रहता है कि इनके ऊपर अन्वेषण होना चाहिए क्योंकि वही मानव को मानवीयता में रमण करता रहता है।

आओ बेटा! आज का वेद मंत्र हमें क्या कह रहा है? हम उस परमपिता परमात्मा की महती को सदैव जानते हुए, मानो यागाम भवितम ब्रह्मण व्रत्तम। हमारे ऋषि-मुनियों की पवित्र शैली में याग के बहुत से प्रकार रहे हैं। वैदिक ऋषि जब याग के ऊपर चिन्तन करने लगे तो उन्होंने कई प्रकार के यागों का चयन किया। अग्निस्टोम याग, वाजपेयी याग, कन्या याग, धनुर्याग, वृष्टियाग, अजामेध याग, अश्वमेध जैसे और भी भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन हमारे वैदिक साहित्य में रहा है। आज मैं उस साहित्य में विशेष नहीं जाना चाहूंगा। विचार-विनिमय केवल यह कि आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान, दोनों को एक सूत्र में लाने का उन्होंने प्रयास किया। जब भौतिक विज्ञान का आध्यात्मिक विज्ञान में प्रवेश हो जाता है तो मानो, प्रकाश हो जाता है और उस प्रकाश में मानव सदैव रत्त रहा है। आओ बेटा! आज मैं तुम्हें एक ऋषि के आसन पर ले जाना चाहता हूं। उन्होंने इस याग को अपने जीवन में कितने रूप में वर्णन किया है। मैंने यह वाक् कई कालों में तुम्हें प्रकट भी किया है, आज भी मुझे स्मरण आ रहा है।

मेरे पुत्रो! एक समय महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के यहां नाना ब्रह्मचारी विद्यमान थे। उन ब्रह्मचारियों को प्रात:काल से गार्हपथ्य और गृहपथ्य नाम की अग्नियों का वर्णन करते रहते थे क्योंकि उसमें नैतिकता है, सार्थकता

है। वे उपदेश देते उच्चारण कर रहे थे कि हे ब्रह्मचारियो! तुम अपनी गार्हपथ्य अग्नि का पूजन करो क्योंकि वह अग्नि तुम्हारे समीप प्रकाशमय रहती है और वह अग्नि तुम्हें अग्रणीय बना करके प्रकाश में लाती हुई अंधकार से पार कर देती है। ऋषि ने जब ऐसा वर्णन किया तो यज्ञदत्त ब्रह्मचारी ने कहा कि हे प्रभु! वाक् तो आपका यथार्थ है परन्तु इन विचारों में मेरा एक प्रसंग रहता है कि हम याग कैसे करें? याग किस प्रकार किया जाता है और कितने होताओं के द्वारा याग करना चाहिए क्योंकि वेद का ऋषि प्रत्येक दशा में अपनी आभा में रमण करना चाहता है। यज्ञदत्त ने जब ऐसा कहा तो याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने एक वेद मंत्र का उद्गीत गाया 'यस्त्राम् ब्रही क्रता सुगधः व्रणा'। वेद की आख्यिका उन्होंने वर्णन की और कहा कि हे ब्रह्मचारियो! जब तुम याग करने के लिए उपस्थित होगे तो तुम्हें यह प्रतीत होगा कि याग में कितनी अनूठी क्रियाकलापता, उसमें कितनी महानता विद्यमान रहती है और वह शब्द को कहां ले जाता है और मानवीय चित्र को भी कहीं का कहीं ले जाता है। जब ऋषि ने यह वर्णन किया तो उन्होंने कहा कि हे प्रभु! उसे ही तो हम जानना चाहते हैं। अमृताम् भूः वर्णन ब्रह्मा वर्त्तत्वताः, क्योंकि यजमान यह चाहता है कि मेरा हृदय पवित्र हो और गीत गाने वाला भी हो। वह यह चाहता है कि मेरी वाणी पवित्र हो। उद्गीत गाने वाला उद्गाता चाहता है कि मेरा शब्द द्यौ में प्रवेश हो करके मुझे ही प्राप्त हो। ब्रह्मा कहता है कि ब्रह्म ब्रद्वा कृतमम देवाः, मुझे ब्रह्म की प्राप्ति हो जाए और अध्वर्यु कहता है कि वह सर्वत्र कुबेर बन करके इसका स्वामित्व बन जाए।

चौबिस स्तम्भ

बेटा! यह विचारधारा याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने ब्रह्मचारियों से कही और बोले कि हे ब्रह्मचारियो! तुम गारपथ्य और गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करो। यज्ञदत्त ने कहा कि प्रभु! हम वही तो जानना चाहते हैं कि कितने

होताओं से याग करें? वेद के ऋषि ने कहा, यसुतम चतुषम् ब्रह्मा वर्णम एको देवत्वता: कि इसमें चौबिस होताओं के द्वारा यजमान याग करता है। चौबिस होता कौन से होते हैं, जिसमें सर्वत्र ब्रह्मांड गुथा हुआ रहता है। जैसे प्राणी एक दूसरे में गुथा हुआ है, जैसे एक परमाणु अपनी धाराओं में गुथा हुआ है इसी प्रकार चौबिस होताओं से यजमान गुथा हुआ रहता है, कटिबद्ध रहता है, इसी में निहित रहता है। उन्होंने कहा कि प्रभु! यही तो हम जानना चाहते हैं कि वे चौबिस होता कौन से होते हैं जिनके द्वारा यजमान याग करने वाला बने। उन्होंने कहा यही तो विशेषताएं हैं जहां आध्यात्मिक और भौतिक वादों का समन्वय किया है। जैसे मानव गृह के निर्माण में खम्बों का निर्माण अनिवार्य है इसी प्रकार जब यजमान यज्ञ करता है तो उसके चौबिस स्तम्भ कहलाते हैं। मेरे प्यारे! यह चौबिस स्तम्भ कौन से हैं? वेद का ऋषि ब्रह्मचारियों को नैतिकवाद की शिक्षा देते हुए कहते हैं कि तुम आध्यात्मिक बनो जिससे मानव की आन्तरिक और वाह्य दोनों प्रकार की प्रवृत्तियां बनती हैं। तुम आध्यात्मिक और भौतिकवाद, दोनों का अपने में समन्वय करते रहो और यह जान करके वृत्तियों में रत्त हो जाओ।

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि ये चौबिस होता, जो अन्तःकरण की आभा में निहित रहते हैं, इसे विस्तार से जानो। जैसे एक परमाणु में से परमाणु का निकास होता रहता है, अणु में से अणु का निकास होता रहता है, विस्तार रूप धारण कर लेता है इसी प्रकार अमृताम देवत्वाम लोकाम हिरण्यम वृथा वेदाम जगत प्रव्हे लोकाम, ऐसा वेद के ऋषि ने कहा कि ये चौबिस होता कहलाते हैं। **दस प्राण** हैं, **दस इन्द्रियां** हैं, मानो पांच कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां उसके रूप में रत्त रहती हैं। **मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार** से गुथा हुआ यह हमारा शरीर दृष्टिपात आता रहता है। सृष्टि के पिता ने जब संसार का सृजन किया और मानव समाज का निर्माण किया तो उस समय यह भी एक प्रकार

की यज्ञशाला है। ब्रह्मांड की नाभी यह पृथ्वी मानी गई है। इसी प्रकार यह प्राणम ब्रह्मा: वृत्तम, मानव का शरीर है, ब्रह्मांड है, आन्तरिक और वाह्य, दोनों जगत को पवित्रता में लाया जाता है।

मेरे पुत्रो! मैं विशेष चर्चा तो नहीं करूंगा क्योंकि गम्भीर रहस्यों में जाना नहीं चाहता हूं, केवल यह कि यज्ञशाला के चौबिस होता जब उसके समीप होकर याग करते हैं तो वह अपनी वाणी को द्यौ में पहुंचा देता है। वह अपनी वाणी को भू: में नहीं, भुव: में नहीं, द्यौ में ले जाता है और यह द्यौ से उन्हीं को प्राप्त होती रहती है तो उसमें पवित्रता आ जाती है। उन्होंने कहा कि संभव ब्रह्मणे, मानो हम चौबिस होताओं के द्वारा याज्ञिक बनें और ऐसा याग करें जिससे हमारा वाह्य और आन्तरिक जगत दोनों पवित्र बन जाएं, हमारे हृदयों में एक महानता की ज्योति जागृत हो जाए,ऐसा वेद का मंत्र कहता है। उन्होंने मानव शरीर के ऊपर चिन्तन करना प्रारम्भ किया।

अन्त:करण की वृत्तियां

उन्होंने कहा कि यह जो चतुष अन्त:करण कहलाता है इसमें सर्वत्र जितनी भी कर्म वृत्तियां हैं वे सब इसमें निहित रहती हैं। बेटा! मुझे स्मरण आ रहा है, एक समय राजा रावण और कुक्कुट मुनि महाराज का संवाद हुआ था। रावण ने ऋषि से प्रश्न किया कि महाराज! मुझे अन्त:करण की वृत्तियों का वर्णन कीजिये। कुक्कुट मुनि का अंगिरस गोत्र में जन्म हुआ था। उन्होंने कहा कि राजन! यह बड़ा गम्भीर विषय है और गम्भीर विषय को अपने में ही रहने देना चाहिए। उन्होंने कहा कि नहीं प्रभु! वर्णन कीजिए क्योंकि आपने इस प्रसंग को लिया है। उन्होंने कहा कि मेरे एक सौ एकवें महापिता वश्वंगकेतु मुनि महाराज हुए हैं। वश्वंग केतु मुनि महाराज ने विचारा कि मैं अपने अन्त:करण को जानना चाहता हूं। अन्त:करण के ऊपर वह अनुसन्धान करने लगे, तप करने लगे कि कैसे मैं उन वृत्तियों को जान सकता हूं। वेद के मंत्रों का उद्गीत

गाने लगे, मनन और चिन्तन करने लगे। उन्होंने अन्न को पवित्र बनाना शुरू किया जिससे मन की धाराओं का जन्म हो जाए, जिससे मेरा मन पवित्र हो जाए और मैं देवत्व बन जाऊं। उन्होंने बारह वर्ष तक वायु का सेवन किया। इसी प्रकार उन्होंने अनुष्ठान पर अनुष्ठान किये। पिच्चासी वर्षों तक वह मौन रहे। मौन संसार में कोई नहीं रह पाता। मौन की परिभाषा यह है कि आन्तरिक जगत में कुछ न कुछ क्रियाकलाप होना चाहिये।

मन

मेरे प्यारे! जब ऋषि-मुनि अन्तर्मुखी होते हैं, ब्रह्मवेत्ता होते हैं, तो वे मन और प्राण, दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करते हैं। वे प्राण रूपी सूत्र में मन को स्थित कर देते हैं। इस स्थिति का क्रियाकलाप मौन कहलाता है। मौन रहना यह नहीं है कि मैं संसार से विमुख हो जाऊं। परन्तु इस शरीर में मन और बुद्धियां हैं जिसे हम अन्तःकरण कहते हैं और इसके साथ में प्रकृति का जो मंडल लगा हुआ है। क्योंकि प्रकृति का परमाणु सदैव गमन करता रहता है, वह वायु की धारा में रमण करता रहता है, इसीलिए उसमें रत्त रहता है तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह मौन है। एकान्त में विद्यमान है, मन अपने में नाना प्रकार की कल्पना कर रहा है तो उसे मौन नहीं कहते हैं। **मौन वह है जो अपने मन, प्राण और वचन, इन तीनों को एक सूत्र में ला करके उन धाराओं पर वह गम्भीरता से रमण कर जाता है**, मानो वह एक सूत्र धाराओं में रत्त रहता हुआ अपने अन्तःकरण की वृत्तियों में रत्त हो जाता है।

महात्मा कुक्कुट ने कहा कि रावण! मेरे महापिता चिन्तन करने लगे। मनन करते हुए उन्होंने यह जाना कि मेरे अन्तःकरण में जो नाना प्रकार के संस्कार विद्यमान रहते हैं, वे जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार हैं, एक संस्कार के ऊपर दूसरा संस्कार निहित है। जन्म जन्मान्तरों के संस्कार, जो प्रकृति के

मंडल से प्राप्त हो गये हैं, वे सब एक धारा में रमण करते रहते हैं। हे रावण! मेरे महापिता ने जानते-जानते एक सौ एकाम् भूवर्णम् एक लाख पिच्चासी हजार के लगभग अपने कोटिश जन्मों का अध्ययन किया। वे उन्हें साक्षात दृष्टिपात आने लगे। यह चतुष अन्तःकरण कहलाता है। सबसे प्रथम **जब यजमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान होता है तो उसके मन, कर्म, वचन एकाग्र होने चाहियें।** मन, वचन और कर्म एक सूत्र में रहने चाहियें। प्रवृत्ति, इन्द्रियों के साथ नहीं, वह मन के साथ मौन रहनी चाहिये उन्होंने कहा कि हे प्रभु! यज्ञाम् भूः वर्णम्।

बुद्धि

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे ब्रह्मचारियो! वेद मंत्र कहता है कि याग करो परन्तु यह जो चतुषः अन्तःकरण है, इसको जानो। चतुषः अन्तःकरण में मन होता है, मन की दूसरी धारा बुद्धि होती है। बुद्धि के भिन्न-भिन्न प्रकार कहे जाते हैं जैसे बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञा। मेरे प्यारे! देखो, बुद्धि संसार को दृष्टिपात करती है, उससे जानकारी होती है। मेधा से उसे क्रियात्मकता में लाता है। क्रियात्मकता में ला करके ऋतम्भरा में वह मौन हो जाता है। ऋतम्भरा में मौन हो करके वह प्रज्ञा में प्रवेश कर जाता है, अपने स्वरूप में वह लुप्त हो जाता है। परिणाम यह कि बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञावी से परमात्मा का मिलन होता है क्योंकि वह योगी सर्वत्र अपनी प्रवृत्तियों को ब्रह्मरंध्र में ले जाता है। ब्रह्मरंध्र में कृतिका के नृत्य द्वारा वह ब्रह्मांड को साक्षात दृष्टिपात कर लेता है।

चित्त

मुनिवरो! यह तो चतुष अन्तःकरण है, एक मन की ही धारा है। मन, बुद्धि और तृतीय चित्त कहलाते हैं। **चित्त उसे कहते हैं जिसमें जन्म**

जन्मान्तरों के संस्कार विद्यमान है। वृद्ध अवस्था है, उसे बाल्यकाल का सहपाठी एक अन्य वृद्ध प्राप्त हो गया तो वह बाल्यकाल का मिलन है। दोनों के बाल्यकाल की चर्चायें आने लगती हैं। वे सब अन्तःकरण में निहित होती हैं। बाल्यकाल का सर्वस्व साहित्य उसके समीप आ जाता है। उसे स्वप्नवत्त में, कहीं चित्त के मंडल में कहीं उसके जन्म जन्मान्तरों के संस्कार उसके समीप आते रहते हैं। बेटा! बाल्य और वृद्धपन का क्या समन्वय? कुछ समन्वय नहीं रह पाता परन्तु जब बाल्यकाल के दो प्राणियों का सम्मिलन होता है तो अन्तःकरण के सब संस्कार वाह्य जगत में आ जाते हैं। वह उच्चारण करने लगता है, विनोद करने लगता है, प्रमोद करने लगता है।

वेद के ऋषि ने कहा कि अमृताम भूः वर्णनम् ब्रह्मेः, हे ब्रह्मचारियो! बुद्धि के पश्चात चित्त का मंडल है और चित्त के मंडल में संस्कार निहित रहते है। मन गम्भीरता में आत्मा के प्रकाश से स्वप्नवत को प्राप्त होता है और यह स्वप्नों को दृष्टिपात करता रहता है। कहीं वृद्ध बन गया तो कहीं बाल्य बन गया। स्वप्नवत में कहीं नद-नदियों का और समुद्रों का निर्माण कर देता है। पुत्र पुत्रियां नहीं होते परन्तु उनका निर्माण हो जाता है, पत्नी नहीं होती पत्नियों का निर्माण, पति नहीं होते पतियों के निर्माण हो जाते हैं। मन स्वप्न में, आत्मा के प्रकाश में उन अंकुरों को साकार रूप में दृष्टिपात करता है जो अंकुर रूप से अन्तःकरण में विद्यमान हैं।

बेटा! मैं कहां तक चला जाऊं? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव वेद मन्त्र की विवेचना करते हुए कहते थे कि सर्वणम जनम ब्रह्मा क्रतम मंतहम व्रच्यस्ताः, देवाम् अन्तःकरण स्वतः प्रव्हा लोकाः कि अन्तःकरण स्वतः लोक है, स्वतः यह मंडल है। वेद मन्त्र यह कहता है कि यह स्वतः ही अपने में अपनेपन को दृष्टिपात करता रहता है। यही चित्त का मंडल जब वाह्य जगत में, वाह्य चित्त में समावेश करता है तो वाह्य और आन्तरिक, दोनों चित्तों का मिलन

मंडल से प्राप्त हो गये हैं, वे सब एक धारा में रमण करते रहते हैं। हे रावण! मेरे महापिता ने जानते-जानते एक सौ एकाम् भूवर्णम् एक लाख पिच्चासी हजार के लगभग अपने कोटिश जन्मों का अध्ययन किया। वे उन्हें साक्षात दृष्टिपात आने लगे। यह चतुष अन्तःकरण कहलाता है। सबसे प्रथम **जब यजमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान होता है तो उसके मन, कर्म, वचन एकाग्र होने चाहियें।** मन, वचन और कर्म एक सूत्र में रहने चाहियें। प्रवृत्ति, इन्द्रियों के साथ नहीं, वह मन के साथ मौन रहनी चाहिये उन्होंने कहा कि हे प्रभु! यज्ञाम् भूः वर्णम्।

बुद्धि

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे ब्रह्मचारियो! वेद मंत्र कहता है कि याग करो परन्तु यह जो चतुषः अन्तःकरण है, इसको जानो। चतुषः अन्तःकरण में मन होता है, मन की दूसरी धारा बुद्धि होती है। बुद्धि के भिन्न-भिन्न प्रकार कहे जाते हैं जैसे बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञा। मेरे प्यारे! देखो, बुद्धि संसार को दृष्टिपात करती है, उससे जानकारी होती है। मेधा से उसे क्रियात्मकता में लाता है। क्रियात्मकता में ला करके ऋतम्भरा में वह मौन हो जाता है। ऋतम्भरा में मौन हो करके वह प्रज्ञा में प्रवेश कर जाता है, अपने स्वरूप में वह लुप्त हो जाता है। परिणाम यह कि बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञावी से परमात्मा का मिलन होता है क्योंकि वह योगी सर्वत्र अपनी प्रवृत्तियों को ब्रह्मरंध्र में ले जाता है। ब्रह्मरंध्र में कृतिका के नृत्य द्वारा वह ब्रह्मांड को साक्षात दृष्टिपात कर लेता है।

चित्त

मुनिवरो! यह तो चतुष अन्तःकरण है, एक मन की ही धारा है। मन, बुद्धि और तृतीय चित्त कहलाते हैं। **चित्त उसे कहते हैं जिसमें जन्म**

जन्मान्तरों के संस्कार विद्यमान है। वृद्ध अवस्था है, उसे बाल्यकाल का सहपाठी एक अन्य वृद्ध प्राप्त हो गया, तो वह बाल्यकाल का मिलन है। दोनों के बाल्यकाल की चर्चायें आने लगती हैं। वे सब अन्तःकरण में निहित होती हैं। बाल्यकाल का सर्वस्व साहित्य उसके समीप आ जाता है। उसे स्वप्नवत्त में, कहीं चित्त के मंडल में कहीं उसके जन्म जन्मान्तरों के संस्कार उसके समीप आते रहते हैं। बेटा! बाल्य और वृद्धपन का क्या समन्वय? कुछ समन्वय नहीं रह पाता परन्तु जब बाल्यकाल के दो प्राणियों का सम्मिलन होता है तो अन्तःकरण के सब संस्कार वाह्य जगत में आ जाते हैं। वह उच्चारण करने लगता है, विनोद करने लगता है, प्रमोद करने लगता है।

वेद के ऋषि ने कहा कि अमृताम भूः वर्णनम् ब्रह्मे:, हे ब्रह्मचारियो! बुद्धि के पश्चात् चित्त का मंडल है और चित्त के मंडल में संस्कार निहित रहते है। मन गम्भीरता में आत्मा के प्रकाश से स्वप्नवत को प्राप्त होता है और यह स्वप्नों को दृष्टिपात करता रहता है। कहीं वृद्ध बन गया तो कहीं बाल्य बन गया। स्वप्नवत में कहीं नद-नदियों का और समुद्रों का निर्माण कर देता है। पुत्र पुत्रियां नहीं होते परन्तु उनका निर्माण हो जाता है, पत्नी नहीं होती पत्नियों का निर्माण, पति नहीं होते पतियों के निर्माण हो जाते हैं। मन स्वप्न में, आत्मा के प्रकाश में उन अंकुरों को साकार रूप में दृष्टिपात करता है जो अंकुर रूप से अन्तःकरण में विद्यमान हैं।

बेटा! मैं कहां तक चला जाऊं? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव वेद मन्त्र की विवेचना करते हुए कहते थे कि सर्वण्म जनम ब्रह्मा क्रतम मंतहम व्रच्यस्ताः, देवाम् अन्तःकरण स्वतः प्रव्हा लोकाः कि अन्तःकरण स्वतः लोक है, स्वतः यह मंडल है। वेद मन्त्र यह कहता है कि यह स्वतः ही अपने में अपनेपन को दृष्टिपात करता रहता है। यही चित्त का मंडल जब वाह्य जगत में, वाह्य चित्त में समावेश करता है तो वाह्य और आन्तरिक, दोनों चित्तों का मिलन

हो जाता है। यह वाह्य जगत को आन्तरिक चित्त में ले जाता है और आन्तरिक चित्त को वाह्य जगत में ले जाता है। योगेश्वर इस चित्त के मंडल की प्रवृत्ति को जानते हैं। मन की धारा, जो बुद्धि है कहीं मेधा बनती है, कहीं ऋतम्भरा बन जाती है, कहीं प्रज्ञावी बन करके यह नाना प्रकार के संस्कारों को उद्‌बुद्ध करती रहती है और चित्त के मंडल में सब स्थिर हो जाते हैं। आन्तरिक चित्त और वाह्य चित्त, दोनों का मिलन करके मन की एक वृत्ति बन जाती है।

अहंकार

बेटा! अन्त:करण का चतुष स्वरूप अहंकार कहलाता है। अहंकार उसे कहते हैं जो अपनी सीमा में रहने वाला हो क्योंकि अहंकार बिना कोई पिंड नहीं बन पाता। अहंकार के बिना वह अपनी प्रवृत्तियों में रत्त नहीं होता। एक अहंकार तो अपने लिए स्वाभिमान होता है, एक अहंकार वह होता है जो अपने वाह्य स्वार्थ के लिए प्रकृति के स्वरूप में रमण करके उसको नष्ट करने लगता है। एक अहंकार वह है जो परमात्मा से स्वप्न, सुषुप्ति में जा करके आनन्द लेता है, प्रभु से सहायता लेता है। एक अहंकार वह है जिसमें मानव अपनी प्रवृत्तियों को नष्ट करके, उग्र रूप धारण करके मानव, मानव का भक्षक बन जाता है। वह जो अंतम् ब्रह्म अहंकार है, वह इस प्रकार का नहीं क्योंकि प्रकृति में अहंकार होता है। उस अहंकार को जानना ही अहंकार की वृत्ति कहलाती है।

बेटा! मैं बहुत गम्भीर रूपों में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूं। वेद मंत्र मुझे बारम्बार यह उद्‌गीत गाने लगता है, वेद का ऋषि कहता है कि दैविक प्रकोप हो करके अग्नि के परमाणु जब वायु में प्रवेश हो जाते हैं तो ग्रीष्म ऋतु में वायु वेग से जब रमण करती है तो यह कुपित हो जाती है और कुप्रकृति बन करके मानव का भक्षण कर जाती है। मेरे प्यारे! वह भी अहंकार है। प्रकृति का अहंकार स्वरूप होने से वर्षा काल में जल अति कुपित

होता है और अतिवृष्टि में रत्त हो जाता है, उससे कहीं विनाश होता है। उसे दैविक प्रकोप कहते हैं परन्तु वह प्रकृति का अहंकार कहलाता है। वह अहंकार कहां जा करके स्थिर होता है? वह मानव की कर्म की धाराओं पर स्थिर होता है क्योंकि **जैसा मानव समाज का कर्म होता है वैसे प्रकृति के प्रकोप होते हैं।**

कर्मों का फल

मैं बहुत पुरातन काल में एक गाथा का वर्णन करता रहा हूं। एक समय अति वृष्टि हो गयी, प्रजा का विनाश हो गया। अन्नाद नहीं रहा, सब जलमग्न हो गए। प्रजा बहुत दुखित हुई और अपनी पुकार प्रजापति तक पहुंचाई। प्रजापति ने कहा कि कहो प्रजाओ! आप अप्रसन्न क्यों हो? उन्होंने कहा कि प्रभु! अतिवृष्टि हो गई है और सब विनाश हो गया। उन्होंने कहा कि यह वृष्टि कहां से हुई? महाराज मेघ मंडलों से हुई है। उन्होंने मेघ मंडलों को कहा कि हे मेघ मंडलो तुमने यह अतिवृष्टि क्यों की है? मेघ ने कहा कि प्रभु! मैं इसमें दोषी नहीं हूं। उन्होंने कहा फिर कौन है? मेरे से तो सूर्य ने, आदित्य ने कहा था। आदित्य को उन्होंने निर्मंत्रित कर कहा कि हे आदित्य! तुमने बिना समय के वृष्टि की इच्छा क्यों की? आदित्य ने कहा कि प्रभु! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मेरे से पृथ्वी ने कहा था। अब प्रजापति ने पृथ्वी को निर्मंत्रित कर कहा कि हे पृथ्वी! तुमने यह अनावृष्टि की इच्छा क्यों प्रकट की?

पृथ्वी ने कहा कि हे प्रभु! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। जब मेरे ऊपर यह प्रजा पाप करती है तो मैं पापों में इतनी लिप्त हो जाती हूं कि मुझसे असहनीय हो जाता है। जिस प्रकार माता का पुत्र उसके वस्त्रों को भ्रष्ट कर देता है तो माता जल से अपने वस्त्रों को स्वच्छ बनाती है, इसी प्रकार प्रभु! जब यह प्रजा मेरे ऊपर नाना पापाचार करती है तो मैं पापों में

सन जाती हूं। मैं अपनी पुकार समुद्रों से कहती हूं कि हे समुद्रो! तुम मुझे स्वस्थ करो। समुद्र जल का उत्थान कर मेघ मंडलों को दे देते हैं। मैं जब ऊर्ध्वा में जाती हूं तो आदित्य से कहती हूं कि तुम वृष्टि कर मुझे स्वच्छ करो। वही आदित्य जल का उत्थान समुद्रों से कराते हैं, उसे मेघ मंडल अपने में धारण कर लेते हैं। मेघ मंडलों के द्वारा वृष्टि होकर प्रभु! मैं स्वच्छ बन गई हूं और प्रजा ने अपने किए हुए पाप-पुण्य कर्मों का फल भोग लिया।

मेरे प्यारे! उन्होंने पाप-पुण्य की विवेचना प्रकट की। उन्होंने कहा, 'पापाम् भूः वर्णस्व' यह अपने में अशुद्ध हो गया, स्वच्छता में जिसका नाम अहंकार कहलाता है। जो अपने में दबायमान रहता है अंत में वह अपने अहंकार में ऊर्ध्वा को प्राप्त होता है। वह अपने में सीमित रह करके जगत में अपने अंधकार का पिंड बनता है। यह ब्रह्मांड का जो पिंड बना हुआ है, नाना प्रकार के जो लोक-लोकान्तर तुम्हें दृष्टिपात आ रहे हैं, यह सर्वत्र परमपिता परमात्मा की महती है और बिना अहंकार के पिंड नहीं बना करता है। पिंड बन करके नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर बन जाते हैं, अन्तःकरण की प्रवृत्तियां बन जाती हैं।

मेरे पुत्रो! ऋषि ने जब इस प्रकार वर्णन किया तो उन्होंने कहा कि प्रभु! यजमान जब यज्ञ करता है तो मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, इस अन्तःकरण को जानता हुआ वह याज्ञिक बनने का प्रयास करे। ऋषि याज्ञवल्क्य कहता है कि यागाम् रुद्रो वागम ब्रह्मणा वृतम देवाः अन्तम ब्रही व्रताः। महात्मा कुक्कुट ने रावण से यही कहा था कि मेरे महापिता ने अपने अन्तःकरण की प्रवृत्तियों को तप से जाना और उन्होंने लाखों जन्मों के संस्कारों को जान लिया। उसके पश्चात् उन्होंने पुनः जब यह विचारा कि मेरे अन्तःकरण में इतने जन्मों के संस्कार हैं कि यदि और मैं अन्न का पान न करके वायु का सेवन करता रहूं, पोषक तत्व अन्तरिक्ष से लेता रहूं, अन्तःकरण की प्रवृत्तियों

को जानता रहूं और मेरी लाखों वर्षों की आयु हो तो उसके पश्चात् भी मैं संस्कारों की सर्वत्रता का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

बेटा! यह अनन्तमयी विचारों का जगत है। मैं इस संसार में जाना नहीं चाहता हूं, विचार केवल यह कि हमें अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाना है। अन्तःकरण कैसे पवित्र होगा? वायुमंडल से। वायुमंडल कैसे पवित्र होगा? यागों से। याग कैसे पवित्र होगा? जब यजमान की प्रवृत्तियां मन, बुद्धि, अहंकार सर्वत्र सीमा में होंगे और उसकी प्रवृत्तियों में महानता का जन्म होता रहेगा। क्योंकि अग्नि की धाराओं पर शब्द विद्यमान होता है और वही शब्द भूः भूवः स्वः में प्रवेश हो करके लोकों को पवित्र बनाता रहता है। अशुद्ध परमाणुओं को निगलता रहता है, शुद्धिकरण परमाणुओं को त्यागता रहता है और द्यौ में शब्द पवित्र बन कर चले जाते हैं। याग के कर्मकांड को ऋषि-मुनियों ने बहुत प्रकार से जाना है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने यही कहा कि हे ब्रह्मचारियो! तुम होताओं के द्वारा याग पर याग करो।

ग्यारह होता

अन्तःकरण की सर्वत्र प्रवृत्तियों का वर्णन करने में मैं भी असमर्थ रहता हूं। अन्तःकर्णिय बुद्धिमान जब विद्यमान होते हैं तो उसके पश्चात गम्भीर चिन्तन होता है। अन्तःकरण की प्रवृत्तियां एक सूत्र में आ जायें तो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सब एक रूप में रत्त हो जाते हैं जैसे ग्यारह होताओं का वर्णन आया है। दस इन्द्रियां हैं, ग्यारहवां मन है क्योंकि मन से इन्द्रियां गुथी रहती हैं। किसी इन्द्रिय के साथ यदि मन नहीं है तो इन्द्रियां दृष्टिपात करती हुई भी दृष्टिपात नहीं कर रही हैं। मन यदि घ्राण के द्वारा नहीं है तो सुगंध भी सुगंध नहीं दे रहा है। वाक् उच्चारण कर रहा है परन्तु मन यदि साथ नहीं है तो वाक् उच्चारण करता हुआ भी नहीं कर रहा है। श्रवण कर रहा है पर मन वहां नहीं है तो श्रवण करता भी श्रवण नहीं कर रहा है। मेरे प्रभु ने यह

कैसा अनुपम जगत रचा है। इसके ऊपर आश्चर्य होता है। गम्भीरता से मनन करते हैं तो केवल विवेक ही विवेक रह जाता है।

मेरे प्यारे! त्वचा के साथ यदि मन नहीं है तो त्वचा प्रेम करती हुई भी प्रीति नहीं कर रही है। रस लेने वाली रसना रस नहीं ले रही है क्योंकि मन साथ नहीं है। मन का समन्वय आत्मा से होता है और आत्मा के प्रकाश से यह मन जड़वत होते हुए भी इतनी आभा में रत्त रहता है। क्योंकि आत्मा सूक्ष्म है अत: आत्मा का प्रकाश ले करके मन गमन करता है। इन्द्रियों का विषय इससे भी स्थूल है; परन्तु इसमें जो गम्भीर ज्ञान-विज्ञान निहित रहता है वह केवल मन के ही कारण रहता है। विचार आता है बेटा! मनस्तम ब्रव्हे व्रतम्, वेद का ऋषि कहता है कि **इस मन को पवित्र बनाने का प्रयास करो और चतुष अन्तःकरण को जानने के लिये तत्पर हो जाओ।** यह जब तक नहीं जाना जाता, तब तक मानव साधना में प्रवेश नहीं होता। साधना बहुत अनिवार्य है। ऋषि कहता है कि हे यज्ञदत्त! यदि तुम याग करना चाहते हो तो चतुष अन्तःकरण की वृत्तियों को जानो।

बेटा! हम परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए सागर से पार होने का प्रयास करें क्योंकि यह विचारों का सागर है। ब्रह्मांड एक सागर है, इसको जान करके ही इससे पार हो सकते हो। इसे बिना जाने पार नहीं हो सकते। प्रत्येक रूप में अपने को जानो, प्रकृति के मंडल को जानो और जान करके इससे पार हो जाओ, संसार अपनी आभा में रत्त होता रहेगा। प्रत्येक मानव अपने में सुखद आनन्द चाहता है और वह आनन्द बिना ज्ञान के प्राप्त नहीं होता और ज्ञानात्वम ब्रह्मे:, यह ज्ञान मन के समीप रहता है। ज्ञान के प्रकाश में मन अपने प्रकृति मंडल को जान लेता है और प्रकृति मंडल आत्मा के गर्भ में समाहित हो जाता है।

आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा के अनूठे जगत को जानें। परमपिता परमात्मा जो अनन्तमयी है उसकी अनन्तता को जानें और उसके ऊपर हम विश्वसनीय बन जायें। उसकी जो रचना है, चाहे वह उसकी न स्वीकार करो परन्तु उस रचना पर विचार-विनिमय अवश्य होना चाहिये। उन विचारों से मानव की प्रवृत्तियां स्थिर होती हैं और संसार की दुरिताओं में नहीं जानना पड़ता, मानव सुचिन्तन में चला जाता है। यही मानव का लक्ष्य है। यह है बेटा! आज का वाक्, अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट कर सकेंगे। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

चंडीगढ़
११-१-१९९१

स्थूल और सूक्ष्म शरीर

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। वह परमपिता परमात्मा पुरोहित है, वही हमारा वरणीय देव है। जब हम उसे अपना पुरोहित स्वीकार करते हैं तो हमारे हृदयों में एक प्रकाश उत्पन्न होता है, जो भी मानव उसे अपना वरणीय बना लेता है अथवा उसे वर लेता है, वह प्राय: उसी को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए आज हम उस परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसके आनन्दमयी स्रोत की चर्चा कर रहे हैं।

हमारे वैदिक साहित्य में भिन्न-भिन्न प्रकार का ज्ञान और विज्ञान प्राय: आता रहता है। परम्परागतों से ही मानव ज्ञान और विज्ञान की ऊर्ध्वा में उड़ान उड़ता रहा है क्योंकि यह मानव का स्वाभाविक गुण कहलाया गया है। वह अपने प्यारे प्रभु-सखा को जानना चाहता है। वेदों का गान जब मानव स्वर और व्यंजनों के सहित गाता है तो वह हृदय से गाता है। कोई हृदय वाला प्राणी ऐसा नहीं है जो अपने सखा की प्रसन्नता, उसकी महानता को न श्रवण करने वाला हो। मानव जब ऐसे स्वरों से साम गान गाता है कि हिंसक प्राणी भी उस गान को श्रवण करने के लिये तत्पर हो ज़ाता है तो प्राणी मात्र इस ध्वनि को श्रवण करके मौन हो जाता है। गान का गाना ही

हमारे लिये उस प्रभु के समीप जाना है। जो मानव स्वर सहित गान गाना जानता है वह अपने को पंचीकरण में ले जाता है, वह पंचवृत्तियों में रत्त रहता है। हमारे यहां भिन्न-भिन्न प्रकार का गान गाया जाता है जैसे जटा पाठ, घन पाठ, विश्रव पाठ, उदात्त और अनुदात्त में गाता रहता है। आज मैं गान के सम्बन्ध में या स्वर और व्यंजनों के सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं दूंगा केवल विचार यह कि मानव प्रभु का गान अपने हृदय से गाये क्योंकि परमपिता परमात्मा के हृदय और मानव हृदय, दोनों का जब समावेश हो जाता है अथवा दोनों का जब मिलन हो जाता है तो इससे आगे संसार में कोई प्रसंग भी नहीं रहता, शेष कुछ नहीं रहता। वह परमपिता परमात्मा के ही, मानो हृदय से हृदयंगमय ज्योति को प्राप्त हो जाता है।

बेटा! आज का हमारा वेद मन्त्र परमपिता परमात्मा को अपना वरणीय स्वीकार करने के लिये उद्घोष कर रहा है कि हे मानव, तू परमपिता को अपना पुरोहित स्वीकार कर क्योंकि वह वरणीय है और उसको वरना ही हमारा कर्त्तव्य है। जब यजशाला में यजमान याग करता है तो वह उसको अग्नि स्वरूप में वरता है। हे अग्ने! तू गार्हपथ्य ही नहीं, तू वैश्वानर नाम की अग्नि बन कर हमारा कल्याण करती है। तू विश्व को प्रकाशित करने वाली है, तू द्यौ में रमण करने वाली है और द्यौ से ऊर्जा, तेरे प्रकाश को ले करके सूर्य प्रकाशित हो जाता है। वह सूर्य प्रकाश देने वाला है। वैदिक साहित्य में सूर्य को भास्कर कहा है। वह भासता रहता है, मग्न रहता है। वैदिक साहित्य में उसे आदित्य भी कहा है। जैसे ब्रह्मचारी आदित्य ब्रह्म में रमण करता है इसी प्रकार तू द्यौ में रमण करता हुआ प्रकाश देता रहता है। हे अग्नि! तू वैश्वानर नाम की अग्नि बन करके हमें प्रकाश में ले चल और अन्धकार हमारे समीप न आयें क्योंकि यदि अन्धकार आ गया तो हमारे जीवन का जो मूल्य है, रहस्य है, वह समाप्त हो जायेगा। आज हम परमपिता परमात्मा को अपना उपास्य देव स्वीकार करते हैं।

सूर्य नाना प्रकार की ऊर्जा से मानव को प्रकाशमान बनाता है। वह तेजोमयी बनाने वाला है। नाना प्रकार की वनस्पतियों को परिपक्व बनाता है। पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार के खनिज पदार्थों को वह प्रकाश देता है तथा उन्हें परिपक्व बनाता है। बेटा! परमपिता परमात्मा हमारा वरणीय है। हम जब उसे वर लेते हैं तो उसी को प्राप्त हो जाते हैं जैसे माता का पुत्र क्षुधा से तृप्त होकर आनन्दमयी लोरियों का पान करता हुआ माता को ही प्राप्त होता रहता है। माता का ममत्व पुत्र से होता है। जितना भी संसार का व्यापार है, वह माता अपने पुत्र को अपने हृदय की वृत्तियों में प्राप्त करा देती है।

आज मैं विशेष विवेचना न देता हुआ तुम्हें उसी विद्यालय में ले जाना चाहता हूं जिस विद्यालय में ब्रह्मचारी और आचार्यजन अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्नों में रत्त रहते। उन्होंने नाना प्रकार के प्रश्नों में यह पाया कि मानव को साधना में परिणित हो जाना चाहिये। **अपने को समर्पित करने का नाम साधना है।** प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों का साकल्य बना करके यजमान नाना प्रकार के द्रव्यों को एकत्रित करके जिसमें सुगन्धित, पौष्टिक, रोगनाशक जितने भी साकल्य होते हैं, उन्हें अग्नि के मुखारबिन्दु में परिणित कर देता है। अग्नि देवताओं का मुख कहलाता है। यजमान जब अग्नि के मुखारबिन्दु में आहुति देता है तो सब देवता उससे तृप्त रहते हैं। इसी प्रकार मानव अपने जीवन में प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों का साकल्य बना कर हृदय रूपी यज्ञशाला में जो ज्ञान रूपी अग्नि है, उस अग्नि में वह स्वाहा कह रहा है क्योंकि उसकी ध्वनि अग्नि की तरंगों पर विद्यमान हो करके द्यौ लोक में स्थिर हो जाती है। वहां स्थिर हो करके वह स्वाहा शब्द जो वेद मन्त्रों से गुथा हुआ है, साकल्य से गुथा हुआ है, वह वायुमंडल का शोधन करता चला जाता है।

बेटा! आचार्यों के समीप विद्यमान हो करके एक ब्रह्मचारी यजमान बना, एक ब्रह्मचारी उद्गाता बना, एक ब्रह्मचारी अध्वर्यु बनकर, याचक बनकर

यह प्रश्न कर रहे थे कि हे प्रभु! कितने होताओं से यजमान याग करने वाला बने। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि तुम्हें यह प्रतीत है कि तुम कहां विद्यमान हो? ब्रह्मचारियों ने कहा कि प्रभु! हम इस विद्यालय में विद्यमान हैं जहां मानवीयता की चर्चायें और महानता का प्रकाश होता रहता है। उसी महानता की अमृतमयी ज्योति का पान करते हुए हम यह प्रश्न कर रहे हैं जिससे हम भी अमृत बन जायें, जिससे हम भी याज्ञिक बन करके याग के देवताओं के समीप जाने के लिये तत्पर हो जायें। ब्रह्मचारियों ने ऋषि से जब यह कहा तो ऋषि बड़े प्रसन्न हुए। ऋषि ने कहा कि तुम क्या जानना चाहते हो? मैंने तुम्हें कहा है कि चौबीस होता होने चाहियें और चौबीस होताओं के द्वारा याग होना चाहिये। उसमें मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह चतुष अन्तःकरण कहलाता है। इसमें पांच कर्मेन्द्रियां हैं, पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं, पांच प्राण हैं और पांच उपप्राण कहलाते हैं। **इन्द्रियों के ऊपर हमें संयम करते हुए अपने को परमात्मा को समर्पित कर देना है।** हमें याज्ञिक बनना है। याग का अभिप्राय यह है कि हम सबसे प्रथम इस यज्ञशाला के रूप को जान लें कि यज्ञशाला में क्या-क्या वस्तु हैं, क्या-क्या इसकी नियमावली है,इसके ऊपर हम अपने को समर्पित कर सकें।

ऋषि ने इस प्रकार जब वाक्य प्रकट कराया तो ब्रह्मचारियों ने कहा कि प्रभु! पुनः हम यह प्रश्न करना चाहते हैं कि यजमान याग करना चाहता है, कितने होता होने चाहियें। ऋषि ने कहा कि याग में सत्रह होता होने चाहिये। चौबीस से सत्रह में आ जाना ब्रह्मचारियों के लिये बड़ा आश्चर्य है कि यह सत्रह होता कौन से होते हैं? ऋषि ने कहा कि इसमें दस प्राण होते हैं और प्रकृति के पंच महाभूतों की वासनायें (गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द) होती हैं और मन, बुद्धि इन सत्रह तत्वों का यह मानव शरीर कहलाता है जिसे हमारे यहां यज्ञशाला भी कहा जाता है। इतने होता यज्ञशाला में विद्यमान होने चाहियें। ऋषि ने कहा कि **चौबीस तत्व का यह स्थूल शरीर माना गया है। सत्रह तत्व का हमारा सूक्ष्म शरीर माना गया है।** ऋषि ने कहा सत्रह

होताओं द्वारा हम याग करने वाले बनें। 'ब्रह्मणे स्वाहा:' ऐसा उच्चारण करते हुए ब्रह्मा:, विष्णु की हम याचना करते हुए, ब्रह्मा की आराधना करते हुए, पुनरूक्तियों में आहुति देने वाले बनें जिससे हमारा जीवन एक महानता की ज्योति में परिणित हो जाये। हम अपने में इतने ऊर्ध्वा में क्रियाकलाप करने वाले बनें जिन क्रियाकलापों के द्वारा हमारे जीवन की प्रतिभा एक महानता में परिणित हो जाये।

मन

मन क्या है? देखो, मन प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तन्तु होता है। आज यदि कोई मानव मन को जानना चाहता है और मन को कहीं लगाना चाहता है तो आहार पवित्र होना चाहिये क्योंकि **आहार ही मन को पवित्र बनाता है।** यही देवताओं की सभा में विरख बनता है। जब मनस्तव ऊंचा बनता है तो यह देवत्व को प्राप्त करता हुआ संसार को देवता बना देता है। यह हमें देवत्व प्रदान करता है तो इसीलिये हमारा अन्न पवित्र होना चाहिये। देखो, जब अन्न पवित्र होता है तो अन्न के पवित्र होने से मन की धाराओं का जन्म होता है। बेटा! मानव प्रकृति के नाना अव्यवयों को मन्थन करते-करते उस ऊर्ध्वा में चले गये जहां उन्होंने मन को सबसे सूक्ष्म तन्तु माना है। यह प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तन्तु है। यह ऊर्ध्वा में कैसे जाता है? जब तक हम प्रकृति के ऊर्ध्वामयी पदार्थो को विशुद्ध रूप से ग्रहण नहीं करेंगे तब तक मन की पवित्रता या मन को उर्ध्वा बनाना यह मानव के लिये असम्भव हो जाता है।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में ऋषि-मुनि अन्न को ग्रहण करते हुए नाना प्रकार की आभा में रत्त होते रहते। अन्न ऐसा होना चाहिये जिस पर किसी का अधिकार न हो। **निराधिकार अन्न को जब ग्रहण किया जाता है तो मन अवश्य पवित्र बन जाता है।** इसीलिये हमारा यह विचार है, ऋषि-मुनियों की यह साधना रही है कि उन्होंने भयंकर वनों में

जाकर पत्र और पुष्पों का आहार करते हुए, जिस पर किसी का अधिकार नहीं, उन आहारों को ग्रहण करते हुए अपने मन को पवित्र बनाया है। मुझे महाराजा अश्वपति का जीवन स्मरण आता रहता है। महाराजा अश्वपति स्वयं कृषि में रत्त होते। कृषि में जो अन्न उत्पन्न होता था उसे पान कर राष्ट्र और समाज को कर्त्तव्यवाद में लाने के लिये तत्पर रहते थे। देखो, जो राजा दूसरों के श्रृंगार या दूसरों के द्रव्यों का वैभव करने वाला हो, वह ऐश्वर्य में परिणित हो जायेगा, वह अपनी प्रजा और राष्ट्र को ऊंचा नहीं बना सकता। साधक को वह अन्न ग्रहण करना है जिस अन्न पर किसी का अधिकार न हो। वही साधक ऊंचा बनता है।

महाराजा नयूष

महाराजा नयूष ने एक समय यह विचारा कि अब मुझे अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज दे करके भयंकर वनों में जाना है, तप करना है, मुझे तपस्वी बना है, साधना में परिणित होना है। पुत्र ने बड़ी हर्ष ध्वनि करते हुए कहा कि हे भगवन्! यह तो हमारा बड़ा सौभाग्य है, हम बड़े सौभाग्यशाली हैं कि आप तप करने जा रहे हैं, यह हमारे राष्ट्र का सौभाग्य है। जब उन्होंने ऐसा कहा तो महाराजा नयूष ने वहां से गमन किया ओर भयंकर वनों में आ गये। वनों में महापुरुषों से उनका मिलन होने लगा। उन्होंने पाया कि भयंकर वनो में कोई महापुरुष वायु का सेवन कर रहा है, कोई उस अन्न को ग्रहण कर रहा है जिसे हम सिल्स्थ अन्न कहते हैं। कोई स्वयं पुरुषार्थ करके उस अन्न का पान कर रहा है। महाराजा नयूष ने भी इसी प्रकार अपने को तपाया और बारह-बारह वर्ष के नाना अनुष्ठान किये। अनुष्ठानों का अभिप्राय यह है कि जिस आभा में हम रत्त हो जायें उसको हम अच्छी प्रकार तपों में ले जायें, अपने मन को विशुद्ध बनाते हुए मनस्त्व की आभा में रत्त हो जायें। विचार यह कि प्रत्येक मानव को अपनी मानवीयता में रत्त होना है, यह जो मनस्तव है, इस मनस्तव को ऊंचा बनाना है।

मुनि

महाराजा नयूष एक सौ पांच वर्ष तक भयंकर वनों में अनुष्ठान करते हुए अपने जीवन को व्यतीत करते रहे थे। कुछ वायु का सेवन करते कुछ पत्र-पुष्पों का सेवन करते, कुछ अन्नादि का पान करते हुए वह राजा से ऋषि कोटि को प्राप्त हो गये, मुनि बन गये। एक ऋषि होता हैं, एक मुनि होता है। मुनि उसे कहते हैं जैसे माता के आंगन में एक बाल्य क्रीड़ा कर रहा है परन्तु उसे संसार का भान नहीं है, माता की लोरियों में क्रीड़ा कर रहा है, न उसे माता के अंग-प्रत्यंगों का ज्ञान है। इसी प्रकार महाराजा नयूष मुनि कोटि को प्राप्त हो गये। भयंकर वनों में जाकर उन्होंने एक सौ वर्ष तक अपने जीवन को साधक के रूप में अनुष्ठानित बनाते हुए महान बनाने का प्रयास किया।

विचार यह कि याज्ञिक बनने के नाते हमें याग करना है। याग में चौबीस होता हैं। बुद्धि का वर्णन करते हुए इससे पूर्व काल में हमने तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि बुद्धि मेधावी कहलाती है, ऋतम्भरा, प्रज्ञा कहलाती हैं। बुद्धि के भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरूप माने गये हैं परन्तु पंच महाभूतों की वासना में गुरुत्व है, तरलत्व है, तेजोमयी है, यह तीन प्रकार के परमाणु कहलाते हैं। चाहे वह परमाणु यौगिक क्षेत्र में हों, चाहे यह वैज्ञानिक क्षेत्र में हों, चाहे आध्यात्मिकवादी के द्वारा हों, चाहे यह भौतिक विज्ञान के द्वारा हों, इन तीन प्रकार के परमाणुओं से मानव अपने जीवन में गति कर रहा है। साधक या योगी जब तीन प्रकार के परमाणुओं को जान लेता है तो जितने गुरुत्व वाले परमाणु होते हैं और गुरुत्व वाले जितने लोक-लोकान्तर हैं, उन सबकी जानकारी उसे हो जाती है। तरलत्व वाला जो परमाणु है उसे जब जान लेता है, उसके आंगन में जब प्रवेश कर जाता है तो जितने भी तरलत्व वाले लोक-लोकान्तर हैं, उनमें वह विचरण करने लगता है। इसी प्रकार तेजोमयी

परमाणु को जान करके अपने को तेजस्वी बनाता हुआ जितने भी तेजोमयी मंडल हैं, लोक-लोकान्तर हैं उनमें वह गति करने लगता है। इस प्रकार वह इस संसार को, इस परमात्मा के रचाये हुए ब्रह्मांड को अच्छी प्रकार जान लेता है और जानता हुआ अपने को ही अपने में दृष्टिपात करने लगता है।

यह विचित्र साधना है, यह विचित्र आभा है जिससे ब्रह्मांड का ज्ञान होता है। पिंड को ब्रह्मांड में योगी दृष्टिपात करने लगता है। यह तीन प्रकार के परमाणु हैं। वायु इन परमाणुओं को गति देता है और अन्तरिक्ष में वह समाहित हो जाते हैं, उनमें गतिवान होते हैं। यह पंचमहावृत्तियां कहलाती हैं। यजमान जब सत्रह होताओं के द्वारा याग करता है तो यह पंचवृत्तियां वासना के रूप में विद्यमान होती हैं। इसके पश्चात **प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, देवदत्त, धन्नजय, कूर्म, कृकल यह दस प्राण होते हैं।** इन दसों प्राणों में सर्वत्र ब्रह्मांड समाहित हो रहा है। जिस भी काल में वैज्ञानिकों ने परमाणुओं को प्राणों की आभा में दृष्टिपात किया है उसी काल में वह इस ब्रह्मांड को अपने में धारण करने लगे हैं और उन्होंने ब्रह्मांड को यन्त्रों में दृष्टिपात किया है। परन्तु योगी जब प्राण को अपान में, अपान को व्यान में, व्यान को समान में और समान को यागी ज्ञानम वृत्तियों में, उदान में रत्त करा देता है, जब मानव का एकोकीकरण प्रारम्भ हो जाता है तो यह प्राण सूत्र कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, याग करते हुए हम सदैव अपने में ही अपनेपन को दृष्टिपात करते हुए परमपिता परमात्मा को वरणीय बनायें। वही हमारा वरणीय योग्य है, जो उसे वर लेता है वह उसी को प्राप्त हो जाता है। यह है बेटा! आज का वाक् समय मिलने पर शेष चर्चायें कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

आर्यसमाज, अमृतसर
३०-७-१९८७

ज्ञान एवं कर्मकांड

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। वह परमपिता परमात्मा महिमावादी है और उसके इस अन्तमयी जगत में जो भव्य याग हो रहा है मानो, वह अपने में अपनेपन का गान गा रहा है। इसीलिये हमारा वेद मन्त्र यह उद्‌गीत गा रहा है कि हे मानव! तू अपने में यागों का व्यवधान कर जिससे तेरी अन्तरात्मा पवित्र हो जाए।

मुनिवरो! हमारे यहां वैदिक साहित्य में मानव अपने में अपनेपन का भान और अपनेपन की आभा में सदैव रत्त और अपने में समाहित रहा है। इसलिए हम उस परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसका जो ज्ञान और विज्ञानमय अनुपम जगत है, उसे हम सदैव अपने में ही धारयामी बनते चले जाएं। आज का हमारा वेद मन्त्र हमें एक ऐसे मार्ग के लिए प्रेरित कर रहा है जिस मार्ग में चलने के पश्चात् मानव का अन्तःकरण पवित्र होता है। वह मार्ग वेद के प्रकाश का मार्ग है, ज्ञान का मार्ग है क्योंकि मानव को ज्ञान और विज्ञान में,दोनों में रत्त होना है। विज्ञान कर्मकांड से आता है और ज्ञान अध्ययन से आता है तो दोनों ही एक सूत्र के मनके हैं। जैसे एक पक्षी के आकाश में गमन करने के लिये दो पक्ष होते हैं और उसके वह दोनों ही पक्ष समान रहने चाहिएं, ऐसे ही हमारे यहां मानव का एक पक्ष ज्ञान का

है और एक कर्मकांड का पक्ष है। वेद का मार्ग यह कहता है कि मानव को ज्ञानकांड और कर्मकांड, दोनों में ही रत्त रहना चाहिए। वेद का मन्त्र कहता है कि जो मानव केवल ज्ञान ही ज्ञान में प्रवीण हो जाते हैं और वह ज्ञान में ही विश्वसनीय बन जाते हैं, कर्मकांड की अवहेलना कर देते हैं, तो वह ऐसे प्राणी हैं जैसे मानव के श्रोत्र तो हैं, घ्राण भी हैं परन्तु दृष्टिपात करने वाले नेत्र नहीं हों। इसी प्रकार मानव को विचारना है कि ज्ञान के पश्चात् कर्मकांड आता है।

मानव के अन्तरात्मा से प्रेरणा का जन्म होता है और वह अपने में प्रेरणा को प्राप्त करता हुआ कर्म करता है। वह देवताओं के समीप जाता है और देवताओं के गर्भ में जो ज्ञान-विज्ञान है, वह उसका अनुसरण करके उसको क्रिया में लाने का प्रयास करता है। कर्मकांड और ज्ञानकांड हमारे दोनो पक्ष ऊंचे रहने चाहिए। एक मानव कर्म में विश्वास करता है, ज्ञान में नहीं कर रहा है और वह कहता है मैं कर्मकांड करता चला जाऊं परन्तु उसको प्रतीत नहीं है कि तू क्या कर रहा है तो वह कर्म भी ऐसे ही हैं जैसे एक मानव के शरीर में सर्वत्र अंग विद्यमान हैं परन्तु उसके पग नहीं हैं तो वह अपंग बन जाता है। तो इसीलिए अपंग नहीं बनना चाहिए। जो कर्मकांडी होता है वह अपने भावों का वृत्त होता है और उसमें जब ज्ञान का मिश्रण हो जाता है तो वह ज्ञानी बन जाता है। वह ज्ञान और कर्मकांड दोनों में सम्मिलित हो करके अपनी ऊर्ध्वा में उड़ाने उड़ता है, नाना प्रकार की उड़ानों में अपनी भव्यता को प्राप्त करता है। जैसे हम सूर्य की उपासना करते हैं और हमने जान लिया है कि सूर्य प्रकाशक है, तेजवान है और वह हमारा रक्षक है, इस प्रकार मानव को ज्ञान होता है और वह प्रकाश में एक-एक परमाणु को अपने में सिंचन कर परमाणुओं को जान लेता है और अब वह उसकी कर्मकांड के माध्यम से उपासना करता है। कर्मकांड और ज्ञानकांड दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं और दोनों एक ही सूत्र के मनके हैं और इन मनकों को हमें जानना है।

मेरे प्यारे! देखो, एक मानव यह जानता है कि परमात्मा ने विद्युत को जन्म दिया है, मेघमंडलों का उत्थान किया है, मानो मेघमंडल से वृष्टि होती है, वह समुद्रों से जल अपने में धारण करता है और विद्युत एक ओजस बनाती है, वह तेज दे करके मानव को तेजवान बनाती है। देखो, इसका नाम ज्ञान है। यदि हमने धनुर्याग का नाम श्रवण किया है परन्तु यदि हम कर्मकांड की पद्धतियों से धनुर्याग को नहीं करेंगे तो क्रिया में धनुर्याग को नहीं ला सकेंगे। विद्यालय और ब्रह्मचारी में ज्ञान से और कर्म से नाना प्रकार के लोकों में उड़ान उड़ने की क्षमता हो तो कर्मकांड और ज्ञान, दोनों एक दूसरे के पूरक बन करके वह दोनों में पारायण हो गया है। जब पारायण हो गया है तो मुनिवरो! वह कर्मकांड और ज्ञानकांड दोनों को अपने में लाना चाहता है क्योंकि दोनों एक पक्षी के दो पक्ष माने गये हैं, जब ही वह उड़ान उड़ता है, यदि एक पक्ष होगा तो उड़ान नहीं उड़ी जाएगी। इसी प्रकार जब याज्ञिक पुरुष याग करते हैं तो याग का ज्ञान होना चाहिए क्योंकि अग्नि की धाराओं में सर्वत्र विद्यमानता रहती है। अग्नि की धाराओं पर वेदम् अक्षर स्थिर हो जाता है और वही अपने में उड़ान उड़ता रहता है। अग्नि की धाराओं पर शब्द अन्तरिक्ष में चला गया, द्यौ में प्रवेश हो गया और द्यौ, अन्तरिक्ष को जान करके यन्त्रों का निर्माण करना है तो वह कर्मकांड की पद्धति बन गई। ज्ञान और कर्म दोनों ही मानव के साक्षी होने चाहिएं, दोनों में उसे अपने में ऊर्ध्वता को प्राप्त करना चाहिये। हमारे यहां कर्मकांड और ज्ञानकांड दोनों ही ऊर्ध्वा में गमन करेंगे तो जीवन सागर से पार होने का प्रयास हम प्राय: करते रहेंगे।

बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है कि एक समय कागभुषंड जी और महर्षि लोमश मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे। कागभुषंड जी ने महर्षि लोमश से कहा कि मैं तपस्या में प्रवीण होना चाहता हूं, मैं तपस्वी बनना चाहता हूं। उन्होंने कहा बहुत प्रिय, तुम तपस्वी बनो। कागभुषंड जी ने कहा कि मैं तपस्वी कैसे बनूं? लोमश ऋषि ने कहा कि तुम अनुष्ठान

करो, याग करो। देखो, संकल्प करके जब याग का नाम, याग का दिनांक निश्चित हो जाता है तो उसको अनुष्ठान कहते हैं। अनुष्ठान करो तो अनुष्ठान की पद्धति को अपनाते हुए अनुष्ठित हो जाओ। अनुष्ठान में जो भी तुम्हें आहार करना है, व्यवहार करना है, जो भी तुम्हारा क्रियाकलाप है, उसके आधार पर तुम अपने में निष्ठित हो जाओ। कागभुषंड जी ने कहा कि प्रभु! बहुत प्रिय, मैं वायुमंडल को सबसे प्रथम जानना चाहता हूं। लोमश ऋषि ने कहा कि वायुमंडल वह है जहां हम श्वास लेते हैं और श्वास हमारे मन-मस्तिष्क को ऊर्ध्वा में ले जाता है। श्वास को जब हम वाह्य जगत में लाते हैं तो वही अशुद्ध परमाणुओं को वाह्य जगत में प्रवेश कर देता है तो बाहरी जगत और आन्तरिक जगत दोनों, उसकी महानता में परिणित हो गए और उसी में वह निहित हो गया है तो दोनों प्रकार की आभाओं को ले करके सक्षम करो।

ऋषि ने ज्ञान से यह जान लिया कि **अनुष्ठान संकल्प को कहते हैं** और संकल्प में जो क्रियाकलाप हो रहा है, जो उसमें वृत्त है, वह अपने में धारण करना है। उन्होंने लोमश ऋषि से कहा कि तपस्वी बनने के लिए आहार क्या है, व्यवहार क्या है? लोमश ऋषि ने कहा कि ज्ञान और कर्म हैं। मेरे प्यारे! एकान्त में विद्यमान हो करके लोमश और कागभुषंड जी यह विचारते रहे कि तपस्या करने से पूर्व हम उपासक बनना चाहते हैं तो **उपासना का एक ही अभिप्राय होता है कि हमें जानना है।** जैसे जल की उपासना का अभिप्राय यह है कि हम जल को देखें कि उसका कहां उपयोग होगा तो यही जल हमारा उपास्य है। हम इसकी उपासना करेंगे तो उसका उपयोग करेंगे, ज्ञान में, विज्ञान में प्रवेश करेंगे तो वहां हम जल को क्रियात्मकता में परिणित करेंगे। वह कृषि को, अन्नाद को देने वाला जल है तो जल का उपयोग उसकी पूजा का माध्यम माना गया है, वह पूजा कहलाई जाती है। हम पूजक बनें, हम पुजारी बन करके ही अपने को ऊंचा बनायें। मेरे प्यारे! जब तक हम क्रियाकलाप में प्रवीण नहीं होंगे तो जीवन में ज्ञान और कर्म

दोनों को नहीं जान सकेंगे और यदि कर्मकांड ही कर्मकांड है, ज्ञान नहीं है तो कर्म नहीं हो सकेगा, मानो उसकी उपासना नहीं कर सकते। यदि ज्ञान ही ज्ञान होता है, कर्म नहीं है तो वह एक रूपक माना जाता है। ज्ञान और कर्मकांड दोनों ही मानव को ऊर्ध्वा में ले जाते हैं।

बेटा! कागभुषंड जी ने याग का प्रारम्भ किया तो याग से वायुमंडल को पवित्र बना उसी वायुमंडल को जब आन्तरिक जगत में ले जायेंगे, हृदय से आलिंगन करेंगे तो हृदय पुकार-पुकार के कहेगा कि हृदय ब्रह्मा हृदय ब्रव्हे कृतम। वह हृदय ब्रह्म का उपासक बन करके ब्रह्म की प्रकृति को और ब्रह्म के विज्ञान को अपने में सिंचन कर रहा है तो वह वैज्ञानिक बन रहा है। विचार आता है कि कर्मकांड और ज्ञानकांड, दोनों एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं। ऋषि-मुनियों के भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार प्राय: वैदिक साहित्य से हम प्राप्त करते रहे हैं क्योंकि जब दार्शनिकजन अपनी स्थलियों पर विद्यमान होते हैं तो वे अपने-अपने दृष्टिकोणों से संसार को मापने लगते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक मानव अपनी दृष्टि से मापता है परन्तु जब मनस्तव और प्राणत्व एक ही सूत्र में पिरोये जाते हैं तो वहां सबका एकाकीकरण हो जाता है। तो विचार आता है कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा का अपने में अनुसरण करते चले जाएं, अपने में जानते हुए जानाति जन्म ब्रह्मा, उसको जान करके सागर से पार हो जाएं। आज का विचार केवल यह कि हमारे दोनों पक्ष ऊंचे होने चाहिएं।

आज देखो, यजम् ब्रह्मा, याग के ऊपर विचार-विनिमय हो रहा था। ब्रह्मचारी को आचार्य कहता है कि हे ब्रह्मचारी! तू याग कर। गृह स्वामिनी, गृहस्वामी से कहती है कि आओ, हम याग करें। राजा प्रजा से कहता है कि अश्वमेध याग करो जिससे राष्ट्र ऊंचा बने। अश्व नाम राजा का और मेध नाम प्रजा का, जब दोनों सम्मिलित हो करके याग करेंगे तो याग सम्पन्न

होगा और अजा मेघाम ब्रह्मे, देखो, मेध को अपने में धारण करना है, जैसे हमारे यहां वाजपेयी याग है। जब ब्राह्मणा ब्रहे वृत्तम उद्गीतम ब्रह्म: उद्गीत गाने वाला उद्गीत गाता है, पुरोहित उसके समीप विद्यमान है तो वह कहीं अग्निष्टोम यागाम् याग करता है, कहीं वाजपेयी याग करता है। **अग्निष्टोम याग वृष्टि के लिए है और वाजपेयी याग उसकी पुष्टि के लिए कहलाता है।** इसी प्रकार नाना प्रकार के यागों का विधान प्राय: हमारे वैदिक साहित्य में आता रहा है, यज्ञम् ब्रह्मा यज्ञम् ब्रव्हे देवत्व यज्ञा:, याग में हमें परिणित होना है।

मुनिवरो! अश्वपति राजा की वार्ता हमें स्मरण आती हैं, वे अग्निष्टोम याग करते थे। प्रात:कालीन अग्निष्टोम याग राजा करता है, वह वेद मन्त्रों का उद्गीत गा अपनी देवी से कहता है कि आओ देवी! तुम याग में सम्मिलित हो जाओ, राष्ट्र के लिए हम वाजपेयी याग करें, इससे हमारा राष्ट्र वाचस्य बन जाए और वाचस्य बन करके महानता को प्राप्त हो जाए। बेटा! अश्वपति राजा का जीवन मुझे स्मरण है। अश्वपति प्रात:कालीन अपनी कृषि का उद्यम और याग करके अपने राष्ट्र के लिए स्वयं अपने में कला-कौशल करके द्रव्य प्राप्त करते। कृषि के उद्यम से जो अन्न उत्पन्न होता उसे पान करना और राष्ट्र के क्रियाकलापों में तत्पर हो जाना, ब्रह्मज्ञान का अध्ययन करना है। ब्राह्मणा ब्रह्मे, हे ब्राह्मण! तू आ और मेरे राष्ट्र को बुद्धिमान बना करके स्वयं बुद्धिमान बन और इस राष्ट्र को ऊर्ध्वा में गमन करा। जैसे वह महाराज अश्वपति प्रार्थी बनते रहते थे इसी प्रकार प्रत्येक मानव जब प्रार्थी बना रहता है तो प्रार्थना में तल्लीन हो करके वह देवत्व को प्राप्त करता है। देखो, परोक्ष में हमारा यह मानव शरीर, याग के रूप में रहता है।

बेटा! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के विद्यालय में ब्रह्मचारी आते और नाना प्रकार के प्रश्न और उत्तरावलियां बना करके चले जाते। हम विचारक

न करके जब विचार में प्रवेश करेंगे तो हमें यह भान होगा कि वास्तव में इस प्रकार की धाराओं का प्राय: जन्म प्रत्येक मानव के द्वार पर होना चाहिए। मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यह कि हम नाना प्रकार के यागों में परिणित हो जाएं क्योंकि **याग मानव को ऊर्ध्वा में ले जाते हैं।** आज हम विष्णु शब्द का प्रतिपादन कर रहे थे। राजा अश्वपति के यहां विष्णु याग का भी विधान था क्योंकि यह विष्णु वसु कहलाता है, प्रत्येक मानव उसमें बसता है, उसी में रत्त रहता है। यहां विष्णु नाम याग का है। 'यज्ञो वै विष्णु:' यह यज्ञ विष्णु कहलाता है। मेरे प्यारे! अपने राष्ट्र, अपने समाज के प्रति जो विडम्बित हो रहे है, वे ब्रह्मणा शान्त होने चाहिएं। इस प्रकार जब मानव अपने में धारयामि बना रहता है तो देवत्व को प्राप्त होता है। यज्ञ ही हमें बसाता है क्योंकि यह वसु है, यह बसाने वाला है। मानव ध्यानावस्थित होकर याग में परिणित हो जाते हैं और राजा अग्निष्टोम याग करता है। विचार केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा का सदैव गुणगान गाते रहें जो परमपिता परमात्मा रचियता है, जो उपाधियों से संसार में अलंकृत हो रहा है, उसे हमें विचारना है और हमें परमपिता परमात्मा की महिमा का भान होना चाहिये। हम उसके ऊपर चिन्तनीय बने रहें और कर्मकांड की देवी प्रवृत्ति से भी मानव देवत्व को प्राप्त होता रहा है। अब मेरे प्यारे महानन्दम् ब्रह्मे: दो शब्द उच्चारण करेंगे।

महानन्द जी का प्रवचन

ओ३म् देवानाम भवितम नम: द्रव्यम् वृत्तम मह:, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मंडल, मेरे भद्र समाज! अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे, कर्मकांड और ज्ञानकांड उनका उद्गार था। विषय केवल यह कि मानव को ज्ञानी और कर्मकांडी भी बनना चाहिए। जो मानव कर्मकांड और ज्ञानकांड को ले करके, दोनों पक्षों में गमन करता है

वह प्राय: अपने उद्देश्य को पूर्ण कर लेता है,वह अपने उद्देश्य में पूर्णता को प्राप्त हो करके बैतरनी नदी से पार हो जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी बहुत सी आख्यिकायें हमें प्रकट करा रहे थे। कर्मकांड की पद्धतियां मानव अध्ययन करता रहता है और साथ में याग जैसे कर्मकांड, क्रियाकलापों में रत्त रहता है क्योंकि वह ज्ञान और कर्म दोनों से बनते हैं।

आज यह काल बड़ा विचित्र काल है, यहां न तो गुरु है न कोई शिष्य। यह काल ऐसा है जहां गुरु-शिष्य की परम्परा सीमा से दूरी चली गई है। मैं तो यह कहता रहता हूं कि इस कर्मकांड को ऊंचा बनाना चाहिए और कर्मकांड की पद्धतियां और ज्ञान दोनों पक्ष मानव के ऊंचे हो करके गमन करने चाहिएं, जिसका पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी-अभी उच्चारण किया। परन्तु इस सम्बन्ध में मैं विशेष चर्चा नहीं प्रकट करूंगा, विचार केवल यह कि यहां एक याग हो रहा था। याग में मेरा अन्तर्हृदय यजमान के साथ रहता है और मैं यह कहा करता हूं कि हे यजमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे और तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यह कहा करते हैं कि जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता है वहां द्रव्य उसको नहीं त्यागता और जहां द्रव्य की अवहेलना होती है वहां द्रव्य एक समय उसको त्याग देता है। तो विचार आता है, मैं यह कहता हूं कि हे यजमान! तेरा तन-मन-धन सर्वत्र यज्ञ देवता को समर्पित होना चाहिए। वह यज्ञ देवता तेरे को संसार से पार पहुंचायेंगे। इस प्रकार का उपदेश इस वैदिक साहित्य में प्राय: हमारे समीप आता रहा है, हम इसे विचारते रहे हैं।

याग के सम्बन्ध में हमें पूज्यपाद गुरुदेव ने बड़ी आख्यिकाएं प्रकट कराई हैं। इनका मन्तव्य बड़ा विचित्र रहा है क्योंकि याग एक ऐसा कर्मकांड है जो अपने में बड़ा पूर्ण है। इसमें देवताओं की पूजा, अग्नि की पूजा और जल की पूजा है, अन्तरिक्ष की, पृथ्वी की पूजा है और यही पूजा करके

मानव संसार सागर से पार होने का प्रयास करता है। तो विचार आता है कि यह सर्वत्र याग एक प्रकार भव्यता में प्राप्त हो रहा है। हम इस प्रकार के यागों में परिणित होकर मन को ऊंचा बनायें। यजमान प्राय: कह रहा है कि मन प्राण मनम् प्रहेयम् ब्रव्हे प्राणों मने मनम् वृति वृता:। देखो, मैंने कई कालों में पूज्यपाद को वर्णन कराया है कि एक मन विशेष है, एक सामान्यत्व है। इसी प्रकार दो प्रकार का प्राण है। प्राण और मन को सहयोगी बना करके जब हम गमन करेंगे तो हमारा मन मन स्थिर रहेगा। यदि हम मन को पवित्र करना चाहते हैं तो मन के लिए सामग्री चाहिए, साकल्य चाहिए। वह साकल्य क्या है जिससे हमारा मन पवित्रता को प्राप्त हो जाए। मन का प्राण ही सखा अथवा मित्र माना गया है। जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के आश्रम में अध्ययन करते थे तो पूज्यपाद प्रात:काल ब्रह्मचारियों के मध्य में, साधकों के मध्य में विद्यमान हो करके यह कहा करते थे कि मन को प्राण के द्वार पर ले जाओ। जब ले गए तो वह यह कहते प्राण को मन पर ले आओ। जब ले आए तो उन्होंने कहा दोनों का मिलान करो। तो जब प्राण और मन, दोनों का मिलान किया तो मन प्रसन्न हो गया और मन देवत्व को प्राप्त हो गया। प्राय: यह एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं।

पूज्यपाद गुरुदेव ने नाना प्रकार का ज्ञान, विज्ञान और कर्मकांड दिया है। हम वैसे ही कर्मकांडी बने, धर्मवृत्ति को अपनाने का प्रयास करें। हे यजमान! जब तू अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो तो मन को एकाग्र कर। मन में जो ज्योति जागरूक हो रही है, प्राण के माध्यम से जो अग्नि अपना स्वरूप दे रही है, साकल्य दे रही है, तेरे चित्रों को द्यौ में प्रवेश कर रही है, चित्राम् ब्रह्मणा बन करके अग्नि की धाराओं पर वायुमंडल को दर्शा रही है, आज तू उसकी उपासना कर। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहता रहता हूं कि पूज्यपाद इस प्रकार के ज्ञान और विज्ञान में ही हमें ले जाते हुए जब गागर

में सागर भरते हैं तो मानो वे प्रात: कालीन ब्रह्मचारियों में मध्य में विद्यमान हो करके क्रियात्मकता में ले जाते हैं और मन और प्राण को एकाग्र करके अपनी इस देह के द्वारा एकाग्र हो करके सांत्वना को प्राप्त होते हैं, अग्नम् ब्रह्मा, वे प्राणायाम करते हैं जिससे हमारे अन्त:करण में प्रवेश हो गयी अशुद्धता समाप्त हो जाए और अन्त:करण पवित्रता को प्राप्त होता रहे।

इसी प्रकार विचार आते रहते हैं, मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कोई वाक्य प्रकट करने अथवा कोई व्याख्यान देने नहीं आया हूं। मैं केवल यजमान के समीप आया हूं और अपने हृदय से यही कहता रहता हूं कि हे यजमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे, द्रव्य का सदुपयोग होता रहे, क्योंकि द्रव्य सद्‌मयी कहलाता है और द्रव्य का दुरुपयोग होना अज्ञान कहलाता है। सदुपयोग वही है जो मोक्ष की पगडंडी को दर्शा देता है और दुरुपयोग नरक बना देता है। मैं राष्ट्र के प्रति भी बहुत सी वार्ताएं पूज्यपाद गुरुदेव को अवगत कराता रहता हूं और यह उद्‌गीत गाता रहता हूं कि आधुनिक काल का यह राष्ट्र वाममार्गी हैं। इसमें एक दूसरे की प्रबलता नहीं और देवत्व नहीं, ऊंचा मार्ग नहीं है। यह वार्ममार्ग इसलिए क्योंकि आहार अशुद्ध हो गया, व्यवहार अशुद्ध हो गया। यदि आहार ब्रह्मे देवम् ब्रह्म, जिसके यह वृत हो गये हैं तो ऊर्ध्वा में कैसे उड़ान उड़ी जायेगी। विचार आता रहता है कि हम देवत्व को धारण करें और जैसे पूज्यपाद गुरुदेव से कहा है, राष्ट्र में राष्ट्रवाद याग करना चाहिये। राजा अपनी प्रजा को महान बनाने के लिए अश्वमेध याग में ले जाए। आज मैं वर्णनीय शैली में नहीं जाना चाहता हूं, वाक्य केवल यह कि हमारा जीवन प्राय: परमात्मा को निहारता रहे, उसके ज्ञान और विज्ञान को धारण करता हुआ मानव संसार सागर से पार हो जाए। हमें अपने जीवन को महान बनाने का प्रयास करना चाहिए, महान बनाना ही प्रकाश में जाना है। महान न बनाना देखो, अन्धकार में प्रविष्ट होना है, मृत्यु का आव्हान करना है।

भगवन्! जहां हमारी यह आकाशवाणी जा रही है, वहां एक याग का आयोजन हुआ। यागाम भूतम ब्रह्मे यागः, याग अपने में पूर्णता को प्राप्त होता रहा है। **मन की पवित्रता विशेष होती है तो याग विशेष बन जाता है।** आज मैं पूज्यपाद गुरुदेव से उच्चारण कर रहा हूं कि आधुनिक काल का राष्ट्रवाद प्रियता को प्राप्त नहीं है। यदि राष्ट्र को ऊंचा बनना है तो राजा को प्रजा को महान बनाना है, जैसे मन अपनी इन्द्रियों की रक्षा करता है राजा को इसी प्रकार रक्षार्थी होना चाहिए। रक्षा करते-करते वह विष्णु का रूप बन करके अपने में अपनेपन को चाहता है। राजा यदि अपने राष्ट्र को ऊंचा बनाना चाहता है, वाममार्ग से उपरामता को चाहता है तो राष्ट्र में ज्ञान होना चाहिए। जैसे पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया राजा स्वयं अपने में ब्रह्मवेत्ता बने और प्रभु को ध्यानावस्थित भी करे। जब राजा इस प्रकार का बन जाता है तो ध्यानावस्थित हो करके अपने में ऊर्ध्वा में गमन करता रहता है। यजमन् ब्रह्मा यजमन् देवाः, प्रजा में मन होने चाहिए। आधुनिक काल में मानव चिन्तित हो रहा है और वह चिन्तित क्यों हैं? मैं दृष्टिपात करता रहता हूं, पूज्यपाद गुरुदेव को अवगत कराता रहता हूं कि आधुनिक काल में न तो द्रव्यपति को शान्ति है और न द्रव्य की हीनता वाले को शान्ति है, इसका मूल कारण यह कि राजा को शान्ति नहीं है। राजा, जो अधिपति है, शान्ति में नहीं होगा तो प्रजा भी शान्ति में नहीं होगी। माता-पिता जब कर्मकांडी नहीं होंगे तो उनकी संतानें भी नहीं होंगी।

राजा ब्रह्मज्ञानी हो, कर्मकांडी हो, अपना शुद्ध आहार-व्यवहार करने वाला हो जैसे पूज्यपाद अश्वपति की चर्चा कर रहे थे। अश्वपति प्रातःकालीन अपने में कृषि का उद्यम करके उसके अन्न को पान करते तो बुद्धि पवित्र रहती और राजा अपने राष्ट्र के क्रियाकलापों में लगे रहते। वे स्वयं अपने कोष का अन्न ग्रहण करते थे, राष्ट्र के कोष का अन्न ग्रहण नहीं करते थे।

आधुनिक काल का राष्ट्र ऐसा है कि वह प्रजा के श्रृंगार, प्रजा के वैभव को अपने में संग्रह कर रहा है तो बुद्धि कैसे पवित्र रहेगी। जब संग्रह ही नहीं होगा तो बुद्धि पवित्रता को धारण करती रहेगी। मैंने कई काल में कहा है कि जो राजा प्रजा के वैभव को अपने वैभव में लगाता है तो उस राजा को शान्ति नहीं होगी, वह राजा अशान्ति में होगा। प्रजा का द्रव्य, प्रजा के ही क्रियाकलाप में आए तो प्रियत्व है। जब राजा स्वार्थी बन करके उस द्रव्य को अपने भोग में लाता है तो वह भोग उसका विनाश कर देता है, उसको अपने में धारण करता हुआ वह अप्रियता को प्राप्त हो जाता है। राजा अश्वपति स्वयं अपना कृषि उद्यम करके, उस अन्न को पान करके राष्ट्र और प्रजा को स्वच्छ बनाने का प्रयास करते थे।

धर्म और सम्प्रदाय

राजा के यहां किसी प्रकार का सम्प्रदाय नहीं होना चाहिए। जिस काल में देखो, ईश्वर का नामकरण नहीं होता, वहां मन और प्राण दोनों बिखर जाते हैं। मानव को चाहिए कि उन्हें बिखरने न दे। राजा के राष्ट्र में जब ईश्वर के नाम पर साम्प्रदायिकता आ जाती है तो एक रूढ़ि दूसरे के रक्त की प्यासी बन जाती है और राष्ट्र का उन रूढ़ियों से विनाश हो जाता है और प्रजा में अशान्ति आ जाती है। ईश्वर के नाम पर जब बिखर जाते हैं तो मानव का मन और प्राण, दोनों बिखर जाते हैं, प्रवृत्ति बिखर जाती है, द्रव्य का दुरुपयोग हो जाता है और राष्ट्र विनाश के मार्ग पर चला जाता है। ऐसी सम्प्रदायों का जन्म हो तो राजा को ब्रह्मवेत्ता बन करके और जो भी विचार,विज्ञान और मानवीयता से स्थिर हो जाए, उस विचारधारा को स्वीकार करके राष्ट्र का पालन करना चाहिए। जब राजा यह कहता है कि मैं तो धर्मनिर्पेक्ष हूं तो अरे राजन्! **जब तुम धर्मनिर्पेक्ष बन गये तो धर्म का पक्ष कहां है? जब धर्म का पक्ष तेरे द्वारा नहीं रहेगा, तो तू क्या है?** मेरे विचार में तो वह वाममार्गी

बन गया है। जब वह धर्मनिर्पेक्ष हो गया है तो धर्मनिर्पेक्ष का अभिप्राय यह कि वह धर्म जानता नहीं है।

आधुनिक समाज में धर्म को कहीं जल में स्वीकार कर लिया है, कहीं भव्य भवनों में स्वीकार कर लिया। अरे! जो परमात्मा का बनाया हुआ यह भव्य भवन है इसमें जो इन्द्रियां हैं, इनमें धर्म समाहित रहता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मचारी से कहते हैं कि चक्षु में सुन्दामि, प्राणम में सुन्दामि। हे ब्रह्मचारी! तू इन्द्रियों को ऊंचा बना, प्राण सु-प्राण हो, वह अशुद्ध न हो, दृष्टि तुम्हारी सु हो, माता और पुत्री की दृष्टि से दृष्टिपात करने वाला तेरा समाज रहना चाहिए। सु-दृष्टिपात करने वाला तेरा समाज रहना चाहिए। सु-दृष्टिपात करना धर्म है, सु-सुगन्ध को लेना धर्म है, सु-शब्दों को श्रवण करना धर्म है, सु-क्रियाकलाप का नाम धर्म है। अरे! धर्म को अपना करके तू अपने राष्ट्र को ऊंचा बना क्योंकि जो ब्रह्मवेत्ता राजा होता है, वह धर्म को इन्द्रियों में स्वीकार कर लेता है। भव्य भवनों में धर्म नहीं होता, वहां तो राज्यसभा होती है, वहां एक दूसरे की कटुता होती है। **धर्म तो मानव की इन्द्रियों में समाहित रहता है।** मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई कालों में वर्णन कराया कि ब्रह्मज्ञान से राजा अपनी प्रजा को कहता है कि इन्द्रियों से सु-दृष्टिपात करना और दर्शनों को वाणी से विचारना है, सु-अध्ययन करना है। अरे! वही तो तेरा धर्म है, उस धर्म को अपना करके तू अपने राष्ट्र और समाज को उसी मार्ग पर ले चल।

राजा जब ब्रह्मवेत्ता होता है तो नाना प्रकार की रूढ़ियों को इन्द्रियों के धर्म से समाप्त कर देता है। वाह्य और आन्तरिक जगत, दोनों का मिलान करके जो क्रियाकलाप हो रहे हैं, ऐसी प्रेरणा देखो, दैत्य के हृदय में भी होती है और ऐसी प्रेरणा मानव के मन में भी होती है, उन प्रेरणाओं का उत्सुक बनना है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में कहा कि जब आन्तरिक जगत

से प्रेरणा उत्पन्न होती है तो वह प्रेरणा आत्मा की है। आत्मा को ब्रह्म कहते हैं और **वही ब्रह्म हत्या कहलाती है जो आत्मा की वाणी को स्वीकार नहीं करता।** आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं देने आया हूं, मेरे हृदय में विडम्बना है और विडम्बित होता हुआ मैं अपने विचार देता रहता हूं। ब्रह्मवेत्ता राजा का पुरोहित हो और उसका गुरु, आचार्य हो। राजा का पुरोहित ही राष्ट्र को सदैव सचेत करता है। राजा जब सुरापान करता है, जब प्रजा के वैभव को अपने में संग्रह करता है तो वह राजा नहीं होता, वह तो वाम मार्गी कहलाता है। तो आज मैं विशेष चर्चा न प्रकट करता हुआ अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाता हुआ यह कहता रहता हूं कि 'ज्ञानाम ब्रह्मे' ज्ञान और कर्मकांड दोनों ही ऊंचे बनने चाहिए।

(गुरु जी) मेरे प्यारे ऋषिवर! अभी-अभी मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने विचार व्यक्त किये हैं और उन्होंने आधुनिक काल की कुछ चर्चाएं की हैं। उन्होंने राष्ट्र को वाममार्गी वृत्तियों में रत्त और यजमान को उन्होंने हृदय से उनके अपने जीवन के सम्बन्ध में वार्ता कही। राष्ट्र के प्रति इनका उद्गार बड़ा विचित्र है। परम्परागतों से ऋषि-मुनि राजा को अपना उपदेश देते रहे हैं, उनका एक विचार चलता रहता है, भ्रमण करता रहता है, चरेवेति होता रहता है। तो आज का विचार क्या कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा को जानते हुए, धर्म और मानवीयता को इन्द्रियों में दृष्टिपात करते रहें। वैदिक पद्धतियों में प्राय: ऐसा आया है और महानन्द जी ने भी उसी प्रकार अपने उद्गार दिये। यह आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

अमृतसर
१२-१-१९९२

यज्ञ के चौबीस होता

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वह परमपिता परमात्मा महिमावादी है। जितना भी यह जड़ जगत अथवा चेतन जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है इस सर्वत्र ब्रह्मांड के मूल में प्राय: वह परमपिता परमात्मा दृष्टि में आते रहते हैं क्योंकि जड़ और चेतन दोनों ही प्रकार का जगत मानवता से गुंथा हुआ है और उसमें महतत्व विद्यमान रहता है।

आज का हमारा वेद मन्त्र कह रहा है- वेदाम भू व्राहन अपा: वेतसयम् कि यह जो परमपिता परमात्मा का अमूल्य जगत है, वह वेतसय कहलाया गया है। चन्द्र असुतम, चन्द्रमा का नामकरण वेतसय कहा गया है। वह चन्द्रमा हमारे जीवन का उद्‌बोधक है और वह अमृत की वृद्धि करने वाला है इसीलिये उस परमपिता परमात्मा को भी हमारे यहां अमृतमयी कहा है, उसका जो ज्ञान और विज्ञान है, वह सर्वत्र अमृतमयी कहा गया है। यह संसार उसी परमपिता परमात्मा की वेतसय में निहित हो रहा है। परमपिता परमात्मा निर्माण द्रव्य कृतम, संसार का निर्माण करने वाला है और प्रत्येक मानव अपने में उसका गुणगान गा रहा है, प्राणी मात्र उसी में ओतप्रोत हो रहा है।

आज का हमारा वेद मन्त्र कह रहा है- यजनम् ब्रह्मा वसुतम देवा: कि वह परमपिता परमात्मा ब्रह्म हैं और उसी में जब हम ओतप्रोत होते हैं तो हमें ब्रह्मतत्व अपने में ही दृष्टिपात आता है। देखो, आज का हमारा वेद मन्त्र कहता है- प्रकाशम भविते सनमय ब्रह्मा: कि वह परमपिता परमात्मा प्रकाशक है और उसका ज्ञान और विज्ञान भी प्रकाश में नृत्य करने वाला हैं जब हम आचार्यों के समीप विद्यमान हुए तो आचार्यजनों ने कहा है कि मानव के अन्त:करण का जो प्रकाश है, वह वेदरूपी प्रकाश है, जिसको आपोमयी वर्णित किया गया है, मानो वह अन्त:करण को प्रकाश में लाने वाला है, क्योंकि परम्परागतों से दो प्रकार का जगत हमारे यहां माना गया है। एक वाह्य जगत है और एक आन्तरिक जगत है। जब हम दोनों जगतों के ऊपर विचार-विनिमय करते हैं तो यह संसार, यह ब्रह्मांड वाह्यत्व हमें अपने में दृष्टिपात आता है परन्तु एक आन्तरिक जगत माना गया है जो अन्तर्हृदय में विद्यमान रहता है, जिसकी चित्तमंडल में महती मानी गयी है। एक-एक वेद मन्त्र हमें उस मार्ग पर ले जाता है, जिस मार्ग पर जाने के पश्चात हमारे अन्त:करण में प्रकाश की उज्जवलता प्राप्त होने लगती है।

मुझे वह काल स्मरण है जहां ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने आश्रम में विद्यमान हो करके अप्रतम् ब्रह्मे सनवाहा:, वेद का मन्त्र न्यौधामय उच्चारण करते हैं। ब्रह्मचारी एक पंक्ति में विद्यमान हैं और याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं कि हे ब्रह्मचारियो! तुम प्रात: कालीन अपने देवत्व को ऊंचा बनाओ। प्रकाश का विचार परम्परागतों से एक नैतिक विचार माना गया है। अपने जीवन में अपनी नैतिकता को ऊंचा बनाने के लिए तुम वेद मन्त्रों का उच्चारण करो, अमृतम् यज्ञम भवितम्, तुम यज्ञ करो। वेद मन्त्र यह कहता है कि तुम याज्ञिक बनो। वेद मन्त्रों का बहुत सा उद्‌गीत गाते हुए उन्होंने कहा कि तुम वाजपेयी याग करो, वाचनम ब्रह्मा वरुणोतय ब्रहे, मानो तुम अश्वमेध याग करो, आध्यात्मिकवादी बनने के लिए तुम आत्मा को जानने का प्रयास करो।

मेरे पुत्रो! देखो, जब यह वाक्य ऋषि उच्चारण कर रहे थे तो यज्ञदत्त ब्रह्मचारी के समीप महर्षि श्वेतकेतु विद्यमान थे। उन्होंने कहा कि प्रभु! आप याग की बड़ी विवेचना कर रहे हैं परन्तु प्रभु! कितने होताओं की आवश्यकता होती है और कितने होता होने चाहिये क्योंकि यजमान यह चाहता है कि मैं याग तो करूं परन्तु कितने होताओं के द्वारा याग करूं? महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा कि चौबीस होताओं के द्वारा याग होना चाहिए। चौबीस होताओं की यह जो पुरी है, यज्ञशाला है, उस यज्ञशाला में विद्यमान हो करके तुम अपने में चौबीस होताओं के द्वारा याग करो। महर्षि श्वेतकेतु ने कहा कि प्रभु! वे चौबीस होता कौन से हैं जिनके द्वारा मुझे याग करना है?

महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा कि **पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्म इन्द्रियां, दस प्राण और मन, बुद्धि, चित्त अहंकार- यह चौबीस होता कहलाते हैं।** इन होताओं के द्वारा जब तुम याग प्रारम्भ करोगे तो तुम अपने में सफलता को प्राप्त हो जाओगे। प्रत्येक मानव जब सफलता को प्राप्त करना चाहता है, अपने मानवीय जीवन और आन्तरिक जगत को सजातीय बनाना चाहता है तो उसको चौबीस होताओं को अपने चिन्तन में लाना होगा। सबसे प्रथम देखो, यह जो वाह्य इन्द्रियां हैं, जो वाह्य जगत को दृष्टिपात करती रहती हैं, इन इन्द्रियों से सुक्रियाओं में रत होते हुए अपने में कर्म करते चले जाएं। पांच ज्ञान इन्द्रियां हैं जिनके विषयों का साकल्य बनाने से आन्तरिक जगत बन जाता है। उस साकल्य को हमारे यहां चरु के नाम से भी वर्णित किया गया है। मेरे प्यारे देखो! यह जो चरु है, इसका बनाना बहुत अनिवार्य है, बिना चरु के बनाये मानो, यजमान अपने याग को सफलता को प्राप्त नहीं कर सकता। उन्होंने कहा कि सम्भवा ब्रव्हे, तुम ज्ञान इन्द्रियों से समस्त ब्रह्मांड को मापने का प्रयास करो।

नेत्र-दृष्टि

मेरे पुत्रो! देखो, प्रत्येक ज्ञान इन्द्रियों में देवता विद्यमान हैं, जैसे नेत्रों में अग्नि विद्यमान होती है, श्रोत्रों में अन्तरिक्ष विद्यमान होता है, त्वचा में वायु विद्यमान होते हैं और घ्राण में पृथ्वी, गन्ध और सुगन्ध दोनों विद्यमान हैं। जब इन पांचों ज्ञानेन्द्रियों का तुम चरु बनाना प्रारम्भ करोगे तो सबसे प्रथम अग्नि को तुम शुभ-शुद्ध रूप से चिन्तन में लाना प्रारम्भ करोगे क्योंकि अग्नि देवत्वाम् वरुतम दूतम ब्रह्मे व्रणा:, यह देवताओं का दूत है और देवताओं का दूत ही देवत्व को प्राप्त करा देता है, इसलिए वह नेत्रों में वास करता है। दृष्टिपात करते हुए एक वैज्ञानिक अपनी आभा में परिणित हो जाता है और नेत्रों की अग्नि को स्थूल रूप में, सूक्ष्म रूप में, परोक्ष रूपों में अपने में दृष्टिपात करता रहता है। उस अग्नि का चरु बना लिया जाता है जो अग्नि लोक-लोकान्तरों को सूत्रित कर रही है। वह अग्नि हमारे शरीर में उष्ण बन करके रहती है। वही अग्नि गृह आश्रम में गृहपथ्य नाम की अग्नि बन करके रहती है। वही अग्नि ब्रह्मचर्य जीवन में गार्हपथ्य नाम की अग्नि बन करके रहती है और वही अग्नि वानप्रस्थ काल में वैश्वानर नाम से रहती है और आव्हनीयाम् भूतम् वरुणम्ब्रह्मे: आव्हनीय अग्नि ज्ञान में रहती है। इन चारों प्रकार की अग्नियों को तुम्हें समेटना है और समेट करके इनका चरु बनाना है।

देखो, अग्नम् ब्रह्मा:, अग्नि मानव के नेत्रों में प्रतिष्ठित हो जाती है। यह अग्नि कैसे प्रतिष्ठित होती है? मेरे पुत्रो! नेत्रों से सुदृष्टिपात करते रहो तो इसमें देवत्व अपने में वास करता है। जब राष्ट्रीय पद्धति के आधार पर नेत्रों को दृष्टिपात करते रहोगे तो उसमें रजोगुण की भावना विशेषकर होती हुई वह देखो, तरंगों में तरंग अर्पित होती रहती है और जब उसी ज्योति को समाजवाद में लेकर जाओगे तो वह विज्ञान के वांग्मय में प्रवेश हो जाती है। वही अग्नि देवताओं का हूत बन करके याज्ञिकता में परिणित करा देती

है। अग्नम् ब्रह्मा: न वर्ता:, वह ब्रह्म अग्नि ब्रह्म ज्ञान की दृष्टि से दृष्टिपात करती रहती है। विचार आता है कि यह अग्नि अपने में कितनी भव्यता में परिणित रहती है। हमें इस अग्नि पर विचार-विनिमय करना चाहिए। यह अग्नि देवताओं का मुख है। इस अग्नि को हम दृष्टिपात करते हैं तो यह संसार अपने में दृष्टिपात आने लगता है। इस अग्नि का चरु बनाना चाहिए जिससे वह हमें अन्तरिक्ष में ले जाएगी।

श्रोत्र-शब्द

मेरे प्यारे! देखो, हमारे श्रोत्र का समन्वय अन्तरिक्ष से रहता है, दिशाओं से रहता है। शब्द का जब उद्‌गार उत्पन्न होता है तो वही उद्‌गार अन्तरिक्ष में जाता हुआ दिशाओं में प्रवेश करता है और दिशाओं में प्रवेश करता हुआ वही शब्द श्रोत्रों में आ जाता है। वह शब्द अमृतम ब्रह्मप्रतार, अन्तरिक्ष में ओतप्रोत होने वाला यह शब्द है, उसी में यह प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है और जब उसमें यह प्रतिष्ठित हो जाता है तो देखो, अन्तरिक्ष से ही ध्वनि आ रही है। यह ध्वनित होने वाला जगत है। मुझे स्मरण आता रहता है कि एक समय महर्षि अंगीरस अपने आसन पर विद्यमान हो करके साधना में प्रवृत्त हो रहे थे और साधना में ध्वनियों का नृत्त कर रहे थे, अपने श्रोत्रों में ध्वनि को ध्वनित करते हुए उसको अपने में अनुभव कर रहे थे। एक तो वह ध्वनि कहलाती है जो स्वर रूपों से आ रही है, एक ध्वनि परोक्ष रूप में आन्तरिक जगत में समाहित हो जाती है और इसके पश्चात् उसी ध्वनि को हम जब अपने में समाहित करने लगते हैं तो प्राणों की गर्जना हो करके एक परमाणु दूसरे में प्राणों का सन्निधान कर रहा है, उस ध्वनि को भी वह श्रवण करता है।

एक ध्वनि वह है जो साधक अपने आश्रम में विद्यमान हो करके अनहद स्वर को अपने में श्रवण करता है। प्राणों का संघर्ष होते हुए एक परमाणु

दूसरे में संघर्ष कर रहा है तो वह ध्वनियां आ रही हैं और मानव मस्तिष्क उन ध्वनियों को अपने में अनुभव करने लगता है। ध्वनि एक नहीं बेटा! अनन्त ध्वनियां मानी गई हैं। उन ध्वनियों को मानव अपने में धारण करता रहा है। अनन्त ध्वनियां मानव को ब्रह्मांड का दर्शन करा देती हैं और उससे जो पूर्व में ध्वनियां हैं, वह दिशाओं का ज्ञान करा देती हैं कि अमुक दिशा में अमुक गमन करना है और अमुक शब्द से उनका मिलान होता है। वह श्रोत्रों के प्रीति में अमृत हो जाता है, वह प्रीति में गमन करता रहता है। मेरे पुत्रो! वह ध्वनि है और वह भी ध्वनि है, जो सन्धोमी ब्रह्मा कृतम् देवा:, अपने में ध्वनित होकर अन्तरिक्ष में जो शब्द अपने में संघर्ष कर रहे हैं तो उन शब्दों को वह अपने में श्रवण करता है। महर्षि अंगीरस मुनि महाराज अपने जीवन में अन्तरिक्ष से ध्वनियों को श्रवण करते रहे हैं। ऋषिवर से जब जालवी ऋषि ने यह प्रश्न किया कि महाराज! यह तुम क्या कर रहे हो तो अंगिरस ऋषि ने कहा था कि भगवन्! मैं अन्तरिक्ष में अपने पूर्वजों के शब्दों को श्रवण कर रहा हूं। हमारे रक्तमयी शरीर में जो ध्वनि है, उस ध्वनि पर ध्वनियों का आवेश होता रहता है, मानो वह ध्वनि अग्रणीय होती हुई, एक दूसरे में समाविष्ट होती हुई वही ध्वनि हमारे पूर्वजों के शब्दों में जाकर और देखो, रक्त के कणों में, रक्त में जो चित्रों की ध्वनि है, उसी को हम प्राय: दृष्टिपात करने लगते हैं। इस प्रकार साधक अपने में साधना करता हुआ बहुत दूर चला जाता है, उसका विचार-विनिमय बड़ा गम्भीर हो जाता है, वह प्रत्यक्ष से परोक्ष में चला जाता है और उसी को अपनी क्रियाओं में रत्त करने लगता है।

मेरे पुत्रो! इसी प्रकार वह जो ध्वनि पर ध्वनियां आ रही हैं, कहीं उसको अनहद स्वर कहते हैं, कहीं उसको वहतरी ध्वनि कहते हैं, उसका भिन्न-भिन्न रूपों से वर्णन किया गया है। जब मानव शब्द उच्चारण करता है तो वही शब्द अन्तरिक्ष में जाता है। दिशाओं में समन्वित हो करके अग्नि की धाराओं पर वही शब्द जब गमन करता है तो द्यौ में प्रवेश कर ज़ाता

है। वही शब्द अप्रतियों में प्रवेश करता जब तमोगुण की प्रवृत्ति में जाता है तो भू: में रमण करता रहता है। इसी प्रकार यह शब्द अपने में बड़ा विचित्र है। ऋषि कहते हैं कि इसका साकल्य बनाओ और साकल्य बना करके अग्नि में उसे समावेश कर दो। हृदय में उसकी प्रतिष्ठा करो और हृदय में जिस यज्ञशाला का निर्माण हो रहा है, वहां उसका यज्ञ करो। हृदय में यजम् ब्रह्मा:, उसी को हृदय में समावेश करते उसकी ममता को धारण करते चले जाओ।

घ्राण-गन्ध

आगे वेद का ऋषि कहता है कि असुतम् घ्रणा प्रोहो प्रति देवा:, यह घ्राण नाना प्रकार की सुगन्धियों को ग्रहण करती रहती है। सुगन्ध में एक बड़ी विचित्रता होती है कि घ्राण के माध्यम से जो भी सुगन्ध लेता है उसका समन्वय हृदय से हो जाता है, मानो वह हृदय में समाविष्ट होती रहती है। वह सुगन्ध, पृथ्वी से समन्वय करती है। पृथ्वी में नाना प्रकार की गन्ध का जन्म होता है, घ्राण के माध्यम से साधक उसको अपने में ग्रहण करता है। बेटा! मुझे भगवान राम का जीवन स्मरण आता रहता है। भगवान राम बाल्य काल में वशिष्ठ मुनि महाराज के यहां अध्ययन करते थे तो ऋषि जब इस प्रकार का नैतिकता में उपदेश देते तो राम उसको क्रिया में लाने का प्रयास करते, उनको हृदयग्राही बनाते हुए भगवान राम सम्पदा ब्रह्मा वरुणस्तम देवत्व ब्रह्म:। मुनिवरो! जब उन्हें वन प्राप्त हो गया तो पृथ्वी से गन्ध को ले करके उन्होंने निषाद से कहा कि इस पृथ्वी में ऐसी गन्ध है कि इसमें अन्न उत्पन्न किया जा सकता है। पृथ्वी की गन्ध को ले करके वह खनिजों को जानते रहे हैं। राम ने एक समय अपने आसन पर विद्यमान हो करके जब पृथ्वी की गन्ध को लिया तो उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि हे लक्ष्मण! वैज्ञानिकों का एक समूह एकत्रित करो। उन्होंने वैज्ञानिकों का समूह एकत्रित किया। उन्होंने कहा कि इस पृथ्वी में अमुक दूसरी पर इस प्रकार का खनिज विद्यमान

है, जिसमें अग्नि तत्व प्रधान है और तुम इसे जानने की इच्छा करो। जब पृथ्वी में उसका आधान किया गया, जानने की इच्छा की गई तो देखो, उस पृथ्वी से वह तत्व प्राप्त हुआ।

घ्राण इन्द्रिय का समन्वय पृथ्वी से है, इसका देवता पृथ्वी है और पृथ्वी की गन्ध से ही मानव अपनी साधना में परिणित होते रहे हैं। बेटा! मुझे वह काल भी स्मरण है जब महर्षि लोमष और कागभुषंड जी दोनों अपने में अनुसन्धान करते रहे। एक समय अनुष्ठान करते हुये जब उन्होंने इस प्रकार का याग किया कि जिससे वायुमंडल पवित्र हो जाये तो वायुमंडल क्या, देखो, पृथ्वी की गन्ध को शोधन करना है और शोधन करने वाला साधक जब साधना करता है तो उसकी साधना पूर्ण होती है। इसलिये महर्षिजन क्या, राजा भी अपने राष्ट्र को त्याग करके भयंकर वनों में तपस्या करते रहे हैं। उस तपस्या का परिणाम यही रहा है कि वायुमंडल को पवित्र बनाना है जिससे प्रत्येक इन्द्रिय में वह तत्व उत्पन्न हो, जिससे हम आत्मा के समीप जाने का प्रयास करें और हृदय को हृदयग्राही बना करके, हृदय को पवित्रता की वेदी पर ले जायें। बेटा! आज के वेद मन्त्रों में इस प्रकार के मन्त्रों का उद्गीत गाया जा रहा था। भगवान राम अपने जीवन में सदैव घ्राण इन्द्रियों के ऊपर अनुसन्धान करते रहे, कागभुषंड जी भी घ्राण इन्द्रियों के ऊपर विचार-विनिमय करते थे। वे संकल्पमयी प्राणायाम, खेचरी मुद्रा में अपने को मुद्रित करके साधना में पवित्रता को प्राप्त कर सके। इस प्रकार की साधना में प्राय: साधक अपने में रत्त होते रहे हैं। वेद का ऋषि याज्ञवल्क्य कहता है कि हे यज्ञदत्त ब्रह्मचारी! अमृतम् ब्रह्मा: देवा: प्रभा लोकम, तुम इस विषय के ऊपर अन्वेषण करो।

रसेन्द्रिय-रसना

रसास्वादन करने वाली जो इन्द्रिय है उसे रसना कहते है। वह रसों को अपने में ग्रहण करती रहती है। बेटा! हमारे यहां इस प्रकार के ऋषि हुए

हैं जिन्होंने आपो को ले करके रसों को जाना। आज हम आपो सूत्र का वर्णन कर रहे थे। देखो, आपो में षट रस हैं। उन षट रसों के रसों को जानने वाली रसना कहीं खेचरी मुद्रा से जल को अपने में सिंचन करने लगती है, कहीं वही रसना अग्रणीय भाग में चन्द्रमा के रसों को ग्रहण करती रहती है। साधक चन्द्रमा की कान्ति पर दृष्टिपात करते हुए यह जान लेता है कि चन्द्रमा की कान्ति में इस प्रकार का रस आ रहा है। रस दूषित भी होता है और पवित्रत्व भी होता है तो पवित्रता को अपने में ग्रहण करना है। मेरे प्यारे! रसो अमृतम्, वह तो षट रस हैं उनमें मधुपन भी है और देखो, उसी में मधु खट्टम ब्रहे कृत: ब्रह्मे अमृतम कसैला देवा:, मानो इस प्रकार के रसों का उसमें प्रवाह रमण करता रहता है। वह रस अपने में जल में प्राप्त होता है और चन्द्रमा की कान्ति में प्राप्त होता रहता है। वही रस सूर्य की आभा में, ऊर्जा में प्राप्त होता रहता है जब साधक उसे अपने में ग्रहण करता है तो वह रसों में रसित होने लगता है। वायुमंडल में गमन करने वाली वायु जब परमाणुओं को ले करके जल पर चलती है तो वह साधक रसना से जान लेता है कि इसमें देखो, शीतल परमाणु हैं और वे परमाणु इस प्रकार के हैं। वायुमंडल जब अग्नि को लेकर गमन करता है तो उसमें उष्णता का भान होता है। उष्ण परमाणु जब जल के परमाणु से, रसना के परमाणुओं का सम्मिलन करते हैं तो उन परमाणुओं का मिश्रण हो करके हृदय में प्रतिष्ठित हो जाता है।

स्पर्शेन्द्रिय-त्वचा

विचार आता रहता है बेटा! कि प्रत्येक इन्द्रिय का विषय है। जैसे त्वचा में वायु का स्पर्श होता है और जैसे माता अपने बाल्य से प्रीति कर रही है और प्रीति करते बालक मग्न हो रहा है।वह अपनी इन्द्रियों से देखो, अंगुष्टिमात्र से बालक को शिक्षा दे रही है और बालक उस शिक्षा को जान रहा है, वह केवल स्पर्श मात्र से ज्ञान में प्रविष्ट हो रहा है। वह त्वचा का

अपना अमूल्य विषय है वह जब तक प्रीति करता है, वह प्रीति में मग्न रहता है और जब उसे रजोगुण (क्रोध) छा जाता है तो क्रोध को जान करके देखो, बालक अपने में क्षोभातुर हो जाता है। इसी प्रकार यह सर्वत्र त्वचा का अपने में समन्वय है। त्वचा का जो देवता है, वह वायु कहलाया गया है और वायु को ले करके त्वचा सर्वत्र ब्रह्मांड की प्रतिभा को जानने लगता है।

बेटा! मुझे बहुत सा काल स्मरण है। पूज्यपाद गुरुदेव जब अध्ययन कराते तो एक पंक्ति में ब्रह्मचारी विद्यमान होते और वह त्वचा के विषय का, वायु देवता का हमें भान कराते कि वायु में सर्वगुण विद्यमान रहते हैं। यह वायु प्राण देता है। यह प्राण को अपान में प्रवेश कराता है। यह जब जल के परमाणुओं को लेता है तो वायु में शीतलता की, प्राण की प्रतिभा होती है और जब वायु में अग्नि के परमाणु होते हैं तो इसके ऊपर व्यान प्राण की प्रतिभा होती है। बेटा! आज मैं इस सम्बन्ध में तुम्हें विशेषता में नहीं ले जाऊंगा, केवल विचार यह देना है कि हम अपने जीवन को कैसे महान बना सकते हैं? ऋषि कहते हैं कि यागाम् भूतम् ब्रह्मा: देवम्, हमारे आन्तरिक याग के समन्वय में इन सब पंचीकरण को लेकर के साकल्य बनाना चाहिए और इसी में हमारे में मधुपन रहे, इसी में पौष्टिकता रहे और इसी में रसिता रहे क्योंकि सर्वत्र गुण इसमें विद्यमान होते हैं और यह रोग नाशक कहलाया जाता है। मुनिवरो! इनका साकल्य बना करके हृदय रूपी यज्ञशाला में प्राणाय स्वाहा:, अपानाय स्वाहा:, व्यानाय स्वाहा:, समानाय स्वाहा:, उदानाय स्वाहा: कह करके हूत करते हैं क्योंकि यह प्राण ही तो भक्षण करने वाला है, यह प्राण ही तो उद्‌गावृति के उत्पन्न करने वाला है।

बेटा! वेद का ऋषि कहता है कि हे यज्ञदत्त ब्रह्मचारी! यदि तुम्हें याग करना है तो हृदय को स्वच्छ बनाओ। **तुम हृदय में इन्द्रियों के साकल्य को ले करके याग करो** जिससे तुम योग क्षेत्र में प्रवेश करने की योग्यता

को प्राप्त कर जाओ। इस ब्रह्मांड को इन इन्द्रियों से मापा जाता है क्योंकि नेत्रो से अग्नि को, श्रोत्रों से अन्तरिक्ष को, और घ्राण से पृथ्वी के गर्भ को और रसम् ब्रह्मा: जल को रसों से दृष्टिपात किया जाता है, इसका नाना लोक-लोकान्तरों से समन्वय होता है। त्वचा का देवता विस्तृत होने वाला वायु है जो नाना प्रकार से मानव को ऊर्ध्वा में गमन कराता है। इस प्रकार का साकल्य जब तुम बनाना जान जाओगे तो हे ब्रह्मचारियो! तुम्हारा जीवन ऊर्ध्वा में प्राप्त हो जाएगा। देखो, यह कृत: ब्रह्मा: वरुणम वेतसयकृतम्, कर्मेन्द्रियों को ज्ञानेन्द्रियों में समावष्टि करो और ज्ञान इन्द्रियों को प्राण में समाहित करो। बेटा! पंच प्राण–प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान कहलाते हैं और पांच उपप्राण नाग, देवदत्त, धनंजय, कुरू और कृकल इनको समाहित करने वाला महान योगी कहलाते आन्तरिक जगत में प्रवेश कर जाता है।

मन

आन्तरिक जगत से मन, बुद्धि, चित और अहंकार होता कहलाते हैं, जिनके कारण यजमान अपने में याग करता है और याज्ञिक बनता है और अपने को सौभाग्यशाली स्वीकार करता है। मेरे पुत्रो! यह मन सर्वत्र जगत में स्वामित्व की प्रतिभा में रत्त रहता है। वेद मन्त्र कहता है कि महा वरुणम महा देवतम् चितम् देवम् मन:, एक मन है जो मानव के चित्त में गमन करता रहता है, एक मन है जो ब्रह्मांड में गमन करता है और जिसका परमात्मा से समन्वय रहता है। मेरे पुत्रो! एक सार्वभौम मन है, एक मन विशेष कहलाता है जो आत्मा के सन्निधान से गमन करता है, जो आत्मा के प्रकाश में गमन करता रहता है। परमात्मा के प्रकाश में मनस्तव की प्रतिभा चित्त में रत्त हो जाती है।

मेरे पुत्रो! देखो, मैं तुम्हें गम्भीरता में ले जा रहा हूं। विचार आता रहता है कि परमात्मा का सन्निधान मात्र सर्वत्र प्रकृति को गतिवान बनाता

है। मानव के मन से परमात्मा का सन्निधान मात्र मानवत्व को क्रियाशील बनाता रहता है, प्रत्येक इन्द्रिय उसकी क्रिया में प्रविष्ट हो जाती है। जब वेद मन्त्र के ऊपर चिन्तन किया जाता है तो विचार में केवल एक ही वाक्य आता है कि एक सार्वभौम मन है जो वाह्य चित्त की प्रतिभा में रत्त रहता है। एक परमात्मा चित्त है, जिसमें प्रकृति के सर्वत्र मानव विद्यमान रहते हैं और एक विशेष चित्त में हमारा मनस्तव रहता है, जो विभाजन का कार्य करता है। यह माता है, वह पिता है, यह महापिता है, यह पत्नी है, यह पुत्री है, पुत्र है, पुत्रवधू है, यह जो विभाजन क्रिया चल रही है, यह सब मन के द्वारा है। पृथ्वी नाना प्रकार के वृक्ष स्थावर सृष्टि के रूप में विद्यमान है। हमें उन्हीं से रसों का आस्वादन हो रहा है कहीं मधुपन है, कहीं षट् रस है, कहीं कड़वा कसैला नाना प्रकार का विभाजन हो रहा है। परमात्मा के सन्निधान मात्र से चित्त मंडल में जो विश्वभान मन है, वह क्रिया में रत्त हो रहा है और उसमें विभाजन क्रिया चल रही है।

बेटा! परमात्मा कितना महिमावादी है कि उसकी एक क्रिया में दूसरी क्रिया रत्त हो रही है। वह उसमें नाना प्रकार के रसों का विभाजन कर रहा है। विभाजन क्रिया चल रही है, रसों का विभाजन हो रहा है, वह रत्त हो रहा है। ऐसे ही मनुष्य के, साधक के शरीर में यह मन कहीं ज्ञान में चला जाता है, कहीं अज्ञान में चला जाता है, कहीं रजोगुण में परिणित हो जाता है, यह सूक्ष्म विभक्त क्रिया प्रारम्भ हो रही है। साधकजनों ने कहा कि सब इन्द्रियों का साकल्य बना करके हृदय में समावेश कर लो और जब वाह्य चित्त को हृदय में समावेश करके गति करोगे तो परमात्मा के चित्तमंडल को जान करके तुम अपने में रत्त हो करके, सिमट करके उस परमात्मा को प्राप्त कर सकोगे।

मेरे पुत्रो! आत्मा के सम्बन्ध में बहुत सी चर्चाएं हैं क्योंकि आत्मा के प्रकाश में यह मन क्रिया कर रहा है। परमपिता परमात्मा जो सर्वभौम है, उसके प्रकाश में, विश्वभान मन क्रिया कर रहा है परन्तु वाह्य जगत में जो विभक्त क्रिया हैं, वह विश्वभान मन के द्वारा हैं। इस शरीर में विभक्त क्रिया हो रही है, नाना प्रकार के विचारों का विभाजन हो रहा है या कटुम्ब का विभाजन हो रहा है। विशेष मन केवल आत्मा के प्रकाश में कार्य करता है, यही जानकर तुम्हें संसार को दृष्टिपात करना है। स्वप्न में मन से द्रव्य से द्रव्यहीन बन जाता है और द्रव्यहीन द्रव्यपति बन जाता है। इसी प्रकार जलाशय, समुद्रों को अपने अन्तःकरण में दृष्टिपात करता रहता है। मन केवल आत्मा के प्रकाश में कार्य करता है।

बेटा! चित्त के मंडल और वेद मन्त्रों को हमें चिन्तन में लाते हुए यह विचारना चाहिए कि हमारा वेद मन्त्र हमें साधक बनने के लिए प्रेरणा देता है, हमें ऊंचे उद्गार देता है, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने ब्रह्मचारियों से कहा कि यदि तुझे यजमान बनना है, यज्ञशाला में प्रविष्ट होना है तो तू अपने हृदय रूपी यज्ञवेदी को पवित्र बना और तू अमृतम् ब्रह्मा साधनाम भूतम ब्रहे। ऋषि-मुनि प्रायः इसी साधना को ले करके गान गाते रहे हैं और आत्मा के सन्निधान मात्र से प्रकाश को प्रकाशित करते रहे हैं। आज का विचार-विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा के जगत को विचारने वाले बनें क्योंकि जितना भी यह जड़ और चेतन जगत है, उस सर्वत्र जगत का नियन्ता वह परमपिता परमात्मा है, जो सर्वत्र विद्यमान है, हमें उसकी उपासना करनी है। यह है बेटा! आज का वाक्, अब मुझे समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

अमृतसर
६-१-९२

सूक्ष्म शरीर के सत्तरह होता

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है और उसका ज्ञान और विज्ञान भी अनन्तमयी माना गया है। सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए हैं परन्तु कोई भी विज्ञानवेत्ता ऐसा नहीं हुआ जो उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके क्योंकि वे सीमा से रहित हैं और वे सीमा में आने वाले नहीं हैं। उसका ज्ञान-विज्ञान महान और पवित्र माना गया है। प्रत्येक मानव सृष्टि के प्रारम्भ से इसके ऊपर अन्वेषण करता रहा है और अन्वेषण करता हुआ दूरी चला गया, उसके निकट चला गया परन्तु उसके पश्चात वह मौन हो गया। वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है और सर्वज्ञ है। उसके जितने भी क्रियाकलाप हैं, वे भी महान और अनन्तमयी माने गए हैं। इसीलिए वेद के ऋषियों ने एक-एक वेद मंत्र के ऊपर बड़ा अन्वेषण किया और प्रत्येक रूप में उसको जानने के लिये तत्पर रहे। वह इतना अनन्तमयी है कि उसकी आभा में परिणित होना प्राय: मानवीयता और ऋषित्वता कहलाती है।

वह परमपिता परमात्मा इतना अनन्त है कि एक-एक वेद मंत्र में मानव सर्वत्र ब्रह्मांड की कल्पना करता रहा है। अंत में वह मंत्रम ब्रव्हा कृत्ताम

देवा:, उसी वेद मंत्र का अध्ययन करते-करते दूरी चला जाता है। इसीलिये हम उस परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसके अनन्तमयी ज्ञान और विज्ञान में सदैव रत्त रहें और प्रत्येक मानव को रहना भी चाहिये क्योंकि इससे अन्तःकरण का शुद्धिकरण होता है और मानवीयता में नम्रता आती है। प्रत्येक मानव के हृदय में यह आकांक्षा बनी रहती है कि मैं उस परमपिता परमात्मा को जानूं। परमपिता परमात्मा को जानने के लिये मानव में नाना प्रकार की प्रतिभाषिता रहनी चाहिए। परमपिता परमात्मा नम्र है इसीलिये मानव को भी नम्र रहना चाहिये। परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है इसीलिये मानव को भी अनन्तमयी विचार-विनिमय करने चाहियें। परमपिता परमात्मा अकाय है इसीलिये **काया के ऊपर मानव को अभिमानित नहीं होना चाहिये।** वह परमपिता परमात्मा सृष्टि का रचियता है इसलिये मानव के अपने मस्तिष्क में कोई न कोई रचना का स्वरूप स्रोत रहना चाहिये। परमपिता परमात्मा नम्रता की आभा में रत्त रहने वाला है और विज्ञानवेत्ता है। उसका अनन्तमयी जो विज्ञान है, वह प्रकृति की एक-एक तरंग में निहित रहता है इसीलिये हमें भी उन तरंगों को जानना चाहिए। हम परमपिता परमात्मा के समीप जा सकते हैं, जब हमारे में इस प्रकार के गुणाध्यानम हो जाते हैं।

आओ मेरे प्यारे! मैं तुम्हें विशेष क्षेत्रों में नहीं ले जा रहा हूं केवल यह कि परमपिता परमात्मा नम्र है। वेद भी एक ही शब्द कहता है 'नम्र ब्रव्हा' यह कि **नम्रता के क्षेत्र में ही मानव को रमण करना चाहिए**। हमारा वेद का मंत्र जहां मानव को परमपिता परमात्मा और मानवीयता में मिलान को ले जाता है वहां ऋषि-मुनियों ने एकांत स्थलों पर विद्यमान हो करके आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान,दोनों का समन्वय किया है। आध्यात्मिक विज्ञान इस मानवीयता से सम्बन्धित है, आत्मा से सम्बन्धित रहता है। मानव को प्रत्येक दशा में यह जानना चाहिए कि जितना भी दृष्टिपात आने वाला जगत है, उस जगत में कितनी तरंगें हैं। उनका साकार रूप बना करके, मानो उसको नाना

प्रकार की साकारता में ला करके ही हम स्वर्गस्यम व्रत्य प्रव्हा, हम स्वर्ग को प्राप्त हो सकते हैं। जब भौतिकवाद, प्रकृतिवाद सम्पन्न हो जाता है, जब उसको जान लिया जाता है तो उसके पश्चात आध्यात्मिकवाद का प्रारम्भ हो जाता है।

भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान दोनों में अन्तर्द्वन्द्व माने गए हैं परन्तु हमारे ऋषि-मुनियों ने दोनों प्रकार के विज्ञान को मानवीयता में रमण करने वाली प्रतिभा माना है। परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान दोनों प्रकार के विज्ञान में निहित रहता है। परमपिता परमात्मा के बिखरे हुए विज्ञान को एक मानव एकत्रित कर लेता है तो वह विज्ञानवेत्ता बन जाता है परन्तु जब नाना प्रकार के भौतिक विज्ञान को जान करके उसे वह इन्द्रियों के ऊपर दमन कर लेता है, उसके पश्चात उसका आध्यात्मिक विज्ञान प्रारम्भता को प्राप्त होता है। बेटा! यह बड़ा विचित्र आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान है। प्रत्येक वेद मंत्र में दोनों प्रकार का ज्ञान और विज्ञान है। उसमें व्य वहारिकता है, उसमें गम्भीरता है। विचारने से प्रतीत होता है कि हमारे जीवन का उस परमपिता परमात्मा से समन्वय रहना चाहिए जिससे नम्रता, ओजस्वता और पवित्रता की तरंगें हमारे अन्तःकरण में प्रवेश हो जायें।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूं जिस क्षेत्र की हम अपनी चर्चायें प्रारम्भ कर रहे थे। आज मैं पुनः से तुम्हें याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के उसी विद्यालय में ले जाना चाहता हूं, जिस विद्यालय में ब्रह्मचारी और आचार्यजन दोनों प्रातःकालीन नैतिकता में रमण करते हुए वेदों का अध्ययन करते, न्यौदा में मंत्रों का उद्‌गीत गाते रहे हैं। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है बेटा! जहां प्रातःकालीन आचार्यजन ने जब शिक्षा प्रारम्भ की और कहा कि न्यौदा में मंत्रों का उद्‌गीत गाना और प्राण सखा को जानना है। उन्होंने हमारे शारीरिक भौतिक पिंड और भौतिक ब्रह्मांड, दोनों को एक

दूसरे में विचर कृतम् ब्रव्हा, दोनों का समावेश करने के लिए प्रयत्न किया। उन्होंने कहा कि भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान, दोनों एक दूसरे से कटिबद्ध रहते हैं, दोनों को एक दूसरे की जानकारी में लाना ही मानवींयता कहलाती है। उन्होंने भौतिक विज्ञान को पिंड से और पिंड को भौतिक विज्ञान से, आध्यात्मिकवाद को भौतिकवाद से और भौतिकवाद को आध्यात्मिकवाद से समन्वय करने का प्रयास किया।

मेरे पुत्रो! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा-तपो वर्णस्सुतम ब्रव्हा कि प्रत्येक मानव को तपस्वी बनना चाहिये क्योंकि तप से ही प्राणों को जाना जाता है। प्राण को अपान से और अपान को समान में और समान को उदान में प्रवेश कराते हुए वह अपने में अपनेपन की धारा को जानने लगता है। हे ब्रह्मचारियो! जब यजमान याग करने के लिये तत्पर होता है तो वह भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों प्रकार का याग प्रारम्भ करता है। दोनों प्रकार की विचारधारा उसके मस्तिष्क में रमण करती रहती है और मन का उसमें वृत्त होता रहता है। संभव ब्रव्हे संभव रुद्रो तपस प्रव्हाम ब्रह्म सुतम दिव्य लोका:, ऋषि ने वेद मंत्र में उद्गीत गाते हुए यह कहा तो ब्रह्मचारी यज्ञदत्त ने कहा कि प्रभु! आपने संक्षेप में चौबिस होताओं के सम्बन्ध में हमें वर्णन कराया था, उनका आपने आध्यात्मिक रूप में समन्वय किया, अब हम यह जानना चाहते हैं कि यजमान जब यज्ञ करना चाहता है तो उसके द्वारा कितने होता होने चाहियें?

स्थूल और सूक्ष्म शरीर

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि हे ब्रह्मचारियो! तुम्हें मैंने कई काल में वेद का उद्गीत गाते हुए कहा है कि यजमान जब यज्ञ करना चाहता है तो चौबिस होता होने चाहियें। मैंने तुम्हें चौबिस होताओं का वर्णन कराया

है और 'मानम ब्रव्हे क्रतम' देखो, सत्तरह होता जिनके द्वारा यज्ञमान याग करता है, कौन से होते हैं? बेटा! दस प्राण होते हैं और पंच प्रकृति की तन्मात्रायें होती हैं और मन और बुद्धि,यह दोनों हो करके सत्तरह होता कहलाते हैं जिनके द्वारा यजमान याग करता है। वेद के ऋषि ने वर्णन करते हुए कहा कि हमारा यह जो **स्थूल शरीर** है, यह **चौबिस होताओं का कहलाता है**। इसमें चार होता अन्तःकरणीय कहलाते हैं परन्तु ये **सत्तरह होता सूक्ष्म शरीर के होता कहलाते हैं**, उसी सूक्ष्म शरीर को हमें जानना चाहिए। दस प्राणों के आश्रित हो करके जब योगी अपने में साधना करता है तो सूक्ष्म शरीर को जानता है। प्राण,अपान, उदान, समान और व्यान, नाग, देवदत्त, धनंजय, कुरु और कृकल यह दस प्राण कहलाते हैं। इनमें पांच प्राण और पांच उप-प्राण हैं। इन सब प्राणों को जानना चाहिये।

प्राणविद्या

मेरे पुत्रो! जब साधना के क्षेत्र में साधक प्रवेश करता है तो प्राण का क्षेत्र नाभि तक रहता है। यह अरबों-खरबों परमाणु आन्तरिक जगत से वाह्य जगत में प्रवेश कराता रहता है। यह प्राण ब्रह्मांड में भी आदान-प्रदान करता रहता है। कहीं अग्नि का मिलान आपो से, जल से होता है, कहीं जल का मिलान गुरुत्व परमाणु से होता है और कहीं इनका मिलान समान से होता है और समान से ही अपने में अभ्युदय होता है। मुनिवरो! परम्परागतों से ही यह विद्या मानवीय मस्तिष्कों में निहित रही है और उनके क्रियाकलापों में रही है। मेरी पुत्रियां जब विद्यालयों में अध्ययन करतीं तो इस विद्या को आचार्य सदैव परिणित कराते रहते। मुझे स्मरण आता रहता है कि गार्गी अपने आचार्यों के समीप विद्यमान हो करके वेद पठन-पाठन के क्रियाकलापों में सदैव तत्पर रही है।

बेटा! मुझे स्मरण है, मैत्रेय ने एक समय प्रात:कालीन आचार्य से यह कहा था कि हे प्रभु! आप प्राणों का बारम्बार वर्णन करते रहते हैं, मैं इन प्राणों को कैसे जानकारी में ला सकती हूं। उन्होंने कहा कि इन प्राणों को जानो, इनका नाभी तक क्षेत्र रहता है और अपान के क्षेत्र में अभ्यम वृती हो जाती है तो उस समय व्यान का क्षेत्र रहता है। व्यान के क्षेत्र से समान का क्षेत्र सम्मब्रहे, इन तीनों प्राणों का सरंक्षण बनता है और उदान प्राण वह कहलाता है जहां व्रस्सम ब्रव्ही कृदस्सुताह वर्णस्सुते:। वेद का वाक्य कहता है कि व्यान से सर्वत्र प्राणों का समन्वय हो करके, वाह्य चित्त और आन्तरिक चित्त, दोनों का जब समन्वय हो जाता है तो साधक का प्राणों में यातायात बन जाता है। वह प्राण को अपान में ले जाता है, अपान को व्यान में ले जाता है और व्यान को समान में ले जाता है और समान को उदान में ले करके चित्त का मंडल साक्षात्कार दृष्टिपात आने लगता है। मेरी प्यारी मातायें इस विद्या में बड़ी निपूर्ण रही हैं।

एक समय वह काल था जब साधना के क्षेत्र में मेरी पुत्रियां विद्यालयों में अध्ययन करती तो आचार्य उन्हें क्रियात्मक वार्ता कराते रहते। मेरे पुत्रो! मैत्रेय ने एक समय महर्षि श्वेकुत ऋषि से यह वाक्य कहा कि हे भगवन्! आप मुझे ऐसी कोई विद्या, ऐसे प्राणों की वृत्ति का वर्णन कराइये जिससे मैं गर्भ में रहने वाले शिशु से वार्ता प्रकट कर सकूं। उन्होंने कहा बहुत प्रिय और उन्होंने मैत्रेय को शिक्षा देना प्रारम्भ किया। उन्होंने कहा कि पुत्री! तुम प्राण को अपान में ले जाओ। उन्होंने प्राणायाम किया और प्राण को अपान में ले गई और फिर कहा अपान के क्षेत्र में प्रवेश हो करके तुम व्यान में प्रवेश हो जाओ और व्यान के क्षेत्र से उपराम हो करके जब समान में पहुंचो तो उदान के क्षेत्र में प्रवेश करो। जब इन पांचों प्राणों का अपना यातायात बन जाएगा तो जो तुम्हारे गर्भस्थल में जो शिशु शरीर को धारण कर रहा

है, उस आत्मा से तुम वार्ता प्रकट कर सकती हो और उसकी जो तरंगें हैं वे तुम्हारी उन तरंगों को तरंगित करेंगी।

मेरे पुत्रो! मेरी पुत्री ने वैसा ही किया और वे गर्भ की आत्मा से वार्ता प्रकट करती रहीं। वह आत्मा उसका उत्तर भी देता रहा है। मुझे साधकों की बहुत सी वार्ताएं स्मरण आती रही हैं। मुनिवरो! वेद मंत्र का गीत गाते हुए माता मल्दालसा ब्रह्म का उपदेश देना गर्भ में ही प्रारम्भ करती थी, प्राण विद्या को उसमें देना प्रारम्भ करती थी। मेरे पुत्रो! जब दोनों का समन्वय हो जाता है तो उस बाल्य की स्मरण शक्ति और उसके ब्रह्मरंध्र का समन्वय आत्मा से, आत्मा का समन्वय ही परमपिता परमात्मा के अमूल्य क्षेत्र से हो जाता है। वह ब्रह्मज्ञान क्या है? ब्रह्मज्ञान उसे कहते हैं जो वाह्य जगत और आन्तरिक जगत, दोनों को जान सके ब्रह्म में लीन हो जाए, भौतिकवाद के क्षेत्र से उपराम हो करके वह ब्रह्म की आभा में रत्त हो जाए।

उप प्राण

उन्होंने कहा कि हे ब्रह्मचारी! यह प्राणों का क्षेत्र बड़ा विचित्र रहा है। जैसे नाग प्राण है। जब मानव को क्रोध आता है तो नाग प्राण का ऊर्ध्वा मुख हो जाता है। जब नाग प्राण का ऊर्ध्वा मुख होता है तो शरीर में जो अमृतमयी क्षेत्र है, अमृत है, उसे नष्ट करने लगता है। क्रोधाग्नि में उसका ऊर्ध्वा मुख हो करके वह विष को त्यागने लगता है, अमृत को निगल जाता है। इसलिये आचार्यो ने साधकों को कहा कि **तुम अपने को क्रोध की अग्नि में न ले जाओ।** मन का समन्वय उस नाग प्राण से होता है। नाग प्राण का द्वितीय समन्वय देवदत्त से होता है। देवाम् भूः वर्णम ब्रह्माः, जब नाग प्राण का दमन कर दिया जाता है तो देवत्व प्रवृत हो जाता है, वह संसार को देवता की दृष्टि से दृष्टिपात करने लगता है क्योंकि अपने में देवत्व बन गया है।

देखो धनंजयम् ब्रव्हा कृतम धनंजय संसार को कहते हैं। धनंजय और प्राण अपान के ऊपर उसका समन्वय हो जाता है तो वह इसको जानने लगता है। मेरे पुत्रो! इसी प्रकार प्राणम् ब्रह्मा: व्रत्तम देव:, देवत्वाम् भू: वर्णम् ब्रव्हे, दस प्राणों का एक दूसरे से समन्वय होता रहता है।

मेरे पुत्रो! मैं प्राण विद्या में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूं। यह प्राण विद्या एक बड़ी विचित्र विद्या है। जब इस विद्या के ऊपर अध्ययन करके अपने जीवन को क्रियात्मक बनाते हैं तो आनन्द और सूक्ष्म शरीर को जानने की प्रवृति हमारे अंत:करण में, वृत्तियों में रत्त हो जाती। इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं केवल यह कि दस प्राण हैं और दस प्राणों की वृत्तियों में मानव को अपने को प्रविष्ट करना चाहिये।

तन्मात्रायें

आओ मेरे प्यारे! पंच तन्मात्राओं में गुरुत्व है, तरलतव है, तेजोमयी है, गति है और अवृतम ब्रह्मा: देखो, वहां स्थिर रहना है, जहां परमाणु गमन करते रहते हैं, उनकी तरंगों का नाम पंच तन्मात्रा मानी गई हैं। एक दूसरे की तरंगों में रमण करते हुए ब्रह्मांड की रचना होती है। जब प्रभु ने सृष्टि का सृजन किया तो एक दूसरे का एक दूसरे में समावेश करने से यह संसार बन गया। एक दूसरे परमाणु में परमाणु की वृत्तियां रत्त हो गईं। जैसे गुरुत्व तरलतव में जब रत्त होता है तो पिंड बन जाता है और उसी पिंड में जब तेज का समावेश हो जाता है तो वायु उसमें गति देने लगती है और जब गतियां आने लगती हैं तो जहां वह गति करता है,वही तो अन्तरिक्ष कहलाता है। उस अन्तरिक्ष में वह गतिवान् रहता है। विचारने का अभिप्राय यह है कि पिंड बना और इस पिंड में गुरुत्व, तरलतव और तेजोमयी आभा प्रविष्ट हो गयी तो वायु ने गति देना प्रारम्भ कर दिया। प्रत्येक पिंड में गति भी हो रही है,

उसी में तेज है, उसी में गुरुत्व और उसी में तरलतव विद्यमान है तो वही अन्तरिक्ष है जहां वह गति कर रहा है, अपने में गतिवान हो रहा है। गतिवान होने से यह संसार मानो, इस सृष्टि का स्वरूप बन जाता है।

मेरे पुत्रो! इसी प्रकार यह मानव का पिंड बना है, अमृताम भूः वर्णम और इन आभाओं को ले करके सूक्ष्म शरीर बनता है। सूक्ष्म शरीर में मन और बुद्धि हैं। चित्त में जितने संस्कार हैं, उन संस्कारों का समूह इन दोनों में विद्यमान रहता है। यही तो चित्त का क्षेत्र मन, मनवृत कहलाता है और यह चित्त का मंडल है। यह प्रकृति का सूक्ष्मतम तन्तु है और सूक्ष्मतम तन्तु होने से ही देखो यहां मनम् ब्रहे ओ सूक्ष्म ब्रव्हा। देखो, बुद्धि और मन दोनों का जब एक दूसरे में समावेश हो जाता है तो यह सूक्ष्मतम शरीर कहलाता है।

विचार आता रहता है बेटा! वेद का ऋषि कहता है कि यजमान जब याग करता है तो सत्तरह होताओं के द्वारा याग करता है। सत्तरह होता वह कहलाते हैं जो यज्ञशाला में हूत कर रहे हैं और वह अग्नि, तेजोमयी को अपने में जान रहे हैं और विचार रहे हैं। देखो, अपने में इन्हें जानना चाहिए। जब सूक्ष्म शरीर को प्रत्येक साधक अपने में जान लेता है तो प्राणों की सर्वत्रता को जान करके वह वाह्य जगत में इस ब्रह्मांड को दृष्टिपात करता है और ब्रह्मांड का साक्षात्कार करता हुआ पिंड में समावेश हो जाता है। विचार आता है कि हे मानव! तू सूक्ष्म शरीर को जानने की इच्छा कर। हे मानव! यदि तू साधक बनना चाहता है, साधना में रमण करना चाहता है तो सूक्ष्म शरीर को अपने में जानने का प्रयास कर जिससे तेरा कल्याण हो जाए और तेरा अभ्युदय हो जाए, तू प्रकाश में चला जाए, अंधकार को त्याग करके तेरी महानता प्रकाश में रमण करने लगे।

मेरे प्यारे! उन्होंने कहा कि यह जो सत्तरह होता और वह जो चौबिस अन्तःकरण की वृत्तियां हैं, जब वे व्रहा कृतम देवत्वाम, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और मनस्तव प्रवाह व्रतम, इसमें इन्द्रियां समाप्त हो जाती हैं, स्थूल इन्द्रियों की गति होना शान्त हो जाता है तो सूक्ष्म शरीर में पंचम वृत्ति होने से और चित्त का मंडल अवृत होने से वह मन में समावेश होता है। इस स्थूल शरीर को जानने के लिये हमें चौबिस होताओं की आवश्यकता है। ये हूत करने वाले हैं। यह शरीर एक प्रकार की यज्ञशाला है और यज्ञशाला में चौबिस होताओं के द्वारा यजमान याग करता है।

इन्द्रियों पर संयम

ब्रह्मचारी अब यह दूसरा प्रश्न करता है कि प्रभु! यजमान याग करना चाहता है कितने होता होने चाहिएं? उन्होंने कहा 'सत्रम् ब्रह्म असुतम ऐको दसोनम ब्रव्हा', उन्होंने एकोदश का वर्णन किया। उन्होंने कहा दस इन्द्रियां और ग्यारहवां मन है। इनको एकाग्र करके वह स्थूल के रूप को ले करके गमन करता है। मानव यह विचारता रहता है कि मेरी ये दस इन्द्रियां और ग्यारहवां मन, संयम में रहना चाहिए। यह दसों इन्द्रियां एक प्रकार के अश्व हैं और इनके ऊपर मन सारथी बना हुआ है। जब यह सारथी पवित्रता में रत्त रहता है, देवत्व को धारण कर लेता है उस समय इन्द्रियां संयम में हो जाती हैं। इन्द्रियां जब संयम में होती हैं और मन सारथी बन करके प्रत्येक इन्द्रियों के साथ जब याग करता है तो याग इन्द्रियों में समाहित हो जाता है। प्रत्येक इन्द्रियों में याग समाहित हो जानने से वह याग सम्पन्नता को प्राप्त होता है और वह याग अपने में महान कहलाता है। जितने संसार के क्रियाकलाप हैं वे पांच ज्ञानेन्द्रियों में समाहित रहते हैं। जितनी संसार की वाह्य जगत की क्रिया हैं वे पंचम कर्म इन्द्रियों से सम्बन्धित रहती हैं। इसी प्रकार बेटा! शरीर रूपी यज्ञशाला को जान करके अपने में अपनेपन की प्रतिभा में ले जाएं।

मेरे प्यारे! ऋषि-मुनि इन वाक्यों के ऊपर विचार-विनिमय करते रहे हैं, देवत्व को जानते रहे हैं। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि हे ब्रह्मचारियो! तुमने यह जान लिया होगा कि मैं तपस्वी बनना चाहता हूं। ब्रह्मचारी यज्ञदत्त ने कहा कि प्रभु! आप तो स्वत: तपस्वी हैं, आपके ज्ञान में तो कोई सूक्ष्मता नहीं है। महर्षि बोले कि अमृताम ब्रव्हे क्रतव देवत्वाम, वेद का मंत्र कहता है कि मानव की सहस्त्रों वर्षों की अवस्था हो जाए परन्तु तो भी सृष्टि को जान नहीं पायेगा क्योंकि इतना अनन्तमयी यह जगत है। तपों में अपने को ले जाना है और मैं तप को अभी जानता भी नहीं हूं कि तप कहते किसे हैं? उन्होंने कहा कि जानने का नाम तप है। प्रभु! जानने का नाम तो तप नहीं होता, जाना कैसे जाता है? जब यज्ञदत्त ने यह कहा तो याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि देखो, **जान करके उसको क्रिया में लाने का नाम तप है**। उन्होंने कहा कि प्रभु! तप कहां से प्रारम्भ होता है? उन्होंने कहा, तप का प्रारम्भ मानव के आहार और व्यवहार से होता है। यदि आहार-व्यवहार दोनों पवित्र हैं तो वह तपस्याम्। क्योंकि मन तब तक तप में नहीं जायेगा तब तक आहार-व्यवहार पवित्र नहीं होगा और वह मन इन्द्रियों को संयम में नहीं कर सकता। जब तक इन्द्रियां संयम में नहीं होंगी तब तक हम सूक्ष्म शरीर को नहीं जान पायेंगे और जब तक सूक्ष्म शरीर को नहीं जानेंगे तो कारण शरीर को भी हम नहीं जान सकते। जब कारण शरीर को नहीं जानेंगे तो आनन्द और मोक्ष की प्राप्ति हमें नहीं हो सकेगी।

मेरे प्यारे! ऋषि ने जब इस प्रकार वर्णन किया तो ब्रह्मचारी अपने में आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने कहा प्रभु! अन्नाम भू: वर्णनम प्रव्हे तपाहा कि क्या यह अन्न ही तप का मूल है। उन्होंने कहा कि अन्न, प्रारम्भ के तप का मूल कहलाता है क्योंकि तप के मूल में जब पहुंचोगे तो तुम यह विचारोगे कि हमारा आहार कैसा हो? मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! याज्ञवल्क्य

मुनि महाराज ने कहा था कि जब हम आचार्यों के आश्रम में अध्ययन करते थे तो आचार्यजन ने एक समय छः माह का अनुष्ठान किया और छः माह के अनुष्ठान में एक-एक माह एक-एक रूप में उन्होंने व्यतीत किया, उसमें रमण करने लगे। उन्होंने एक समय वायु का सेवन किया। वायु वेग में रमण कर रही है तो वायु में यह सब तत्व विद्यमान होते हैं जैसे जल है, अग्नि है और गुरुत्व यह पृथ्वी के रूप में है। वह जब प्राणायाम करता है गति में रमण करता हुआ अपने प्राण को अपान में मिलाना प्रारम्भ करता है तो सत्, जो प्रकृति के मंडल में पोषक तत्व है, वह उसे ग्रहण करने लगता है। उस पर किसी का अधिकार नहीं होता और जब किसी का अधिकार नहीं होता तो उसका आन्तरिक जगत निर्द्वन्द्व रहता है। निर्द्वन्द्व रहने से उसके मन की प्रवृत्ति निर्द्वन्द्व बन जाती है क्योंकि आत्मा का प्रकाश मन के ऊपर जाता है। मन वास्तव में प्रकृति का तत्व होने से जड़वत है परन्तु जब आत्मा का निष्पक्ष प्रकाश जाता है तो वह मन भी निष्पक्ष हो जाता है, पवित्र हो जाता है। इसीलिये वह देवासुर संघर्ष कहा जाता है।

मेरे प्यारे! मैं तुम्हें बहुत गंभीरतम रहस्यों में ले गया हूं। मैं ले जाना तो चाहता नहीं था परन्तु वेद के मंत्र ही इस प्रकार के हैं। जब वेद का उद्गीत गाया जाता है तो वह गम्भीरता में ले जाता है। वेद के ऋषि ने कहा, तपम् ब्रह्मणा तपम् रुद्रो भागम् ब्रह्मणा तपा: कि प्रत्येक दशा में मानव को तप करना चाहिए और **तपस्वी वह होता है जो आहार और व्यवहार को पवित्र बनाता है।** आहार और व्यवहार के पवित्र होने से प्रवृत्तियों का जन्म होता है। प्रवृत्ति जब सूक्ष्मतम रहस्यों को जानने के लिए तत्पर हो जाती है तो उसका तप सफलता को प्राप्त हो जाता है। विचार-विनिमय यह कि हम परमपिता परमात्मा की महती और उसके ज्ञान और विज्ञान को जानते रहें। यही हमारा लक्ष्य है। इसी को हमें प्राप्त करना चाहिये। आज हमारे यहां वेद का ऋषि

अपनी-अपनी प्रतिभा में मानव को प्रतिष्ठित कर रहा है और वह प्रतिष्ठा में रमण करने वाला ही परमपिता परमात्मा की महती को जानने लगता है, उसके ज्ञान और विज्ञान में रत्त हो जाता है।

आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा वेद मंत्र क्या कह रहा है कि हम ऋषि-मुनियों के विचारों से अपने विचारों को पवित्र बनायें। ऋषि-मुनियों ने कहा है कि वाह्य और आन्तरिक जगत दोनों का ऊंचा बनाना चाहिए। भौतिक याग, अग्नि के मुखारबिन्दु में हूत करने से गृह और हमारा वाह्य जगत पवित्र बनता है। आन्तरिक जगत के लिए हमें साधना में प्रवेश हो जाना चाहिए। साधना में आध्यात्मिकवाद को विचारना चाहिए कि आत्मा का प्रतिबिम्ब मन पर आता है और मन इन्द्रियों को सजातीय बना देता है। जहां मन रहता है वहीं मेरे पुत्रो! स्मरण शक्ति रहती है, जहां मन नहीं रहता वहां इन्द्रियां रहते हुए भी वह संसार को नहीं जान पाता। मेरे प्यारे! देखो, मन और आत्मा दोनों का परस्पर समन्वय रहता है क्योंकि मन प्रकृति का तन्तु है और यह जो आत्मा है, यह प्रकाश है और जब उसके प्रकाश में मन भिन्न-भिन्न प्रकार के क्रियाकलापों में परिणित हो जाता है तो **जैसा जिसका आहार और व्यवहार होता है उसी के अनुसार उसकी प्रवृत्ति बनती है।** उसी क्षेत्र में कोई-कोई साधक आत्मा के प्रकाश का सदुपयोग करता है और कोई ऐसा है जो उस प्रकाश का दुरुपयोग करके, मेरे पुत्रो! यह जो पंच महाभूतों वाला शरीर है, इसे भ्रष्ट कर देता है।

मेरे प्यारे! आज का विचार क्या कि हम परमपिता परमात्मा की महती को जानते रहें। परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान बड़ा अनन्तमयी माना गया है। इसके ऊपर चिन्तन करता-करता मानव अन्त में अन्तर्मुखी हो जाता है, नेति-नेति उद्गीत गाने लगता है। आज का हमारा वेद मंत्र कहता है कि हम परमपिता परमात्मा को नम्रता से जानें और काया का अभिमान न करें।

यह तो संसार की कृतियां कहलाती हैं, हम उस देव की महिमा को जानते रहें। उसका ज्ञान और विज्ञान बड़ा अनन्तमयी है, उस अनन्तमयी में से हम भी कुछ प्राप्त कर लें, ऐसा हमें प्रयत्न करना चाहिए। आज के वाक्य का उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि चौबिस होताओं के द्वारा यजमान जब याग करता है तो उसका याग सफलता को प्राप्त होता है। आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान दोनों में वह सफलता को प्राप्त कर लेता है। वह प्राणों के स्वरूप में रमण कर जाता है। इसलिये प्रत्येक प्राणी अपने में प्राणों का गुणाध्यानम् करते हुए, अग्रणीय बन करके, मानवीयता को धारण करके इस सागर से पार हो जाए। समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चायें कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन।

चंडीगढ़
१२-१-१९९१

यज्ञ के सत्रह होता

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। वह परमपिता परमात्मा विज्ञानवेत्ता है और यह ब्रह्मांड उसकी विज्ञानशाला है। प्रत्येक मानव चाहे वह किसी भी लोक-लोकान्तरों में रमण करने वाला हो, चाहे वह पृथ्वी या किसी अन्य मंडल में वास करने वाला हो, वह परमपिता परमात्मा की विज्ञानशाला में विद्यमान है और विज्ञान अपने में पूर्णता को प्राप्त होता रहा है। हमारे ऋषि-मुनियों की एक बड़ी विचित्र देन यह रही है कि उन्होंने एक-एक वेद मन्त्र के ऊपर चिन्तन किया है और यह कहा कि अमृतम् भू वरुण: सुता:, मानो वह परमपिता परमात्मा वरणीय है और उसको वरण कर लेना चाहिए क्योंकि जो मानव परमात्मा को वरण कर लेता है, उसे वह प्राप्त हो जाता है। इसीलिए हमें परमपिता परमात्मा को वर लेना चाहिए।

मुनिवरो! वेद के मन्त्रों में परमपिता परमात्मा के भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान और विज्ञान का प्राय: वर्णन आता है। जब यजमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान होता है तो वह नाना प्रकार की याचनाएं करता है। भौतिक रूप में वह कहता है कि मेरी प्रत्येक इन्द्रिय इस प्रकार देवत्व में परिणित होने वाली बने जिससे मेरी इन्द्रियों में किसी प्रकार की विकृतियां नहीं आ

पाएं, इसी प्रकार विचारों में मनम्वृतम् मन: व्रहा कृति देवा:, मन में विकृतियां न आ जाएं। भौतिकवाद में यजमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके इस प्रकार प्रार्थी बना रहता है और वेद मन्त्रों के उद्गीत को वह अमृत जान करके पान करता रहता है। जितना भी ज्ञान है वह अमृत कहलाता है। धर्म अमृताम भूत प्रव्ह लोका: जैसे चन्द्रमा से अमृत बह रहा है, वह वसुन्धरा को अमृत दे रहा है। इसी प्रकार हमारा ज्ञान भी हमें अमृतमयी बना रहा है। वेद का मन्त्र यह कहता है कि विचारधारा हृदय गमयम ब्रहे, यह मानवकृति कहलाता है।

आओ मुनिवरो! तुम्हें मैं उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूं जहां याज्ञवल्क्य मुनि महाराज और यज्ञदत्त ब्रह्मचारी का संवाद प्रारम्भ हो रहा था। हमारे यहां आचार्यजन प्रात:कालीन अपने-अपने आश्रमों में अथवा विद्यालयों में विद्या देने से पूर्व नैतिकवाद की अपनी चर्चाएं करते रहे हैं और न्यौदा में वेद मन्त्रों का अध्ययन करते मन्त्रों के भाव को प्रकट करते अपने विचार देते रहे हैं। अपने विचार दे करके ही आचार्य प्रत्येक इन्द्रिय के विषयों को अपने में धारण करते हुए इन्द्रियों का शुद्धिकरण करते रहे हैं। इसी प्रकार आचार्य कहता है कि हे यज्ञदत्त ब्रह्मचारी! तुम याग में प्रवृत हो जाओ।

यज्ञदत्त ने कहा कि प्रभु! आपको कई समय हो गये हैं हमें उपदेश देते हुए कि याग किया जाए। आपने याग में चौबीस होताओं का वर्णन किया है। मेरी माताएं अपनी लोरियों का पान कराती इस प्रकार का उपदेश देती रही हैं और वे यही उच्चारण करने वाली बनी हैं कि इन्द्राम भूत: प्रव्हे लोकाम। हमारे श्रोत्रों में वह कहती हैं कि हे ब्रह्मचारी बाल्य! तुम ब्रह्मवेत्ता बन करके अपने जीवन को ऊर्ध्वा में गमन कराओ। मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है कि माता मल्दालसा का सबसे ज्येष्ठ पुत्र प्रव्हाण था जिसे ब्रह्मज्ञान का भान माता अपने गर्भ से ले करके लोरियों तक कराती रही और वह केवल पांच वर्ष का बालक,

ब्रह्मचारी ब्रह्मवेत्ता बन गया। वह सदैव ब्रह्म की जिज्ञासा में रत्त रहता था। ब्रह्मवे कृतम् देवः प्रव्हा, भगवन्! आपने चौबीस होताओं का वर्णन किया है और उसको आध्यात्मिकवाद से सूत्रित किया है और यह कहा है कि यह चौबीस होता आध्यात्मिक याग कर रहे हैं और हृदय में उसकी प्रतिष्ठा हो रही है, तन्मय हो करके हृदय में ही वह याग हो रहा है। प्रभु! अब यह प्रश्न मेरे अन्तर्हृदय में बना है कि यजमान कितने होताओं द्वारा याग करे।

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बोले कि हे ब्रह्मचारी यज्ञदत्तम! यजमान सत्रह होताओं द्वारा याग करे। **दस प्राण, पंच तन्मात्राएं, मन और बुद्धि यह सत्रह होता कहलाते हैं** जिनके द्वारा तुम्हें याग करना है। जब मानव इस स्थूल शरीर को त्याग देता है तो उस समय यह सूक्ष्म शरीर इस स्थूल शरीर से वाह्य जगत में चला जाता है अथवा परमात्मा के चित्त में उसका समन्वय हो जाता है। 'अप्रतम' यहां जिसे अन्तिम विचारों का समन्वय होता है, उन्हीं विचारों को यह प्राप्त कर लेता है अथवा उसी धारा में रत्त हो जाता है। अन्तिम समय होने पर स्थूल शरीर को त्यागते समय जो भी चित्तमंडल में संस्कार होते हैं, उन्हीं संस्कारों को ले करके यह अपने में नृत्त करने लगता है और यह चित्तमंडल में प्रवेश हो जाता है। यह आन्तरिक चित्त परमात्मा का चित्त है जिसमें सर्वत्र ब्रह्मांड का अंकुर विद्यमान रहता है। विभक्त करने से परमात्मा के एक ही परमाणु में सृष्टि का चित्र दृष्टिपात आता रहता है। एक-एक अणु में, एक-एक वाक्य में, एक-एक शब्द में चित्र और ब्रह्मांड विद्यमान होता है।

प्राण

बेटा! मन, बुद्धि और पंच तन्मात्रायें, दस प्राण यह सत्रह होता कहलाते हैं जिनके द्वारा भौतिक यजमान अपना याग करता है और याग करता हुआ कहता है कि प्राणायाम ब्रह्मा कर्दम देवत्वम् असतम् प्राणो वरुतम ब्रव्हे स्वाहा।

ऐसा उद्गीत गाता वह कहता है कि प्रभु! यह जो प्राण हैं, यह ब्रह्मांड के लिए दस स्तम्भ (खम्बे) कहलाए गये हैं। ऐसे ही मेरा जो सूक्ष्म शरीर है, इसके भी दस प्राण कहलाए जाते हैं और वे प्राण एक दूसरे में पिरोये हुए हैं जैसे माला के मनके होते हैं। वेद मन्त्रों में विज्ञानरूप वर्णन है और ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोने से वह प्रकाश की माला बन जाती है। इसी प्रकार परमपिता परमात्मा का यह अमूल्य जगत है, इसमें नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर, नाना प्रकार के सौर मंडल, नाना आकाश गंगाएं, नाना नीहारकायें और अवन्तिका, यह सर्वत्र एक सूत्र में पिरोये हुए हैं तो यह ब्रह्मांड एक माला के सदृश्य प्राय: हमें दृष्टिपात् आता रहता है। मुनिवरो! यह मानव समाज भी एक माला है और इस माला का एक भी मनका हमारे से विच्छेद न हो जाए। साधक सदैव अपने लिए याचना कर रहा है। वह कहता है कि जैसे ओ३म् रूपी सूत्र में वेद की ऋचाएं पिरोए हुए हैं, इसी प्रकार यह प्राण भी उस परमपिता परमात्मा के ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोए हुए हैं। पिरोये हुए होने से यह प्राण वायु में सम्मिलित हो जाते हैं और वायु गति देती रहती है। अग्नि के परमाणुओं को भी वह गति देती है और वही गति प्राणों में है। यह गति भी वायु मिश्रण के कारण है। देखो, गतिवान मन बना रहता है और गतिवान प्राण बने रहते हैं। यह प्राण जब अपान में परिणित होता है तो पृथ्वी तल को जानने लगता है। जब यह दोनों व्यान में प्रविष्ट होते हैं तो यह सूत्र को जान लेता है और जब व्यान से समान में प्रविष्ट होता है तो यह ब्रह्मांड की वृत्तियां, इन्द्र नाम की वायु को अपने में जान लेता है। उदान में जब यह सर्वत्र प्रविष्ट हो जाते हैं तो यही उदान प्रवृत्ति देवदत्त में प्रविष्ट हो जाती है और देवदत्त धनंजय में और धनंजय कृकल में, और कृकल नाग में प्रविष्ट होता हुआ अपने में अपनेपन को धारण करता हुआ, मानो एक दूसरे में प्रविष्ट हो करके ब्रह्मांड की प्रतिभा को यह जानने वाला बनता है क्योंकि सर्वत्र ब्रह्मांड प्राणों से ही कटिबद्ध हो रहा है।

मेरे प्यारे! मानव का जीवन प्राणों से कटिबद्ध है, यदि प्राण सुस्त हो जाता है तो मानव अप्रियता में प्राप्त हो जाता है। जहां प्राण नहीं रहता वहीं सुस्त बन जाता है और वह रुग्णों में प्रविष्ट हो जाता है तो विचार आता रहता है कि हम प्राण को अपने में जानने वाले बने। जैसे व्यान प्राण जब उदान की आभा में प्रविष्ट होता है तो वाह्य जगत और आन्तरिक जगत के प्राणों का समन्वय होता है। यह वाह्य जगत से अरबों-खरबों परमाणुओं को ला करके और आन्तरिक जगत से उतने ही परमाणुओं को अन्तरिक्ष में ले जाता है, मानव में प्रविष्ट कर देता है। मुनिवरो! देखो, प्राणों का यह कार्य रहता है और उनकी श्रेष्ठता व्यान में प्रवेश हो जाती है और व्यान का कुछ भाग समान में चला जाता है और समान उदान में समाविष्ट हो करके वह प्राण अपान की प्रतिभा को प्रतिष्ठित कर देते हैं। ऋषि-मुनि इन वाक्यों को ले करके अपनी यौगिक क्रियाओं को सिद्ध करते साधना में परिणित रहे हैं। विचार क्या कि सूक्ष्म शरीर के ऊपर मानव को अध्ययन करना चाहिये। जब नाग में ये पांचों प्राण कटिबद्ध हो जाते हैं तो देवदत्त उनकी प्रतिष्ठा को प्राप्त कर लेता है। देवदत्त और धनंजय दोनों जब समाविष्ट होते हैं तो वह योगेश्वर बन करके अवन्तिका मंडलों में भ्रमण करने लगता है।

तन्मात्रायें

बेटा! प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, देवदत्त, धनंजय, कूर्म, कृकल, सबको अपने में रत्त करता हुआ सर्वत्र वृत्तियों को जान पांच तन्मात्राओं में प्रविष्ट होता है। तन्मात्रायें उनके सूक्ष्म स्वरूप को कहा जाता है। जैसे अग्नि की सूक्ष्म धारायें हैं, जो शब्द को ले करके गमन करती रहती हैं, वही अग्नि चित्रों को ले करके गमन करती रहती है। शिकामकेतु उद्यालक मुनि का कितना अध्ययन था। मुझे स्मरण है कि शिकामकेतु उद्यालक अपने में अन्वेषण करते रहे और याग करते हुए तन्मात्राओं के ऊपर चिन्तन करते रहें कि अग्नि

की सूक्ष्म धाराएं शब्द और तरंगों को ले करके गमन करती है और वही यजमान के चित्र को ले करके द्यौ में प्रवेश कराती रहती है। द्यौ से ऊर्ध्वा भाग में एक वृतिका स्रोतकेतु मंडल, स्रोतकेतु एक स्थलि कही जाती है, वहां यह सब विद्यमान हो जाते हैं। इन शब्दों का जगत बड़ा विचित्र है। बेटा! उनमें देखो, चित्र भी रहता है, क्रियाकलाप भी रहता है और वे उसी में ओतप्रोत रहते हैं। शिकामकेतु उद्यालक अपने में याग करते हुए अनुसन्धान करते रहे और उन चित्रों को अपने यन्त्रों में लाने का उन्होंने प्रयास किया।

मैंने पूर्व काल में भी तुम्हें वर्णन किया था कि शिकामकेतु उद्यालक के यहां नाना प्रकार के वैज्ञानिक यन्त्रों का यन्त्रिकरण किया गया और अपने पिता, महापिता इत्यादि के एक पक्षीय विज्ञान को उन्होंने जाना। अपने कुटुम्ब के विज्ञान को जानने का प्रयास करते हुए महापिता तक के चित्रों का प्राय: वे दर्शन करते रहे। सूक्ष्म रूप में वे तन्मात्रायें कहलाती हैं और अग्नि की जो तन्मात्राऐं हैं, वही अणु और परमाणु के रूप में रत्त रहती हैं। जब भी अग्नि के परमाणुओं का जल के परमाणुओं से समावेश होता है तो तरलत्व समावेशता में प्रवेश हो करके उससे तेजोमयी की आभा प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार जब उस गुरुत्व में परमाणुओं का समावेश होता है तो पिंडाकार के अंकुर उसमें विद्यमान हो जाते हैं। माता के गर्भस्थल में इन्हीं अंकुरों से स्थूल शरीर पिंड बन जाता है। इसी प्रकार परमाणुओं के समावेश से नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर का पिंड बन जाता है। इन तीन परमाणुओं से पिंड बनता है और मानव शरीर रूपी पिंड में भ्रमण करने की गति प्राणों के कारण आती है। प्राणाम् भूतम ब्रह्मे व्राहा देवताम ब्रह्मवे कृता:, इस प्रकार वायु इनकी परिक्रमा अन्तरिक्ष में किये रहती है।

यह अन्तरिक्ष का जगत दो प्रकार का माना गया है। एक जगत यह है जहां स्थूल रूप से पिंड स्थिर हो जाते हैं, पिण्ड अपने में गमन करते रहते

हैं। इनका सूक्ष्म जगत परमाणुओं का अमृत पिंड कहलाता है जो अन्तरिक्ष की द्वितीय धारणा मानी गई है। देखो, जब अन्तरिक्ष में जिन भी भावना, विचार की पुट लगती है तो वहीं बिन्दु के रूप में परिणित हो जाता है। यह जगत जहां अपने में अपनेपन को त्रसता रहता है, वहां अपनत्व की व्याहतियों को जन्म देता रहता है। मुनिवरो! देखो, वह अपने में अपनेपन को विचार रहा है। तो चिन्तन करना, मनन करना और उसको अपने में धारण करना यह तीन प्रकार की वृत्तियां मानी गयी हैं। जब वैज्ञानिकजन संसार में विज्ञानवेत्ता बनने के लिए तत्पर होते हैं तो तीन तन्मात्राओं को जानने में लग जाते हैं। बेटा! गुरुत्व तरलत्व और तेजोमयी परमाणुओं को ले करके वे एक दूसरे का मिलान करते हुए यन्त्रों का निर्माण करते रहे हैं। उन तन्मात्राओं के द्वारा वे पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश हो जाते हैं तो कहीं अन्तरिक्ष के गर्भ में, कहीं अग्नि के गर्भ में, कहीं वे आपो के गर्भ में प्रवेश करके उनके वास्तविक स्वरूप को अपने में लाने का प्रयास करते हैं। देखो, पांचों तन्मात्राएं और दस प्राण ये आपस में गुथे हुए हैं तथा मन और बुद्धि जब इसमें समाविष्ट हो जाते हैं तो यह आन्तरिक जगत का सूक्ष्म रूप बन जाता है। यही सूक्ष्म रूप है जो मानव के स्थूल शरीर को त्यागता है, शरीर को धारण करता है।

मानव की आयु

आयु के ऊपर प्रत्येक मानव और ऋषि-मुनि अपने में विचार-विनिमय करते रहे हैं कि इस शरीर की कितनी आयु है। आयु का कोई भी परिमाण नहीं दिया है परन्तु कहीं एक वेद मन्त्र में आया-सम्भूतत्व प्रहा: वैसम् देवत्वम् ब्रह्मा: कृति:, कहीं कृतिकाओं में वर्णन तो आया है कि मानव का जो स्थूल शरीर है, श्वासों के ऊपर उसकी आयु का स्वरूप माना गया है। यदि वह योगभ्यास करता है तो श्वास को सूक्ष्म रूप में लेता है और उसकी आयु बलवती हो जाती है। जिनती भी साधना करता है, अनुष्ठान करता है, प्राणयाम करता है और प्राण को अपान में प्रवेश करता है तो प्राण ब्रह्मे:, इस प्रकार

आयु केवल श्वासों के ऊपर निर्धारित बन जाती है। उसी के साथ भोगवाद की प्रतिभा निहित रहती है। जब रुग्ण होता है तो श्वासों की गति प्रबल होती है। जब मानव संयम करता है तो श्वासों की गति अविरल बन जाती है। इसी प्रकार जब वह शान्त मुद्रा में विद्यमान होता है तो वही श्वास की गति धीमी होती है और जब वह प्राणयाम करता है तो श्वास को और भी धीमा बना लेता है। इसी प्रकार समाधिष्ट होकर वह प्राण को मूलाधार से ले करके नाभी चक्र, हृदयचक्र और त्रिवेणी के स्थान में भ्रमण करता ब्रह्मरन्ध्र में चला जाता है, कृत्तिकाओं में रमण करता है। देखो, वह श्वास उसी में रत्त होता रहता है। मुनिवरो! वेद की आख्यिका कहती है कि चक्रों की शून्य गति को त्याग करके यह ब्रह्मरन्ध्र में प्रविष्ट हो जाता है।

बेटा! ऋषि-मुनियों ने साधनाएं की हैं और साधना का अभिप्राय यह कि अपनी अन्तर्चेतना को वह ब्रह्मरन्ध्र में ले जा करके वहां शान्त मुद्रा में मुद्रित हो गए हैं। उनको अनुभव है, उन्होंने अपनी कुछ लेखनियां बद्ध की हैं और उसी लेखनियों को हमने अपने में अध्ययन किया है। बेटा! अपने को अपने में शान्त करने का उन्होंने प्रयास किया है। वेद का ऋषि कहता है कि श्वासाम् भूतम् ब्रह्मे:, वही श्वास कपाल में प्रवेश करके, द्यौ में उसका अवृत करके वाह्य जगत में लाता है तो उसकी आयु प्रबल हो जाती है तो भोगवाद भी प्राणायाम के द्वारा, साधना के द्वारा सूक्ष्म रूप बन जाता है। सूक्ष्म रूप बन करके, **भोग और श्वास दोनों की गतियां धीमी बन करके आयु वर्धक कहलाती हैं।** इसी प्रकार हमारे आचार्यों ने अपनी बहुत सी आयु प्रबल की है। बेटा! प्राणियों की लगभग तीन-तीन हजार वर्षो की आयु रही है। उसका कारण केवल श्वास कहलाया जाता है और श्वास के साथ में भोगवाद रहता है। भोग और श्वास, दोनों की गति साधना में मिश्रित हो जाती हैं।

मैं तुम्हें उच्चारण कर रहा था कि हमारा सूक्ष्म शरीर अपना नृत्य करता रहा है। इसमें पंच तन्मात्रायें हैं जो ब्रह्मांड का हमें दर्शन कराती हैं।

यह प्राण है जो गतिवान बनाता है और जब प्राण को एक दूसरे प्राण में समावेश करते चले जाते हैं तो हमारी योग यात्रा मूलाधार से प्रारम्भ होती है। त्रिवेणी से ऊपर स्थान कृतिका कहलाता है और उससे ऊर्ध्वा में ब्रह्मरन्ध्र कहलाता है, जहां सर्व सौर मंडल अथवा यह अवन्तिका अपने में गतिवान हो जाती है। मेरे पुत्रो! देखो, यह बड़ा विशाल विज्ञान है जिसके ऊपर मानव, अपने में परम्परा से अन्वेषण करता रहा है, विचार-विनिमय करता रहा है। वही विचार बेटा! आज मैं तुम्हें देने के लिए तत्पर हूं। हमारे आचार्यों ने परम्परागतों से इसके ऊपर विचार दिये हैं और वेद मन्त्रों में इसकी प्रतिभाओं का वर्णन आता रहा है। मेरे प्यारे! अपने में अपनेपन को जानना बहुत अनिवार्य है। अपनेपन को जानने से ही मानव को इसका ज्ञान होगा। ज्ञान इन्द्रतम ब्रह्मवे कृतम्-ऋषि याज्ञवल्क्य कहता है कि हे ब्रह्मचारी यज्ञदतम ब्रव्हा कृते: तुम्हें यह प्रतीत हो गया होगा कि यह सत्रह होता का ऐसा सूक्ष्म याग है, जिस याग को जानने के पश्चात् मानव का अन्तर्हृदय पवित्र हो जाता है।

बेटा! वेद का ऋषि कहता है कि दोनों प्रकार का याग विज्ञान जब हमारे समीप आता है तो सत्रह होता हूत कर रहे हैं। देखो, दसों प्राण एक दूसरे में हूत कर रहे हैं, पंच तन्मात्राएं एक दूसरे में हूत कर रही हैं और मन बुद्धि से कटिबद्ध हो रहा है। बुद्धि और मन दोनों का एकीकरण हो करके परमात्मा के चित्तमंडल में प्रवेश हो जाते हैं। बुद्धि के चार प्रकार हैं– बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञा, प्रज्ञावी बन करके परमात्मा के चित्तमंडल में अपने चित्तमंडल को समावेश करने का स्वत: ही वृत बनता है। वृत बन करके हम परमात्मा को अपने में दृष्टिपात करने वाले बनते हैं तो इसीलिए बुद्धि, मन का सूक्ष्म रूप कहलाता है। बुद्धि और मन केवल तन्मात्राओं तक निहित रहते हैं और मन प्रकृति का सूक्ष्म रूप है परन्तु मन से भी सूक्ष्म यह बुद्धि कहलायी जाती है और यह बुद्धि परमात्मा का दिग्दर्शन चित्तमंडलों के

द्वारा दृष्टिपात करता है। चित्त का जो समूह है, वह बुद्धि है और बुद्धि जब परमात्मा के क्षेत्र में प्रवेश कर जाती है तो आत्माम भूतम ब्रह्मा वरुणा:, आत्मा उसमें समावेश करके चित्त के मंडल में कोई संस्कार नहीं रह पाता और उसे सूक्ष्म रूप कहा जाता है। **संस्कारों का न रहना ही हमारे यहां मोक्ष की प्रतीति मानी जाती है** और जब तक चित्त में संस्कार विद्यमान होते हैं, परमात्मा के चित्त से इसका समन्वय नहीं होता, तब तक देखो, यह चित्तवान बना रहता है और **संस्कारवान ही चित्तवान कहलाता है**। मेरे प्यारे! जब आत्मा संस्कारों से विहीन है तो चित्तवान भी नहीं रहता और परमात्मा के चित्तमंडल में प्रवेश हो जाता है। यह मेधावी मानो बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञावी जो प्राणी है, यह मनस्तम् ब्रह्मा:, इस प्रकृति का सूक्ष्म रूप परमात्मा के चित्तमंडल में प्रवेश हो जाती है।

वेद का ऋषि कहता है कि यह सत्रहताम् ब्रह्मा कृतम् देवत्वा लोकाम:, सत्रह होताओं के द्वारा यजमान याग करने वाला बने। जो सत्रह होता के द्वारा याग करते हैं, वह अमरावती को प्राप्त हो जाते हैं। वाह्य जगत में यह उन्हीं सत्रह होताओं की प्रार्थना करता है और यह कहता है, मेरी बुद्धि मेधावी, प्रज्ञावी और वसुन्धरावी बने और मैं मेधा में प्रवेश कर जाऊं। बुद्धि मेधा ऋतम्भरे मनम् वसुन्धरम् ब्रह्मा प्रज्ञाम् अति देवा:, मैं प्रज्ञा में प्रवेश कर जाऊं और यह बुद्धि चित्तमंडल में प्रवेश हो जाये। मानव यह प्रार्थना वाह्य जगत में आपो को ले करके करता है, संकल्प मात्र से करता है परन्तु जब वह याग करता है तो वह कहता है कि मैं देवताओं के लिए याग कर रहा हूं। मेरा जो आत्मा है वह पंच महाभूतों में रत्त रहता है क्योंकि उसका यह गृह है मैं गृह के लिए याचना कर रहा हूं। मेरे प्यारे! अग्नि उन पंचभूतों का देवता कहलाता है। पंच महाभूत ही देवता के रूप में रहते हैं, अग्नि उनका मुख कहलाता है, अग्नम् ब्रह्मा देवत्यम् ब्रह्मे:, आत्मा का लोक क्या है? **आत्मा**

का लोक पंच महाभूत हैं और पंच महाभूतों में अग्नि उनका मुख कहलाया गया है।

जब यजमान यह कहता है कि मैं प्रार्थी हूं और मैं आहुति दे रहा हूं तो कर्मकांड की पद्धतियों में ब्राह्मण कहता है, आचार्य कहता है कि हे यजम ब्रह्मा! तू कृतम ब्रहे तेरे हृदय में जो विनय कार्यमान है उसे तू मुझे प्रदान करके याग कर। जैसे जल स्वच्छ बनाता है, ऐसे ही तू अपनी वाणी को स्वच्छता में ले जा। सम्भूति ब्रह्मा लोकाम् अव्यर्तम देवत्वम् ब्रव्हा, जैसे यह अग्नि सर्व देवताओं को भोज्य देता है इसी प्रकार तेरा सर्व आन्तरिक जगत अनुपम बना रहे, यह तेरा देवताओं का लोक पवित्रता को प्राप्त हो जाए। वेद मन्त्र कहता है सम्भूति ब्रह्मा कृतम् देवो देवाम् भूतम ब्रह्मे अग्नि, वह अग्नि की प्रार्थना करता हुआ अग्न्याधान करता है। यह अग्नि परमात्मा के रूप में विद्यमान रहती है, इस अग्नि से नेत्रों का, वाणी का, श्रोत्रों का और घ्राण, सर्वत्र का समन्वय एक हो करके हृदय में प्रवेश हो जाता है। याज्ञवल्क्य ऋषि ने कहा कि यजमान याग करना चाहता है तो आध्यात्मिक और भौतिक याग, दोनों को ले करके ही आग्नेय बने और आग्नेय बन करके वह यजमान अपने में पवित्रत्व को प्राप्त हो जाए। पंच तन्मात्रायें और दस प्राणों का समूह, मन और बुद्धि, यह सत्रह होता अपने में याग करते हैं तथा यजमान प्राणाय स्वाहा:, अपानाय स्वाहा:, व्यानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा और उदानाय स्वाहा कह कर अपने चित्त मंडल को पवित्र बनाता है।

बेटा! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने नैतिक शिक्षा देते हुए, ब्रह्मचारियों को न्यौदा में वेद मन्त्रों का उद्गीत गाते हुए कहा कि शम ब्रह्म ब्रह्मे देवत्वाम् ब्रह्मा: घ्राणे ब्रह्म देवत्वाम् देहा, हे यजमान! तू अपने में याज्ञिक बन करके अपने जीवन को उद्बुद्ध कर, ज्ञान रूपी अग्नि को उद्बुद्ध करके तेरा हृदय

पवित्रता को प्राप्त हो जाए। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर में यह होता हूत कर रहे हैं जो ब्रह्मांड का ज्ञान कराते हैं। ब्रह्मांड में जो अग्नि प्रदीप्त है, वह मानव का कार्य रूप बन करके यज्ञशाला की अग्नि में प्रविष्ट हो करके वह याग हो रहा है। हे ब्रह्मचारियो! मैं अब अपने नैतिक उपदेश को शान्त कर रहा हूं। वेद मन्त्रों में नाना प्रकार का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है। ऋषि-मुनियों ने कहा कि हम्वृहेवृतम, देखो, परमात्मा का राष्ट्र बड़ा पवित्र है और परमात्मा के राष्ट्र में आलस्य-प्रमाद नहीं और जब आलस्य-प्रमाद नहीं है तो वहां मृत्यु नहीं है। केवल एक दूसरे को जानना है और जान करके ही जो अपने में प्रवेश कर जाता है तो मृत्यु का अमृत हो जाता है।

बेटा! आज का वाक्य अब सम्पन्न होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए अपने सत्रह होताओं के द्वारा याज्ञिक बने और याज्ञिक बन करके अपने जीवन को महान पवित्र बनाने का प्रयास करें। यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चायें कल प्रकट करूंगा, अब वेद पाठ होगा।

अमृतसर
७-१-१९९२

यज्ञ के ग्यारह होता-१

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है, आज के वेद के पठन-पाठन में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन आ रहा था। समव्र: सम्भव लोकाम् वायु समवर्तक स्वतात:, हमारा वेद मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गा रहा है। जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गाता रहता है, इसी प्रकार यह पृथ्वी ब्रह्मांड की गाथा गा रही है, इसी प्रकार प्रत्येक वेद मन्त्र उस परमपिता परमात्मा के गुणों का गुणवादन कर रहा है अथवा उसका गान गा रहा है। इसीलिये हम परमपिता परमात्मा का गान गाते रहें। उसे ग्रहण करने में हम इतने तत्पर हो जायें जिससे हमारा वाह्य जगत हमसे दूरी हो सके और हम आन्तरिक जगत में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते रहें और उसी में मौन हो करके उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा में हम ओतप्रोत होते चले जायें।

बेटा! आज का हमारा वेद मन्त्र माता वसुन्धरा की याचना कर रहा था, माता वसुन्धरा के गुणों का गुणवादन कर रहा था। वैदिक साहित्य में वसुन्धरा के भिन्न-भिन्न प्रकार के पर्यायवाची शब्दों की विवेचना होती रहती है। हमारे यहां माता का नाम वसुन्धरा कहा जाता है जिसके गर्भस्थल में हम

सब वशीभूत हो रहे हैं, जिसमें हम रत्त हो रहे हैं, उस माता का नाम वसुन्धरा कहा जाता है। वसुन्धरा नाम इस पृथ्वी का भी माना गया है। जब हम जैसे शिशु माता के गर्भ से पृथक होते हैं तो पृथ्वी माता की गोद में आ जाते हैं। यह नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थ प्रदान करती रहती है। उसी में प्रत्येक प्राणी अपने को बसा हुआ स्वीकार करता है। विचार यह कि वसुन्धरा के गर्भस्थल में हम सब वशीभूत हैं। मानव जब यथार्थ जिज्ञासु बन करके पृथ्वी माता के गर्भ से पृथक होता है तो वह जो चेतन्य देव है, जो संसार का नियन्ता रचियता है, मानव उसकी गोद में आ जाता है और वह अपने को यह स्वीकार करता है कि मैं परमपिता परमात्मा की आनन्दमयी लोरियों का पान कर रहा हूं। उसी में वह रत्त हो जाता है। हमारे यहां भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्दों में अथवा उनके अर्थो में माता वसुन्धरा का अभिप्राय यह कि जिसके गर्भ से हम सब वशीभूत हो रहे हैं। बेटा! आज का हमारा वेद मन्त्र हमें उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाने के लिये बाध्य कर रहा है। मानव जब स्वरों से गान गाने लगता है तो उस गान के गर्भ में संसार की सर्वत्र निधियां प्राप्त हो जाती हैं।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब ऋषि-मुनि अपनी स्थलियों पर विद्यमान होकर गान गाना प्रारम्भ करते थे। मेरे पुत्रो! जब वेद का एकान्त स्थलि में, वनस्पतियों के मध्य में विद्यमान होकर हृदय से गान गाना हो तो मन, प्राण और चिन्तन की एक स्वर-ध्वनि बन जानी चाहिये। जब वह गान गाता है तो अपने प्रभु को अपने में स्वीकार करता हुआ, अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाता है। बेटा! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब चाक्राणि गार्गी वेदों का गान गाती थीं तो सिंहराज, मृगराज और सर्पराज उनके स्वरों को पान करते। मानव जब निष्पक्ष होकर हृदय से गान गाता है तो हिंसक प्राणी अपनी हिंसा को त्याग देता है, वह अहिंसा में परिणित हो जाता है।

जब वह अहिंसावादी बन जाता है तो जानो कि हृदय से गा रहा है। वह परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में, उसकी राष्ट्रीयता का गान गाता हुआ, इस संसार की प्रतिभा को जानते हुए, इस संसार से पार होने का प्रयत्न करता है। बेटा! तब प्राणी एक दूसरे में प्रतिभाषित हो जाता है, सर्वत्रता में प्रभु के निर्माण, प्रभु की प्रतिभा को दृष्टिपात करता है।

इस माता वसुन्धरा पृथ्वी के गर्भ में कहीं खाद्य पदार्थ हैं तो कहीं खनिज पदार्थ हैं। वहां खनिज पदार्थ भी तप रहा है और परमाणुओं का आदान-प्रदान हो रहा है। उस आदान-प्रदान में सूर्य की नाना प्रकार की कान्तियां अथवा किरणें उनको तपाती रहती हैं। कहीं जलाशय तप रहा है, कहीं रत्नों की धातुओं का निर्माण हो रहा है। वाह रे मेरे प्रभु! तू कितना महान रचियता है। इस माता वसुन्धरा के गर्भ में तूने क्या-क्या प्रदान कर दिया है। इसकी अनुकृतियों-कृतियों में कितना विज्ञान निहित रहता है। वह परमपिता परमात्मा जो वसुन्धरामयी कहलाता है, हम उसकी याचना करते हुए अपने मानवीयत्व को ऊंचा बनाते हुए मृत्यु से पार होने का प्रयास करें।

बेटा! आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूं जहां याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के विद्यालय में नाना ब्रह्मचारी आचार्य से प्रश्न कर रहे हैं, आचार्य से यह अनुग्रह कर रहे हैं कि हे प्रभु! हम याज्ञिक बनना चाहते हैं। ऋषि-मुनियों की एक बड़ी विचित्र देन रही है कि ब्रह्मांड को मापा जा रहा है, पिंड को भी मापा जा रहा है और दोनों का समन्वय करके अपने अन्त:करण में एकोकीकरण करते हुए मानवीयत्व को दीर्घता से दृष्टिपात करते रहते हैं। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज विद्यालयों में आध्यात्मिक याग करते रहे हैं, भौतिक विद्यालयों में भौतिक याग करते रहे हैं। भौतिक याग का भी उन्होंने आध्यात्मिक याग में समन्वय किया अथवा उसका निरूपण किया है और यह वर्णन किया कि वास्तव में दोनों का एकोकीकरण हो जाना चाहिये। शिष्य कहता है कि यजमान याग करना चाहता है तो कितने होता होने चाहियें। आपने हमें सत्रह

होताओं का वर्णन किया है। जैसे मनस्तव है और यह मन अपनी आभा में निहित रहता है। वेद के एक मन्त्र को जब उद्‌गीत के रूप में गाया जाता है तो मन अपनी आभा में निहित हो जाता है। मन प्रकृति का एक महान सूक्ष्म तन्तु माना गया है। जैसे दुग्ध के मन्थन करने पर घृत की उपलब्धि हो जाती है इसी प्रकार प्रकृति को जब मन्थन में लाया जाता है तो मन्थन करने के पश्चात् जो घृत रूपी मनस्तव की उपलब्धि होती है, वही उपलब्धि मानव जीवन में सहायक बन करके इसकी ऊर्ध्वा में गति कर देती है। इसलिए इस मनस्तव को ऊंचा बनाना है।

बेटा! मन और प्राण दो वस्तु हैं। शिव रूपी परमपिता परमात्मा ने जब तांडव नृत्य किया था और पार्वती (प्रकृति) ने उसमें नृत्य किया। उस ताडंव में स्वर ध्वनियां हो रही हैं। उन स्वरों में डमरू की प्रवृत्तियां शब्दायमान हैं और प्रकृति में वह नृत्य हो रहा है। जब नृत्य होता है तो नृतिका को नृत्य में लाते-लाते मानव कहां चला जाता है। यह जो हमारा मस्तिष्क है, इस मस्तिष्क में जहां आज्ञा चक्र है, वहीं सूचना केन्द्र है, वहीं मन वृत्तियां विद्यमान हैं। हृदय अपने में गतिशील है। समाधिष्ट मानव के मस्तिष्क में जो नाना प्रकार की गर्जना हो रही है, नाना प्रकार का जो स्वर संगम हो रहा है, उसी स्वर संगम का हमारे यहां व्याकरण के रूप में परिवर्तन हो रहा है। संसार में जब शिव (परमात्मा) का तांडव नृत्य होता है और पार्वती नृत्य करने लगती है तो वह पार्वती प्रकृति के रूप में है। परमपिता परमात्मा चेतन के रूप में, चेतना का भरण करते हुए तांडव नृत्य करने लगता है। वही नृत्य स्वर-संगम के रूप में वाह्य जगत में आकर व्याकरण के रूप को धारण कर लेता है, वही स्वरों की ध्वनियों के रूप में ध्वनित होने लगता है और वही शब्द माला के समान दृष्टिपात आने लगता है। विचार यह कि मनस्तव, प्राणत्व, विचारत्व में जब जिज्ञासु चला जाता है तो इस संसार की प्रत्येक वस्तु को जान लेता है, प्रत्येक लोक-लोकान्तरों के स्वरों में स्वरसज्जित हो जाता है।

ग्यारह होता

यजमान अपने होताओं के द्वारा याग करना चाहते हैं। यह सब मनस्तव, प्राणत्व, बुद्धित्व, विचारत्व होता कहलाते हैं और यह (शरीर) सत्रह होताओं वाली यज्ञशाला है जिस यज्ञशाला में विद्यमान हो करके भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों प्रकार का याग हमें दृष्टिपात आ रहा है। बेटा! ब्रह्मचारियों ने यह प्रश्न किया कि, हे प्रभु! आपके चरणों में विद्यमान हो करके हम नाना रूप में गान गाते रहते हैं और स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों का समन्वय करने वाले बन गये हैं। हम यह और जानना चाहते हैं कि भगवन्! यजमान विद्यमान है और वह याग करना चाहता है, कितने होता होने चाहिये? सत्रह होताओं के पश्चात ऋषि ने वर्णन किया कि ग्यारह होता होने चाहियें। ग्यारह होता कौन से हैं? बेटा! **पांच ज्ञान इन्द्रियां, पांच कर्म इन्द्रियां और ग्यारहवां मन कहलाता है।**

मन

मन से प्रत्येक इन्द्रियां कटिबद्ध रहती हैं। जैसे एक वाहन गति कर रहा है परन्तु वाहन का जो संचालन कर रहा है, वह उन सब गतियों को अपने में धारण करता हुआ अपने में उसे कटिबद्ध कर देता है। चाहे वह यान समुद्र की तरंगों में गति करने वाला हो, चाहे वह समुद्र के आन्तरिक जगत में गति करने वाला हो, चाहे वह वायुमंडल में उड़ान उड़ने वाला हो, चाहे वह ध्रुव लोक का यात्री हो, चाहे वह मंगल लोक का यात्री हो, चालक अपने यान की उस प्रतिभा को धारण करता रहता है। इसी प्रकार मानव जब यह विचारता है कि मैं अब प्रभु के समीप जाना चाहता हूं तो मन प्रत्येक इन्द्रियों को कटिबद्ध करता है। शरीर जैसे एक यान है और उस यान में यात्रा करने वाला यह आत्मा माना गया है। यह आत्मा यात्रा कर रहा है। इस संसार की यात्रा करने वाला यह आत्मा ही तो है। वह प्रेरक प्रेरणा प्रदान करता

रहता है,मन सारथी बनकर ही गतिवान है। यह एक याग हो रहा है। आत्मा याग करा रहा है, वह ग्यारह होता आहुति दे रहे हैं। वह कहां से आहुति लाते हैं, कहां से साकल्य लाते हैं, यह बड़ा विचारणीय प्रसंग है। परम्परागतों से ही बुद्धिजीवी प्राणी इस सम्बन्ध में अनुसन्धान करता रहा है।

मेरे प्यारे! साकल्य क्या? नेत्र प्रकाश का, अग्नि का रूप बन करके रूप का साकल्य लाते हैं। यह श्रोत्र दिशाओं के आंगन में प्रवेश होकर शब्दों के साकल्य को एकत्रित कर लेते हैं। घ्राण पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश हो करके वहां से गन्ध-सुगन्ध के साकल्य को ला करके एकोकीकरण में प्रवेश कर जाते हैं। रसना नाना प्रकार के रसास्वादनों का साकल्य एकत्रित कर देती है। त्वचा नाना प्रकार के अव्यवों को ला करके साकल्य के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यह पंचीकरण कहलाता है। यह पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं, पांच कर्म इन्द्रियां हैं जो वाह्य जगत को दर्शा रही हैं, वाह्य जगत में जिसकी प्रतिभा निहित है। जैसे ध्रुवा में पृथ्वी से साकल्य को लेती है, इसी प्रकार यह चन्द्रमा का अमृत अपने में धारण करते रहते हैं। यह हस्त रूप को ले करके तो क्रियाकलाप है, उसको क्रियात्मक में लाने का प्रयास करते हैं। पृथ्वी से पगों का समन्वय हो करके, यह दस इन्द्रियों का जो साकल्य है, वह ज्ञान इन्द्रियों में और ज्ञान इन्द्रियों का जो साकल्य है, वह आत्मतत्वदर्शी के द्वारा है और मनस्तव उसकी वितरण प्रणाली को जानता है। प्राणरूपी जो गतियां हो रही हैं, उन सब गतियों को समावेश करके जो अग्नि जागरूक हो जाती है, वह अग्न्याधान हो रहा है। हे योगेश्वर! तेरे ही इस आंचल में, तेरे ही आंगन में जो अग्न्याधान हो रहा है उसमें वह आहूति दे रहा है, साकल्य प्रदान कर रहा है। वह याग हो रहा है।

यज्ञशाला रूपी रथ में जो विद्यमान है वह विराजमान हो करके यजमान बना हुआ है। अरे! आत्मा ही तो यजमान है। आत्मा की क्षुधा ही तो याग

के लिये प्रेरित कर रही है क्योंकि मन नहीं चाहता कि मैं याग करूं क्योंकि वह तो जड़वत कहा जाता है। वह तो पराधीन होता है, वह सेवक की भांति रहता है और सेवा करना उसका कर्त्तव्य है परन्तु आत्मा ही तो यजमान है, इन्द्रियां होता हैं, जिनके भिन्न-भिन्न देवता हैं। जहां अग्नि देवता है, जहां आपो भी देवता है, गुरुत्व भी देवता है तो यह अपने में परिणित होकर, साकल्य रूप बन करके उनका साकल्य आत्मा के समीप जाता है। आत्म तत्व ब्रह्मा: आहुति प्रदान हो रही है। वाह रे मेरे प्रभु! तू कितना विज्ञानवेत्ता है, तेरे विज्ञान की कोई सीमा नहीं है। जब तूने इस मानवत्व को रचना में लाने का प्रयास किया, यह रचना में आया तो ग्यारह होता हैं और उस यज्ञशाला रूपी रथ में विद्यमान होने वाला एक आत्मा है। इसी आभा को लेकर ऋषि-मुनियों ने विज्ञान के वांग्मय में जाने का प्रयास किया। वह आत्मा अपने में ब्रह्मत्व कहलाता है। जगत पिता ने सृष्टि के प्रारम्भ में इस यज्ञशाला का निर्माण किया। यह कैसी भव्य यज्ञशाला है जिसमें आहुति दी जा रही है, याग हो रहा है, मानव प्रसन्न हो रहा है। इनको जान करके योगेश्वर योग के पथ पर जाना चाहता है, योगेश्वर बनना चाहता है।

यज्ञशाला का रथ

मेरे प्यारे! मुझे बहुत से काल स्मरण आते रहते हैं जब ऋषि-मुनि एक-एक वेद मन्त्र को लेकर अनुसन्धान करते रहते थे अथवा ब्रह्मांड को मापते रहते थे। एक-एक वाक्य में ब्रह्मांड की प्रतीति होती है। इसी वाक्य को लेकर एक वेद का मन्त्र है-यज्ञम भविताम, ब्रह्मे: मनस्तम् व्रहे आत्मा रथम् वृही व्रण: वस्तति। यही वेद मन्त्र जब आध्यात्मिक और विज्ञानवेत्ताओं के पास पहुंचा, महर्षि भारद्वाज मुनि के यहां जब इस वेद मन्त्र के ऊपर अनुसन्धान होने लगा तो वाह्य जगत वालों ने विज्ञान को जानने का प्रयास किया। उन्होंने इसी वाक्य को जाना। महर्षि वैशम्पायन के मस्तिष्क में जब

इस मन्त्र की प्रतिभा ओतप्रोत होने लगी तो वह इस पर मनन-चिन्तन करने लगे कि यज्ञशाला का रथ बन करके अन्तरिक्ष में, द्यौ लोक में प्रवेश करता है। उसी रथ के ऊपर विचार-विनिमय करते हुए वह महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में पहुंचे। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने इस वेद मन्त्र के ऊपर अनुसन्धान किया। ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी कबन्धी, ब्रह्मचारी रोहिणीकेतु, महर्षि पणपेतु महाराज और ब्रह्मचारिणी शबरी ने इस वाक्य के ऊपर बड़ा अनुसन्धान किया। इसी वेद मन्त्र को लेकर अनुसन्धान करते हुए उन्होंने अपनी विज्ञानशाला में एक यन्त्र का निर्माण किया। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि जैसे मानव स्वाहा उच्चारण कर रहा है, जैसे मानव का शब्द अग्नि के ऊपर धारयामि बन रहा है तो यन्त्र में उस यज्ञशाला का रथ बन करके, अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके वह द्यौ लोक में प्रवेश करता दृष्टिपात आ रहा है। इस भौतिक विज्ञान पर वैज्ञानिकों ने बड़ा अनुसन्धान किया।

ृह स्वर्ग

यह भौतिक याग ग्यारह होताओं के द्वारा हो रहा है। अग्न्याधान करने के लिये, अग्नि में साकल्य प्रदान करने के लिये ग्यारह होता होने चाहिये। इन ग्यारह को जब समाहित कर देते हैं तो वही तो द्यौ लोक का निर्माण करता है। द्यौ लोक में उनकी स्थिति बनकर, उनके वाक्यों की ध्वनियों का, उनके साकल्य का शुद्धिकरण हो करके वायुमंडल को पवित्र बनाता रहता है। गृह में माता-पिता और बाल्य प्रातःकालीन वेदों का उद्घोष करते हैं, श्रद्धायुक्त हो करके वेद मन्त्रों के द्वारा याग करते हैं, वेद मन्त्रों का पठन-पाठन करते हैं। जिस गृह में इस प्रकार के पठन-पाठन की प्रणाली प्रचलित रहती है वह गृह स्वर्ग बन जाता है। उस गृह में उनके आन्तरिक जगत वाले विचारो के परमाणु वाह्य स्थलियों में ओतप्रोत हो जाते हैं। उन्हीं परमाणुओं से गृह पवित्र बन जाता है तो आने वाला आगन्तुक या अतिथि यह कहता है कि

यह गृह तो बड़ा भव्य है, इसकी तरंगे बड़ी प्रियता में, हृदय को स्पर्श कर रही हैं। ऐसा जब उच्चारण करते हैं तो हृदय अगम्य होने लगता है।

न्यौदामयी याग

बेटा! एक समय महर्षि कागभुषंड जी अनुष्ठान कर रहे थे। वह न्यौदामयी में भक्ति का पठन-पाठन करते थे। **माता की आज्ञा का पालन करना, परमात्मा की प्रेरणा के आधार पर आत्मचिंतन करना न्यौदामयी कहा जाता है।** जब मानव अपने को महापुरुषों की शरणगत, समर्पित कर देता है तो वह न्यौदामय कहलाता है। वह याग करता है, स्वाध्याय करता है। स्वाध्याय करके, मौन होकर उसके अन्तःकरण की तरंगों का समन्वय जब हृदय-मस्तिष्क से होता है तो वहां एक स्वर संगम, एक स्वर उत्पन्न होता है। वह अनहाद का जो स्वर संगम हो रहा है, उसे अपने में वह अनुभव कर रहा है। मैं अपने विचारों को वहां ले जा रहा हूं जहां ऋषि-मुनि अपने में पवित्रतम की आभा में परिणित रहते हैं। न्यौदामयी मन्त्रों का उद्घोष करते हुए महर्षि कागभुषंड जी माता की आज्ञा पा करके अनुष्ठान करते रहते थे। भयंकर वन में जा कर नाना प्रकार का साकल्य एकत्रित करके वह नाना प्रकार का याग करते थे।

एक समय वह प्रातःकालीन याग कर रहे थे। महर्षि धुन्धी ऋषि महाराज अपने ब्रह्मचारियों से क्रूर होकर भ्रमण करते हुए जब भयंकर वन में आये तो देखा कि महर्षि कागभुषंड जी याग कर रहे हैं। उनके याग में वह भी विराजमान हो गये और वह भी साकल्य की आहुति देने लगे। कागभुषंड जी को इतना अनुभव हो गया था कि यज्ञ में से जो तरंगें अग्नि की धाराओं पर विद्यमान होकर द्यौ लोक को जाती हैं, उन तरंगों में मनोमयी विचार रहता है और उनका चित्त अन्तःकरण से मिलान करता रहता था। धुन्धी ऋषि जब क्रूर होकर आये तो उनके मन में यह संकल्प-विकल्प जागरूक हो रहा था

कि मैं विद्यालय में जाऊंगा तो विद्यालय का विनाश करूंगा। ऐसे विचार मन में आ रहे थे और वह साकल्य की आहुति प्रदान कर रहे थे। वह तरंगे जब महर्षि कागभुषंड जी के आन्तरिक जगत को स्पर्श होने लगीं तो उन्होंने याग समाप्त कर दिया और कहा कि हे ऋषिवर! आपका मन बड़ा क्रूर हो रहा है। आपके हृदय की तरंगे मेरे हृदय की तरंगों को स्पर्श कर रही हैं, मानो यह याग तुमने दूषित कर दिया। उस समय ऋषि ने यह स्वीकार कर लिया कि प्रभु! वास्तव में मेरा अन्तर्हृदय बड़ा क्रूर हो रहा है। हे प्रभु! मैं क्षमा चाहता हूं।

इसीलिये वेद का मन्त्र कहता है कि यज्ञम ब्रह्मा: मृत्यु वाचन् पवित्रम ग्रह: वरण्म् वृति व्रता मन:, वेद की आख्यिका यह कहती है कि जब भी याग का प्रारम्भ हो, चाहे वह आध्यात्मिक याग हो या भौतिक याग हो, उसमें मन की तरंगें इतनी महान पवित्रतम होनी चाहियें जिससे हमारा अन्त:करण उससे दूर न हो जाये। उससे प्रीति करने वाला ऐसा संकल्प हो कि मैं याग में हूं और याग प्रभु का है, प्रभु याग में है और मैं उस याग के आश्रित हो करके प्रभु का गुणगान गाना चाहता हूं। जब इस प्रकार की ज्योतिर्मय भावना बनी रहती है तो मानव अपने में पवित्र बनता जा रहा है, वह व्यष्टि से समष्टि में जाना चाहता है, समष्टि में प्रवेश करना चाहता है। महर्षि कागभुषंड जी ने पुन: याग प्रारम्भ किया और अनुष्ठान किया। याग की तरंगों में अपने हृदय की तरंगों को वह समर्पित कर देते और वही समर्पित जो विचारधारा है, वही मानव को आध्यात्मिकवाद में, मानवीयता में परिणित कर देती है।

दूषित वायुमंडल का निर्माण

बेटा! महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने ब्रह्मचारियों को याग का वर्णन करते हुए कहा कि यह ग्यारह होता जो याग कर रहे हैं, इनमें दस होताओं का निर्णय देने वाला यह मनस्तव अपने में मानो, निध्यासन कर रहा

है। विचार क्या कि बुद्धि के भिन्न-भिन्न स्वरूप बन करके, मनस्तव की भिन्न-भिन्न प्रकार की धाराएं बन करके और साकल्य में मिश्रित हो करके जब द्यौ लोक को ऊंचा बनाने में तत्पर होती हैं तो यह वायुमंडल भी पवित्र हो जाता है। जिस भी काल में मानव के विचारों में क्रोधाभास हो जाता है दूषित वायुमंडल बनता है। मानव के आन्तरिक और वाह्य जगत दोनों में विचारों का समावेश तो हो नहीं पाता, दोनों में विभाजन बन जाता है और उसमें अशुद्धियां आ जाती हैं। जितना मानव का विभाजन बन जाता है उतने ही विभाजन में वायुमंडल दूषित बनता चला जाता है क्योंकि शब्द प्रणाली उसकी भ्रष्ट हो जाती है। जितनी भी शब्द प्रणाली ईर्ष्या में, द्वेष में, ध्रुवा में परिवर्तित हो जाती है, पद की लोलुपता में परिणित हो जाती है, उतना विभाजनवाद बलवती हो करके वायुमंडल दूषित हो जाता है।

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि तुम्हारा विद्यालय इतना पवित्र होना चाहिये, इतना याज्ञिक होना चाहिये जिससे तुम्हारे विद्यालय में विचारों की सुगन्धि उत्पन्न हो जाये। यदि **विचारों की सुगन्धि विद्यालयों में उत्पन्न हो जाती है तो विद्यालय पवित्र बन जाते हैं, याज्ञिक बन जाते हैं।** यदि विद्यालयों में विचारों की सुगन्धि न रह करके विचारों में दूषितपन आ जाता है, एक दूसरे को धृष्टता की दृष्टि से, एक दूसरे मानव से अमानवीयता का अभद्र व्यवहार जब प्रारम्भ हो जाता है तो विद्यालय भ्रष्ट हो करके राष्ट्रवाद की प्रणाली भ्रष्ट हो जाती है। जब राष्ट्र की प्रणाली भ्रष्ट हो जाती है तो राजा की विचारधारा पदों की लोलुपता और दूसरे के वैभव और श्रृंगार को अपने में ग्रहण करने वाली बन जाती है। इसलिये वायुमंडल अशुद्ध बन जाता है। परिणाम स्वरूप मानव एक दूसरे के रक्त का पिपासु बन जाता है।

वेद का पठन-पाठन

मेरे प्यारे! विचार यह कि आध्यात्मिकवाद के द्वारा मिलान करने का प्रयत्न मानव को सदैव करना चाहिये। ग्यारह होताओं के द्वारा इन्द्रियों

को संयम में लाते हुए मनस्तव उसकी धाराओं में परिणित हो रहा है, वह याज्ञिक बना हुआ है। अपने जीवन को महान बनाने के लिये हम अपने विचारों को वेद की आभा में ले जायें। वेद ही प्रकाश है, आनन्द है। जैसे सूर्य प्रातःकाल में प्रकाश लेकर आता है और वह संसार को प्रकाश देता चला जाता है, ऊर्जा देता है, सत्ता प्रदान कर देता है, इसी प्रकार वेद के पठन-पाठन करने वालों को जान लेना चाहिए कि वेद मानव का अनुपम प्रकाश है। वह वेद का जब गान गाता है तो उसके आन्तरिक जगत में प्रकाश आना प्रारम्भ हो जाता है। वह प्रकाश ही मानव के अन्तःकरण को प्रकाशित कर देता है। सूर्य इस साधारण प्राणी को ऊर्जा में प्रकाश देता है, वेद रूपी प्रकाश मानव के अन्तःकरण को पवित्र बना देता है।

हमारे यहां ग्यारह होताओं के द्वारा जो याग होता है, उस यज्ञ में स्वामित्व करने वाला आत्मा है। अरे! आत्मतत्वी बनना है तो इस संसार रूपी याग में परिणित होकर अपने जीवन को ऊंचा बनाओ। क्योंकि संसार में सृष्टि के प्रारम्भ से ही वर्तमान के काल तक प्रत्येक मानव की, प्रत्येक प्राणी की यह पिपासा रही है कि मै अन्धकार में न चला जाऊं, मैं मृत्यु को न प्राप्त करूं। प्रत्येक मानव मृत्यु से दूरी होना चाहता है। अरे मानव! मृत्यु से तू जब दूरी हो जाएगा, जब तू प्रकाश को जान लेगा और जब प्रकाश को जान लेगा तो मृत्यु स्वतः नहीं आ सकेगी। जब मानव वेदरूपी ज्ञान के प्रकाश में रत्त हो जायेगा तो अन्तःकरण प्रकाशित हो जाता है और अन्धकार उसके समीप नहीं आता, वह मृत्युंजय बन जाता है, मृत्यु से पार हो जाता है।

बेटा! हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, माता वसुन्धरा की गोद में अपने को स्वीकार करें। हमें इस संसार को परमात्मा की आनन्दमयी लोरियों के समान स्वीकार करना चाहिये। जैसे माता का पुत्र रुदन कर रहा है, क्षुधा लग रही है तो माता अपनी लोरियों का पान करा देती है, उसकी

क्षुधा समाप्त हो जाती है तो वह पुनः पूर्व की भाँति खिलवाड़ करने लगता है। इसी प्रकार, संसार के अव्यवो में परिणित हो गया मानव अपने में व्याकुल होता हुआ जब प्रभु की आनन्दमयी, ज्ञानमयी, स्त्रोतमयी, प्रकाशमयी लोरियों में परिणित हो जाता है तो वह अपने में प्रकाशमयी हो जाता है।

आज का हमारा वाक् यह कि परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हम इस संसार सागर से पार हो जायें। हमारा संसार में आने का यही मंतव्य है। मानव संसार में नाना प्रकार के वैभव को एकत्रित करता रहता है कि मुझे सुखद प्राप्त हो जाये, नाना प्रकार की विचित्रताओं में रत्त होता रहता है परन्तु चेतना में चेतना का मिलान यदि नहीं हो पाता तो आनन्द प्राप्त नहीं होता। वह आनन्द तभी प्राप्त होता है जब मानव सत् उस स्त्रोत को प्राप्त कर लेता है। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

आर्यसमाज, अमृतसर
३१-७-१९८७

यज्ञ के ग्यारह होता-२

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा महिमावादी है और जितना भी यह जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है यह प्राय: उस की महिमा का द्यौतक माना गया है। क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए हैं परन्तु कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नहीं हुआ जो उस परमपिता परमात्मा को सीमा बद्ध कर सके। वे सीमा से रहित हैं और वे सीमा में आने वाले नहीं हैं। सीमा से रहित होने के कारण ही यह अनन्तमयी अनुपम जगत है, जिस जगत के ऊपर प्राय: मानव परम्परागतों से मनन करता रहा है।

ऋषि-मुनि अपने विचार-विनिमय करते प्रत्येक वस्तु में परमात्मा को दृष्टिपात करने का प्रयास करते रहे हैं। आज के हमारे वेद के पठन-पाठन में आ रहा था कि चक्षु मेह पाहि, मानो हम उस परमपिता परमात्मा को चक्षु में पाना चाहते हैं परन्तु आगे कहता है कि सम्भव श्रोतम् ब्रह्मा: श्रोत्रों मेह पाहि, वहां भी हम प्राय: अपना चिन्तन करते रहते हैं और प्रत्येक आभा में ध्यानाम् स्थित हो करके उस वेद मन्त्र का अध्ययन करते हैं जिसमें परमपिता परमात्मा को पाने की प्रतिक्रिया हमारे जीवन में उत्पन्न होती है। वेद का एक मन्त्र कहता है कि हे इन्द्रो समम् ब्रह्मा: ब्रह्मचरिष्यामी, हे ब्रह्मचारी!

तुम मुझे इन्द्रियों को प्रदान करो। इन्द्रियों के विषयों को वह अपने में आचार्यों को प्रदान करता है। उसके पश्चात् आचार्य उसे विद्या का उपदेश देता है, ब्रह्म सूत्रों का पठन-पाठन कराता हुआ, ब्रह्म का उपदेश दे करके उसे महान बनाने का प्रयास करता है।

आज मैं गुरु शिष्य की प्रणाली में नहीं जाना चाहता हूं। केवल विचार यह कि प्रत्येक मानव परम्परा से ही अपने-अपने आसनों पर विद्यमान हो करके प्राय: अपने में चिन्तन और मनन करते रहे हैं। परमात्मा में ध्यान स्थित हो करके और वे नाना प्रकार के यागों को अपने में चयन करते रहे हैं। यह संसार एक प्रकार की यज्ञशाला के रूप में परिणित हो रहा है। ऋषि-मुनि अपने में विद्यमान हो करके इस संसार के ऊपर नाना प्रकार की कल्पनाएं करते रहे हैं। उन्होंने इसको वास्तविक रूप में भी दृष्टिपात करने का प्रयास किया है। इस संसार को किन्हीं आचार्यों ने यथार्थ रूप से अध्ययन किया है परन्तु नाना दार्शनिक जब विद्यमान होते हैं तो अपनी-अपनी कल्पनाएं, अपना विचार देकर अपने को उद्‌गीत बनाना चाहते हैं कि यह संसार तो गान विद्या में रत्त हो रहा है। परमात्मा भी गान गा रहा है और प्रत्येक अणु और परमाणु एक दूसरे में संघर्ष हो करके वे अपने में गान गा रहे हैं, मानो नृत्य हो रहा है। हमारे आचार्यों ने नाना प्रकार के यागों का वर्णन किया है और गानवेत्ताओं ने भिन्न-भिन्न प्रकार के गान का वर्णन किया है। साम भूतम् गायन ब्र्व्हे वृतम्, गान गाने वाला तन्मय हो करके गाता है तो सभा शून्य हो जाती है और शून्य सभा भी मानो, अपनी-अपनी वृत्तियों में रत्त हो जाती है और ऊर्ध्वा में जब वह गान गाता है तो हिंसक प्राणी भी मौन हो जाते हैं।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है कि जब चाक्राणी गार्गी, भयंकर वनों में जहां कोई प्राणी नहीं है, वहां निर्जन स्थानों में सामगान गा रही है। उद्‌गीत और माला पाठ में जब गान वह गाने लगी तो सर्पराज, सिंहराज भयंकर

वनों के प्राणी उनके गान को श्रवण करने लगे। प्रत्येक प्राणी हिंसा का त्याग करके और अहिंसक बन करके गान को श्रवण करता है क्योंकि वह परमात्मा की वाणी है। गायक जब अपने हृदय का परमात्मा के हृदय से आलिंगन करता गान गाता है तो कौन ऐसा अभागा प्राणी है जो अपने पिता-मातृ के शब्दों को, उनकी वृत्तियों को नहीं धारण करता। प्रत्येक बालक अपने माता पिता की प्रसन्नता चाहता है। परमपिता परमात्मा सब का पितर है और जब मानव पितरों का गान गाता है तो हिंसक, सर्पराज, मृगराज सब उस परमपिता परमात्मा के पुत्र तुल्य हैं और वे हिंसा को त्याग करके अहिंसा में परिणित हो जाते हैं, गान को श्रवण करने लगते हैं।

बेटा! हमारे पूज्यपाद गुरु जब गान गाते थे तो सर्वत्र प्राणी अपने में मौन हो जाते थे और हम उनसे यह प्रश्न करते कि महाराज यह क्या कारण है? चाक्राणी से भी यह प्रश्न किया गया तो उन्होंने कहा कि वर्षम् ब्रव्हे: कर्तम् देवम् ब्रह्मा करणम् सूति देवा: अग्नम् भूतम् देवत्वम् अप्रति देवो ब्रह्मणे आपा: वतम् देवम् ब्रह्मा: कृति देवत्वम् अप्रत्म् वायु वसुतम् प्रसुन्ध वृत्तिया। ऐसा वेद मन्त्रों का उन्होंने गीत गाया और यह कहा कि कौन प्राणी ऐसा है, जिसमें देवता नहीं वास करते हैं। जैसे मानव के शरीर में आत्मा विद्यमान है इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी के अपने लोक में उसका आत्मा निहित रहता है। जैसे मानव के शरीर में आत्मा का लोक यह पंच महाभूत माने गये हैं, पंच देवत्व माने गए हैं, इसी प्रकार चाहे वह सर्पराज के रूप में है, चाहे वह सिंहराज के रूप में है, चाहे वह गऊ इत्यादि के रूप में है, कोई भी प्राणी मात्र हो उसमें आत्मा का जो वास है, वह पंच महाभूतों की आभा में रत्त रहता है और परमपिता परमात्मा से वह सर्वत्र पिरोया हुआ है। जैसे मुनिवरो! मैंने इससे पूर्वकाल में कहा है कि ग्यारह होताओं के द्वारा मनस्तव ब्रह्मे, दसों इन्द्रियों के द्वारा मन उसमें पिरोया रहता है और यह ग्यारह होता प्राय: यज्ञशाला में निहित होते हैं। इसी प्रकार चाक्राणी ने कहा कि जब मैं

गान गाती हूं तो प्रत्येक प्राणी मात्र हिंसा को त्याग देता है और वह ओजस्व को प्राप्त होता हुआ अपने पितरों की महिमा को श्रवण करता है। क्योंकि परमपिता परमात्मा पितर है और वे पितर ही परम ब्रह्मा, वह पितरों की आभा को प्राप्त करता हुआ अपने में सौभाग्यशाली कहा करता है।

मेरे प्यारे! देखो, एक सर्पराज रेंगता हुआ चाक्राणी के चरणों को स्पर्श कर रहा है। जब यह प्रश्न किया गया कि यह क्यों तुम्हारे चरणों को स्पर्श कर रहा है तो चाक्राणी ने कहा कि शम्भो वरुणम् ब्रह्मा गायात्वाम् देवत्वम् ब्रह्मा। ज्ञान, आत्मा का प्रतीक है, आत्मा में ज्ञान होता है। जब विद्यालय में मानव गान अथवा ज्ञान को प्राप्त करने के लिए जाता है तो ज्ञान केवल उसके आत्मा में निहित होता है। पंच महा होताओं के रूप में वह विद्यमान होता है तो ज्ञानी, जन्म् ब्रह्मा कृतम्, विद्या के द्वारा उसे उद्बुद्ध करता है। प्राणी मात्र जब ज्ञान को श्रवण कर उद्बुद्ध करता है तो वह ज्ञानवेत्ता के चरणों की वन्दना करता है। आचार्यकुल में ब्रह्मचारी अपने गुरु के चरणों को आलिंगन करता रहता है और उसको स्पर्श करके अपने में सौभाग्य स्वीकार करता है, इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी अपने लिए सौभाग्य को स्वीकार करता है। प्राणीमात्र भी प्रभु की पिपासा का पिपासु बना हुआ है। देखो, अमृतम् ब्रह्म, जब वह शान्त मुद्रा में होता है तो उस समय वह परमात्मा का ध्यान करता है। कोई प्राणी ऐसा नहीं है जो प्रभु का गान न गाता हो, **कोई प्राणी ऐसा नहीं है जो प्रभु के ज्ञान का उत्सुक न हो।** वह उत्साही रहता है और उत्साह में एक ही चरण रहता है कि मैं परमात्मा की प्रतिभा को जानने वाला बनूं। प्राणी मात्रम् ब्रहे, प्राणी मात्र में एक मानव ऐसा है जो सदैव परमपिता परमात्मा को गान रूप से गाता हुआ सबको मोहित कर देता है। अन्तरिक्ष में गमन करने वाले पक्षीगण और पृथ्वी पर रहने वाले जितने भी चतुष्पाद वाले हैं, वह सदैव उसकी भाषा का सन्तुलन कर लेते हैं, बेटा! वह अपने में ज्ञानवान बन करके सम्पर्क से ज्ञानी बन जाते हैं। वेद मन्त्र कहता है कि प्रत्येक प्राणी

मात्र उस परमपिता परमात्मा को पाना चाहता है। श्रोत्रो में पहि; नेत्रों में पाहि, ज्ञान में पाहि, मैं उसको सर्वत्र पाना चाहता हूं।

वेद का मन्त्र उद्गीत गाते हुए जब यज्ञदत ब्रह्मचारी ने यह प्रश्न किया कि महाराज यजमान याग करना चाहता है तो कितने होताओं के द्वारा वह याग करे तो याज्ञवल्क्य ऋषि ने कहा कि ग्यारह होताओं के द्वारा याग होना चाहिए क्योंकि दस इन्द्रियां और ग्यारहवां मन है। इन इन्द्रियों और मन, दोनों को मानव पवित्र बनाना चाहता है। देखो, पांच कर्म इन्द्रियां हैं, उनसे कर्म की विचित्रता को वह दृष्टिपात करता है और यह जानना चाहता है कि मैं वास्तव में उन देवताओं को जानूं जो देवता मेरे को कर्म की प्रेरणा दे रहे हैं,मैं उनसे प्रेरित हो करके कर्म में लिप्त हो जाता हूं, कर्म करने लगता हूं। यह जो पांच कर्म इन्द्रियां हैं, इन कर्म इन्द्रियों को ले करके वेद के द्वारा याग करूं जिससे मेरे जीवन में सुगन्धि आ जाए। बेटा! ऋषि-मुनियों ने पिंडम् ब्रह्मा कृतम, पिंड और ब्रह्मांड को एक सूत्र में लाने का प्रयास करने के पश्चात् आध्यात्मिक और भौतिकवाद, दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास किया तथा आध्यात्मिक याग और भौतिक याग दोनों को ऊर्ध्वा में लाने का प्रयास किया। बेटा! दस इन्द्रियों को वह एकत्रित करता हुआ मन का सूत्र बना लेता है और मन में इन्द्रियों को सूत्रित करके उसको माला बना लेता है और माला बना करके अपनी यज्ञशाला में याग करता है और मन को एकाग्र करता हुआ इन्द्रियों के प्रत्येक ज्ञान को अपने में समावेश करता रहता है।

वाणी का अनुशासन

मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय ऋषि व्रेतकेतु अंगिरस इन्द्रियों के ऊपर अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने अपने में मौन धारण किया तो वाणी के ऊपर उनका आधिपत्य हो गया और अपने संस्कारों को जानने की उनकी उत्सुकता बनी। उन्होंने विचारा कि मेरे चित्त में, अन्त:करण में जो नाना प्रकार

के संस्कार विद्यमान हैं, मैं उन संस्कारों का साक्षात्कार करना चाहता हूं। वह अपने में विचारने लगे, चिन्तन करने लगे। वह कहीं वायु का सेवन करते, कहीं अन्नाद का सेवन करते, कहीं अन्नाद को खरल बना कर पान करते। जब उनका आहार पवित्र बन गया तो मन पवित्र बन गया और मन के पवित्र बन जाने से जब इन्द्रियां अपने में समाहित हो गई तो चित्त के संस्कार मन के द्वारा ही उद्बुद्ध होने लगे। मुझे स्मरण आता है कि ८५ वर्ष तक उन्होंने मौन धारण किया और पिच्चासी वर्षों में इस प्रकार का याग करते उन्होंने आध्यात्मिकवाद को अच्छी प्रकार से जाना। ऋषि इस प्रकार का अध्ययन करते रहे कि मैं प्रत्येक इन्द्रियों का समूह बना करके चित्त के मंडल में ले जाना चाहता हूं। बेटा! लाखों वर्षों के जन्मों के संस्कारों को उन्होंने साक्षात्कार किया क्योंकि वे सब चित्तमंडल में विद्यमान थे।

बेटा! उन्होंने वाणी और आहार के ऊपर अनुशासन किया। **मानव जितना मौन रहता है, सार्थक चिन्तन करता है तो उतना ही उसका जीवन बलवान होता है, पवित्रता को प्राप्त कर लेता है।** इसी प्रकार उसका समन्वय मन से रहता है। प्रत्येक इन्द्रिय का जब इसी प्रकार चित्त के संस्कारों से समन्वय होता है तो उन संस्कारों को वह उद्बुद्ध करता है। जब उसके संस्कार साक्षात्कार से बलवान हो जाते हैं तो बेटा! वह यह जान लेता है कि कितनी आयु को प्राप्त हो करके वह शरीरान्तम् ब्रह्मा, अपने स्थूल शरीर को कब त्यागेगा, उसे यह भान हो जाता है।

माता गान्धारी का नेत्र अनुष्ठान

बेटा! विचार-विनिमय यह कि चक्षु वाणी ब्रह्म में पाहि, हम वाणी में नियन्त्रण पाना चाहते हैं तो चक्षु को नियन्त्रण में किया जाए। जो सदैव सत्य ही उच्चारण करता है, सत्य ही दृष्टिपात करता है तो उसके नेत्रों में ज्योति उत्पन्न हो जाती है और वह ज्योति इस प्रकार की है कि वह शरीरों

को, इस प्रकार के दृष्टिपात से, वज्र बनाना चाहता है तो उसी प्रकार का बन जाता है। बेटा! नेत्रों में कुदृष्टिपात करने वाला प्राणी नहीं होगा तो उसके नेत्रों में इस प्रकार की ज्योति का उसे भान हो जाता है, उसका सांस्कारिक जीवन बन करके नेत्रों में प्रबलता आ जाती है।

बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है कि महाभारत काल में देवी गान्धारी बाल्यकाल से जब गृह में प्रविष्ट हुई तो उसने अपने पति को नेत्रों से हीन दृष्टिपात किया। उसी समय गान्धारी ने अपने नेत्रों को वस्त्रों से ढकायमान कर लिया और ज्ञानाम् ब्रह्मे वृतम:, उसकी कोई ज्योति द्वितीय स्थानों में नहीं जाती थी। केवल अन्तर्हृदय में, आन्तरिक जगत में ही उसकी महान ज्योति पनपती रही। महाभारत का काल समाप्त होने लगा तो धर्मराज युधिष्ठिर ने यह कहा कि हे दुर्योधन! तुम माता के समीप चले जाओ और वे तुम्हारे लिये कोई न कोई उद्गीत गायेंगी। दुर्योधन ने कहा कि किस दशा में जाऊं? उन्होंने कहा कि नग्न होकर चले जाओ। कृष्ण जी को जब यह प्रतीत हुआ कि इससे तो महाभारत ही समाप्त हो जाएगा तो उसी समय अर्जुन और कृष्ण इत्यादियों ने दुर्योधन से कहा कि तुम माता के समीप नग्न जाओगे? तो देखो, दुर्योधन ने केलअसुतम्, वृक्ष के पत्तों से शरीर को ढांप लिया। वह गान्धारी के समीप पहुंचा और बोला कि दृष्टिपातम् ब्रह्मे, हे माता! तू दृष्टिपात कर जिससे मेरा शरीर वज्र हो जाए क्योंकि तूने सदैव जीवन में तपस्या की है, नेत्रों से कभी भी कुदृष्टिपात नहीं किया है, तुम्हारे नेत्र तपे हुए हैं और तेरी जो अमूल्य ज्योति है, अग्नि का उसमें वास है, वह मेरे शरीर को अग्नि तुल्य बना सकता है। माता गन्धारी ने अपने नेत्रों से उस वस्त्र को दूर किया और कहा कि क्या तुम्हें रास्ते में कोई प्राप्त हो गया? दुर्योधन ने कहा कि हे माता! मुझे कृष्ण और अर्जुन का दर्शन हुआ।गान्धारी ने कहा कि जाओ तुम्हारा शरीर वज्र नहीं बना है। ब्रह्मवे कृत्ये देवत्वम्, जब हम ध्यानावस्थित हो जाते हैं तो नेत्रों की ज्योति अपने में बड़ी प्रबल बन करके रहती है।

बेटा! मुझे स्मरण है कि कागभुषंड जी की ज्योति भी इतनी प्रबल रही। अनुष्ठान करते हुए उन्होंने महर्षि लोमश ऋषि से यह कहा कि महाराज! मैं अपने नेत्रों की ज्योति को प्रबल बनाना चाहता हूं तो लोमश ऋषि ने कहा कि तुम बारह वर्ष का अनुष्ठान करो। उन्होंने बारह वर्ष का अनुष्ठान किया। उन्होंने यज्ञ किया और उसी की तरंगों को ही दृष्टिपात करते रहे। याग की उसी अग्नि को, तरंगों में अव्रत दृष्टिपात करते बारह वर्ष का उनका अभ्यास इतना प्रबल हो गया, उनके नेत्रों में इतनी ज्योति उत्पन्न हो गई कि वह जान लेते थे कि यह अग्नि की तरंगें कहां जा रही हैं। कोई तरंगें द्यौ लोक को जा रही हैं, कोई तरंगें अपने गृह में प्रवेश कर रही हैं, कोई तरंगें मानव की वाणी रूप बन करके शब्द के रूप में परिणित हो रही हैं। विचार आता रहता है बेटा! जब हम नेत्रों की ज्योति को पवित्र बनाना चाहते हैं, वाणी को पवित्र बनाना चाहते हैं तो प्रत्येक इन्द्रियों का समन्वय करता हुआ वह कहता है- चक्षु मे पाहि, हम उस परमपिता परमात्मा को चक्षुओं के द्वारा पाना चाहते हैं। परन्तु चक्षुओं से उनका विषय प्राप्त हो जाता है, परमात्मा प्राप्त नहीं होता है। देखो, जो इन्द्रिय जिस विषय को जानना चाहती है, जिस विषय का उस पर पटल लगा हुआ है, जिससे उसका समन्वय रहता है, वह उसी को जानने वाली बनती है।

विचारों का अनुशासन

मेरे पुत्रो! महर्षि कागभुषंड जी ने इस प्रकार का अभ्यास बारह वर्ष किया। वह यज्ञ की ज्योति में, याग की तरंगों में चित्रों को दृष्टिपात करते अन्तर्मुखी हो जाते। एक समय वृतिका ऋषि ने किसी कारणवश विद्यालय में ब्रह्मचारियों को दंडित किया और अगले दिवस तमोगुण उनके हृदय में बना रहा तो उन्होंने कहा कि मैं कुछ भ्रमण कर आऊं। वह कागभुषंड जी के द्वार पर पहुंचे। कागभुषंड जी उस समय प्रात:कालीन याग कर रहे थे तो याग में वृतिका ऋषि भी उनके साथ में हूत करने लगे। कागभुषंड जी

का जीवन इतना अभ्यस्त हो गया था कि वृतिका ऋषि के स्वाहा शब्द उच्चारण में उन्हें तमोगुण दृष्टिपात आने लगा। कागभुषंड जी ने कहा कि ऋषिवर! मैं तो अनुष्ठान कर रहा हूं और ऋषि-मुनि इसलिए अनुष्ठान करते हैं कि वायुमंडल उनकी तरंगों से पवित्र हो जाए। वह देवत्वम् को प्राप्त हो जाए, उसका आहार व्यवहार देवत्व हो, देवत्व ही दृष्टिपात हो और श्रोत्रों में शब्दों की देवत्व प्रतिभा आ जाए, देवत्व ही उससे सुगन्धित हो जाए। इस प्रकार मैं सुगन्धित होना चाहता हूं और तुम मेरे याग में आहुति देकर उसे तमोगुणी बनाना चाहते हो। वृतिका ऋषि ने कहा कि प्रभु! आप यथार्थ उच्चारण कर रहे हो। मेरे हृदय में तमोगुण-रजोगुण छा गया और मैंने कल ब्रह्मचारियों को दंडित किया। वह विचार, वह तरंगें मेरे अन्तर्हृदय में बनी हुई हैं। कागभुषंड ऋषि ने कहा कि तुमने मेरे अनुष्ठान को क्यों दूषित किया है? वृतिका ऋषि ने उनके चरणों में ओतप्रोत हो कर कहा कि हे प्रभु! मुझे क्षमा कीजिए, प्रभु! मैं क्षमा का पात्र हूं। प्रभु! अमृतम् ब्रह्मा, क्योंकि आप ऋषि हैं। कागभुषंड जी ने कहा कि जाओ, मैंने तुम्हें क्षमा किया। अब तुम अपने विद्यालय में चले जाओ और अपने विचारों को सतोगुणी बनाते जाओ क्योंकि विद्यालय भी तरंगों से ऊंचा बनेगा। तरंगों में तमोगुण रहेगा, रजोगुण बना रहेगा तो दर्शनों से गुथे हुए शब्द भी तमोगुणी हो करके ब्रह्मचारियों के हृदय में प्रविष्ट हो जाएंगे और वह ब्रह्मचारी राष्ट्र के, समाज के हित में नहीं हो सकते, उनका आध्यात्मिकवाद पूर्णता को प्राप्त नहीं होगा।

मेरे प्यारे! जैसे सुयोग्य माता अपने बाल्यों को अपनी लोरियों में धारण करती हुई, लोरियों का पान कराती हुई बाल्य के श्रोत्रों में आध्यात्मिकवाद की पुट दे देती है तो बालक माता के उन शब्दों से संस्कारित हो जाता है। वह इससे संस्कारित हो करके,संस्कारों को ले करके जगत में भ्रमण करता है और वह अपने जीवन को महान बनाने का प्रयास करता है। कागभुषंड जी ने जब ऐसा कहा तो वृतिका ऋषि ने नतमस्तक होकर उनके चरणों की

वन्दना करके कहा कि प्रभु! आप धन्य हैं, आपने मुझे उपदेश दिया है। मैं उपदेश का पात्र तो नहीं परन्तु मैं प्रयास करूंगा। उन्होंने ऋषि के आश्रम को त्याग करके अपने आश्रम में प्रवेश किया। ब्रह्मचारियों ने उनका स्वागत किया। वृतिका ऋषि तपस्या करने लगे और जो भी उन्हें तपस्या में प्रेरणा प्राप्त होती, उसे वह ब्रह्मचारियों को देते रहते।

मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण आता रहता है कि भारद्वाज मुनि महाराज ने विद्यालय में एक ऐसे यन्त्र का निर्माण किया था कि जब किसी ऋषि के हृदय में या शिक्षा देने वाले के हृदय में जब कोई तमोगुण की मात्रा आती तो वह ब्रह्मचारियों के हृदय में प्रवेश होती हुई उस यंत्र में दृष्टिपात आती। बेटा! महर्षि भारद्वाज मुनि के यहां कबन्धि, सुकेता और प्रदेसु इत्यादि ब्रह्मचारियों ने उन यन्त्रों का निर्माण किया था। एक समय यन्त्र विद्यालय में विद्यमान था और महर्षि सुवेनकेतु महाराज जब शिक्षा दे रहे थे तो उनके हृदय में रजोगुण और तमोगुण की मात्रा उत्पन्न हो गई। यन्त्रों में जब चित्र आने लगे तो ब्रह्मचारी सुकेता ने कहा कि हे ऋषिवर! आपके हृदय में रजोगुण-तमोगुण छा गया है और वह चित्र आपकी दृष्टि से, जिनको शिक्षा दे रहे हो, उनके हृदय में जाते हुए दृष्टिपात आ रहे हैं। आचार्य कहते हैं कि विद्यालय जब ऊंचे बनते हैं, शिक्षा प्रणाली जब पवित्र बनती है जब विचार देने वाले के विचार पवित्र होते हैं, विचारों में महानता और तपस्या की सुगन्ध होती है। तपस्या की तरंगें विचारों में निहित हो करके ब्रह्मचारियों के हृदय में प्रवेश करती हैं तो वही तरंगें तरंगित हो करके जीवन को ऊंचा बनाती हैं।

बेटा! विचार-विनिमय क्या कि ऋषि-मुनियों का उपदेश और उनके जीवन में जितने अनुष्ठान रहे हैं, उन अनुष्ठानों का अभिप्राय यही रहा है कि प्रत्येक इन्द्रिय को हम संयम में लाएं। प्रत्येक इन्द्रिय को संयम में जो लाना जानता है वह मृत्युंजय बन जाता है और मृत्यु को इच्छा के अनुसार

त्यागने का प्रयास करता है। मैनें कई कालों में तुम्हें वर्णन किया है कि माता मल्दालसा का जीवन भी इस प्रकार का रहा है। वह सदैव तपस्या में रमण करती हुई सन्तान को शिक्षा देतीं। अपने बाल्यकाल में ही उन्होंने आचार्यों से यह कहा था कि मैं अपनी इच्छा के अनुसार शरीर को त्याग दूंगी। और आचार्यों का भी वर्णन ऐसे ही रहा है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपने विद्यालय में ब्रह्म सूत्रों का अध्ययन करते प्रत्येक इन्द्रिय के ऊपर अनुष्ठान करते रहे। अनुष्ठान का अभिप्राय यह है कि व्रति उसी प्रकार का व्रत धारण करे और वहीं अंकुर हमारे अन्तःकरण में प्रवेश कर जाते हैं तो वही तरंगें बन जाती हैं और वही तरंगें वायुमंडल को पवित्र बनाती हैं। तपस्वी जिस स्थलि पर रहते हैं, उसको पवित्रता की वेदी पर ले जाते हैं।

बेटा! विचार आता है कि ऋषि-मुनियों का जीवन तपोमय रहा है। मानव का शरीर प्राणों से जकड़ा हुआ है। प्राणों में परमेश्वर रहता है और उसी में रत्त रहता हुआ वह उसी में प्रतिष्ठित हो जाता है। इसी प्रकार यह प्रत्येक इन्द्रियों का विषय जब यह मानव के मन में जकड़ा जाता है तो वह स्तम्भ बन करके उसी से स्थाणु बन जाता है। जैसे गऊ के बछड़े को धुरी से कुन्डित कर लेते हैं और वह वहीं गमन करता रहता है, इसी प्रकार मन को प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों से लाभान्वित करके वायुमंडल को पवित्र बनाने का प्रयास करे तो साधक तब अपनी साधना में पूर्णता को प्राप्त होता है। मेरे प्यारे! जो इन्द्रियों के ऊपर संयम करता है, इन्द्रियों के विषयों को जानता है, वही इन्द्रियों को चेत करने वाला अपनी इच्छा से अपने शरीर को त्यागता है क्योंकि मन, बुद्धि, दोनों का समन्वय रहता है, प्राणों का मन से सम्बन्ध रहता है। इन्द्रियों में जो क्रिया होती है, वह प्राण की होती है जो ज्ञान को विभाजित करती हैं वह विभाजन केवल प्राण और मन के द्वारा होता है और दोनों की विभक्त क्रिया को जानने वाला साधक है।

ब्रह्म हत्या

बेटा! मुझे बहुत से ऋषि-मुनियों का जीवन प्राय: स्मरण आता रहता है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज जब ब्रह्म सूत्रों का अध्ययन करते ब्रह्मवेत्ता बन गए तो उनकी वाणी में इतना ओज था कि बिना ब्रह्मवेत्ताओं के किसी को उद्‌गीत नहीं गाते थे परन्तु अपने में दृढ़ रहते थे। मृत्यु आ जाए, कहीं चले जायें परन्तु अपनी वाणी का इतना दृढ़ निश्चय कि आत्मा ब्रहे:, उद्‌गीत गाते रहते। अपने में कोई दंडित करने वाला आ जाए तो भी वह नम्रता का श्वास लेता था। विचार क्या कि महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपनी इन्द्रियों पर जय करने वाले ब्रह्मवेत्ता थे। **जिसकी इन्द्रियों पर जय नहीं होती उसको ब्रह्मयाग का भी अधिकार नहीं होता।** वशिष्ठ मुनि महाराज से एक समय माता अरुन्धति ने कहा कि हे प्रभु! वेद मन्त्रों में ब्रह्म हत्या का वर्णन आता है, यह क्या है? क्योंकि आप ब्राह्मण हैं, आप ब्रह्मवेत्ता हैं, मुझे निर्णय कराईये। रात्रि का समय था चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओं से युक्त था तो उस समय उन्होंने कहा कि हे देवी! ब्रह्म हत्या के सम्बन्ध में तुम क्यों जानना चाहती हो? माता अरुन्धति ने कहा कि प्रभु! वेद में आया है। मैं आज प्रात:काल जब ब्रह्मचारियों के मध्य में विद्यालय में थी तो अध्ययन करते हुए ब्रह्म हत्या का वर्णन आया। ब्रह्मणो वाचमं हत्याम् भूतम प्रव्हे लोका ब्रव्हे ब्रह्म व्रत्म, वेद का ऋषि कहता है कि हे मानव! तू यदि ब्रह्म को जानना चाहता है तो ब्रह्म हत्या न कर और यदि तू ब्रह्म हत्या करेगा तो तू ब्रह्म को नहीं जानेगा। ऐसा वेद में आया है। प्रभु! मैं आपसे जानना चाहती हूं क्योंकि यह मन में आशंका बनी हुई है। वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि देवी! तुम्हें यह आशंका क्यों बनी? माता अरुन्धति ने कहा कि प्रभु! मुझे जिज्ञासा बनी है। वशिष्ठ मुनि ने कहा कि हां, जिज्ञासु बन करके तुम प्रश्न करो।

देवी ने जब जिज्ञासा के रूप में प्रश्न किया तो वशिष्ठ ऋषि ने कहा कि देवम् ब्रह्माव्रते, हे देवी! देखो वाह्य जगत में ब्रह्म हत्या यह है कि

जो बुद्धिमान ब्राह्मण है और ब्रह्मवेत्ता है, उसका अपमान न करो और आन्तरिक जगत में ब्रह्म हत्या का अभिप्राय यह है कि आत्मा से जो सुप्रेरणा आती है उसको तुम दमन न करो, उसकी हत्या न करो। जो आत्मा की आज्ञा के अनुसार अपने जीवन को व्यतीत करता है, उसकी प्रेरणा की अवेहलना करता है, जो लज्जा-शंका की अवेहलना करता है, **जिस कर्म के करने में लज्जा-शंका उत्पन्न हो वही ब्रह्म हत्या है।** वह प्रेरणा जब प्राप्त होती है तो उसी को हम अशुद्ध जान करके त्यागने का प्रयास करें क्योंकि जो आत्मा इस शरीर में विद्यमान है, उसे ब्रह्म कहते हैं और उस आत्मा की प्रेरणा को जो मानव तिरस्कृत कर देता है वह मानो, ब्रह्म हत्या करता है। इसीलिए वेद मन्त्र कहता है कि हे मानव! तू ब्रह्म हत्या न कर। यदि तुम्हें प्रभु को प्राप्त करना है, यदि तुझे तपस्वी बनना है तो तू आत्मा की हत्या न कर। आत्मा ब्रह्म है, अतः यह ब्रह्म हत्या कहलाती है। जो विचार आन्तरिक जगत से उत्पन्न होते हैं, वही तो एक विचार हैं, वही तो महान हैं, वही तो मानव को पवित्र बनाते हैं। मेरे प्यारे! ऋषि ने इस प्रकार वर्णन किया तो देवी बड़ी प्रसन्न हुई और देवी ने कहा कि प्रभु! आप धन्य हैं।

बेटा! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूं। विचार केवल यह कि गायक जो अपने में अपने प्रभु का गान गाता है, उसे उद्गीत कहते हैं। उसे माला पाठ में गायक अपने में परिवर्तित कर लेता है, हृदय का हृदय से समन्वय हो जाता है तो उसे पंचीकरण का भान हो जाता है। पंचीकरण जो पांचों इन्द्रियों का विषय है, अन्तःकरण का विषय है, वह प्राण में समाहित हो जाता है। प्राण और मन के माध्यम से ही और आत्मा का हृदय में आलंगित करके गायक जब गान गाता है तो चाहे वह सिंह रूप में है, चाहे वह सर्पराज के रूप में है, उन सब का हृदय से हृदय का समन्वय हो करके वह अहिंसा में परिणित हो जाता है, उसका हृदय परिवर्तन हो

जाता है और उनमें एक महानता का जन्म हो जाता है। मेरे प्यारे! वेद का ऋषि याज्ञवल्क्य कहता है कि हे ब्रह्मवेत्ता! तुम्हें यदि याज्ञिक बनना है तो तुम ग्यारह होताओं के द्वारा याग करो, तुम प्रत्येक इन्द्रिय को जानने का प्रयास करो, इन्द्रियों से जन्म जन्मान्तरों के संस्कार उद्‌बुद्ध होते है। **इन्द्रियों के मौन रहने से चित्त के अन्तरिक्ष में आत्म-बोध होता है** और प्रत्येक इन्द्रिय को जानने वाला अपनी इच्छा से अपने शरीर को जानने लगता है।

विचार केवल यह कि ऋषि-मुनियों का अपना कर्तव्य, क्रियाकलाप बड़ा विचित्र रहा है। उस क्रियाकलाप को ले करके हम अपने जीवन को महान् बनाने का प्रयास करें। वेद के ऋषि ने कहा कि हे यज्ञदत! यदि यजमान बनना है तो आध्यात्मिकवाद में इन्द्रियों के ऊपर जय होना चाहिए और मन उनका वृत्त रहना चाहिए। देवताओं के लोक में आत्मा विद्यमान है तो तू ब्रह्म हत्या न कर। इन्द्रियों के स्वादेन में आ करके यदि तू ब्रह्म हत्या करेगा तो उस समय परमपिता परमात्मा तेरे से उन इन्द्रियों को दूर कर देगा और इन्द्रियों से हीनता को प्राप्त हो तू नाना प्रकार की योनियों को प्राप्त करता रहेगा। बेटा! आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि ग्यारह होताओं के द्वारा मानव को याग करना चाहिये। भागम् भूतम ब्रह्मे, देखो, **मन-प्राण को एकाग्र करता हुआ जो इन्द्रियों को जय करता है, वह संसार को विजय करने का प्रयास करता है।** इन्द्रियों पर विजय करना तेरा कर्त्तव्य है, मानव तू अपनी इस प्रेरणा को जान करके, प्रेरित हो करके अपने जीवन को उद्‌बुद्ध करने का विचार कर। यह है बेटा! आज का वाक्य, अब मुझे समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक्य समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

अमृतसर
८-१-१९९२

यज्ञ के नौ होता

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले आ रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि 'वेदाम् भूतम् प्रामाणम् ब्रव्हा वृत्ती:, यह वेदवाणी मानव को प्रकाश में लाती है और अन्धकार से दूर करने वाली है, इसीलिए प्रकाश को हम अपने में धारण करते रहें। प्रकाश नाम ज्ञान का माना गया है। जो मानव ज्ञान के प्रकाश में अपने जीवन में जागरूक रहता है वह मानव देवत्व को प्राप्त होता है तो इसीलिए जागरूक रहना चाहिए, जाग ज्ञानम् ब्रह्मे:, ज्ञानयुक्त रहना चाहिए। वही मानव जागरूक रहता है जिसके द्वारा ज्ञान है और यदि ज्ञान नहीं तो मानव जागता नहीं, वह अपने में महान नहीं बनता। देवत्व को प्राप्त होना बहुत अनिवार्य है क्योंकि देवत्व को प्राप्त करके वह देवताओं की सभाओं में सुशोभनीय होता है। इसी प्रकार मेरी पुत्री जब वीरांगना बन करके अपने आत्मज्ञान के द्वारा रत्त हो करके गमन करती है और वह अपने में ज्ञान को उत्पन्न करती हुई ज्ञान को जानती रहती है तो मां अमृतम, वह पुत्री देवत्व को प्राप्त होती है। इसी प्रकार **प्रत्येक मानव को वेद प्रकाश को अपने अन्त:करण का प्रकाश बना लेना चाहिए**। वह प्रकाश ही मानव को मानवीयता में परिणित कर देता है, देवत्व और प्रभु का दर्शन करा देता है।

वेद का मन्त्र कहता है कि प्रकाशाम् भविते वरुणेसुतम्, मानव को प्रकाश में जागरूक रहना चाहिए। जो प्रकाश में रत्त रहता है, वह जागता रहता है। आओ मेरे प्यारे! मैंने तुम्हें कई काल मे प्रकट करते हुए कहा था और आज भी मुझे नाना वर्ताएं स्मरण आती रहती हैं। जब इन्हीं वेद मन्त्रों का अध्ययन राजा करता है तो राष्ट्र भी अपने में जागरूक रहता है। इससे पूर्व काल में मेरे पुत्र महानन्द जी ने अपने विचार दिये थे कि राजा को जागरूक रहना चाहिए। देखो, जब राजा ब्रह्मज्ञान में जागरूक रहता है तो वह पुरोहितों के द्वारा अपना विचार-विनिमय करता है और वह प्रत्येक इन्द्रिय को प्रकाश में लाने का प्रयास करता है तो वह ब्रह्मवेत्ता बन करके राष्ट्र का शासक बनता है। सुनीति नाम के राजा के हृदय में वेद मन्त्र स्मरण आते रहे। जागने के लिए बारम्बार वेद का मन्त्र हमें यह उद्गीत गाता रहा है कि हे मानव! तू जागरूक बन और ब्रह्म के समीप चल क्योंकि ब्रह्म के प्रकाश में जब तू चला जाएगा तो सदैव जागरूक रहेगा। जब राजा के समीप यह वाक्य आया, वेद मन्त्र आए तो वे तपस्या में परिणित हो गए।

मेरे प्यारे! कई समय से मैं, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के विद्यालय में जो ब्रह्मचारियों को नैतिकता प्रदान की जाती थी, उसकी विवेचना कर रहा हूं और विश्वामित्रम् ब्रह्मा राजा की चर्चाएं हो रही हैं क्योंकि राजा को अमृत का पान करना है। बेटा! ज्ञान को अमृत कहते हैं, विवेक को अमृत कहते हैं और उस अमृत पान से ही हमारा जीवन एक महानता में सदैव परिणित रहा है। इस प्रकार राष्ट्रीय चर्चाएं भी प्राय: वैदिक साहित्य में आती रही हैं। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज विद्यालय में ब्रह्मचारियों को नैतिक शिक्षा देते कहते हैं कि हे ब्रह्मचारी! तुम्हें याग करना है तो तुम विश्व के मित्र बन जाओ। याग करने वाला जब प्रत्येक इन्द्रिय की याग में आहुति बना करके प्रदान कर देता है तो वह उन नौ द्वारों के ऊपर अपना संयम करता हुआ विश्वामित्र

की भान्ति नेत्रों से विश्व में सबको मित्र की दृष्टि से दृष्टिपात करता है। जो मित्र की दृष्टि से दृष्टिपात करता है वह संसार का मित्र बन जाता है अैर वह नेत्रों से मानो ध्वनियों को अपने में धारण करने लगता है।

याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि हे ब्रह्मचारियो! यह प्रसंग आ रहा है कि यजमान को याग करना है तो याग कैसे करे? ऋषि ने कहा है कि उसका नौ द्वारों के नौ होताओं के द्वारा याग होना चाहिए। संसार की जितनी भी गणना है वह नौ पर आ करके शान्त हो जाती है। जैसे हमारे यहां नौ गणना के अंक माने गए हैं और नौ ही पदार्थ माने गए हैं। मेरे पुत्रो! पंच महाभूत, काल, दिशा, आत्मा और मन, इन नौ से संसार का व्यवधान प्रारम्भ होता है। ये इस ब्रह्मांड के नौ स्तम्भ माने गए हैं और नौ ही द्वार हमारे शरीर में माने गये हैं, जिसमें दो नेत्रों के छिद्र हैं, दो श्रोत्रों के छिद्र हैं, दो घ्राण के छिद्र हैं, एक मुखारबिन्दु है। एक उपस्थ और एक गुदा, यह नौ द्वार हमारे यहां स्वीकार किए जाते हैं। इन नौ द्वारों में नौ ही देवता विद्यमान रहते हैं। कहीं पृथ्वी देवता बन करके देवत्व को प्राप्त करा रही है, कहीं चन्द्रमा देवता बन करके अमृत को पान करा रहा है, कहीं सूर्य देवता बन करके प्रकाश का व्यवधान कर रहा है, कहीं अग्नि देवता बन करके ज्योति में ज्योति का अनुवृत कर रहा है, किसी पर अत्रि है, किसी द्वार पर ब्रह्मणे वशिष्ठ है, इसी प्रकार यह नाना देवता इन्द्रियों के ऊपर विद्यमान हैं। हमें वशिष्ठ भी बनना है और विश्वामित्र भी बनना है। **विश्वामित्र उसे कहते हैं जो अभिमान से रहित होता है,** वह पृथ्वी का स्वामी बन जाता है। मुनिवरो! हमारे नेत्र विश्व को मित्र स्वीकार करते हैं तो हम संसार के मित्र बन जाते हैं, ब्रह्मांड के मित्र बन जाते हैं।

समुद्र मन्थन

इसी प्रकार कश्येपाम् ब्रह्मे वृतम्, कश्यप के बहुत पर्यायवाची शब्द हैं। कश्यप नाम के ऋषि हुये हैं, कश्यप नाम का एक देवता है वह श्रोत्र

में, नेत्र में विद्यमान रहता है। कश्यप के ऊपर मानव एक यह कल्पना करता रहा है कि दैत्य और देवताओं ने शेष नाग की नेती बनाई और सुमेरू पर्वत की रई बना करके समुद्र को मथा तो उसमें से चौदह रत्न निकाले गए। ऐसा कहा जाता है कि नेती जहां स्थिर थी, वह कश्यप कहा जाता है। कश्यप के ऊर्ध्व भाग में सुमेरू पर्वत अपने में स्थिर हो गया तो दैत्य और देवताओं ने मन्थन किया। बेटा! यह तो एक अलंकार है। देखो, कश्यप नाम हमारे यहां श्रोतों को कहा गया है। जब श्रोतों के द्वारा मन्थन किया जाता है तो कश्यपाम् भावा प्रव्हे कश्यपा:, वह कश्यप नेत्रों की ज्योति में संसार को निहारने लगता है और दैत्य और देवता मानो, सुमेरू पर्वत के द्वारा मन्थन करते हैं। देव और असुर दोनों प्रवृत्ति हैं और मन रूपी सुमेरू से वह मन्थन करते हैं और प्राणों की नेती बना करके जब मन का मन्थन किया जाता है तो इससे मुनिवरो! संसार में नाना प्रकार के रत्नों का जन्म होने लगता है। उन रत्नों में बेटा! बहुत से आवृत हैं, जिन पर विराजमान हो करके मानव अपने क्रियाकलापों में तत्पर होता है। कहीं ऊचेश्वर अश्व का नामकरण आता है, कामधेनु गऊ का वर्णन भी आता है, दंड का वर्णन आता है तो यहां एक कलश अमृत का और सुरा का भी उत्पन्न होता है। इसी प्रकार यह चौदह प्रकार के रत्नों का जन्म समुद्र को मन्थन करने से प्राप्त होता है।

जब इस मन रूपी समुद्र का दैत्य और देवताओं के द्वारा मन्थन किया जाता है तो दैत्य और देवता कौन हैं? मानव की एक देव प्रवृत्ति है और दूसरी प्रवृति असुर है, इन दोनों प्रवृत्तियों से मन का मन्थन किया जाता है। मन रूपी सुमेरू का जब मन्थन किया जाता है तो कशपाम् भूतम् ब्रह्मवे:, अन्त में परमात्मा का नाम कश्यप कहा गया है। यहां प्रकरण से जब मन्थन किया जाता है तो मन्थन करने से नाना प्रकार के रत्नों का जन्म होता है। इन रत्नों से वाह्य जगत में तो राष्ट्र और समाज का निर्माण होता है। गो नाम के कई प्रकार के पर्यायवाची हैं। गो, जिसे कामधेनु कहा जाता है, जो सर्वत्र

कामनाओं की पूर्ति करने वाली धेनु है, वह धेनु नाम बुद्धि को कहा गया है। मन से जब उसका समन्वय होता है तो यह बुद्धि के द्वारा ही अपनी कामनाओं की पूर्ति करता है। अश्व नाम घोड़े का है। अश्वम् ब्रह्मा: उच्चश्रवा, घोड़ा जब ऊर्ध्वा में गमन करने वाला हो तो राज्य प्रवृत्ति, राष्ट्रीयता का जन्म होता है, जिस उच्चश्रवा को अपना करके राष्ट्र ऊंचा बनाता है। इसी प्रकार हमारे यहां कलश का वर्णन आता है जिससे औषधियों का नृत बनता है। बेटा! अमृत पान करने वाला भी कलश है, जिसको इन्द्र अपने आसन पर ले जाता है। इन्द्र के यहां से उसको देवता प्रार्थना में ले जाते हैं और उसे पान करते हैं। वह कौन सा इन्द्र है? वह परमात्मा रूपी इन्द्र है। बेटा! इन्द्र नाम वायु को कहा गया है, जिस इन्द्र के द्वारा नाना प्रकार की विद्युत का जन्म होता है और विद्युत से वृष्टि प्रारम्भ होती है। वही वृष्टि पृथ्वी के लिए अमृत है, वही पृथ्वी की प्रतिभा को रत्त रह करके अन्नाद को जन्म देने वाली है मानो, यह पृथ्वी पृथा कहलाती है। यह वसुन्धरा है और नाना प्रकार के खनिज को उत्पन्न करने वाली है, यह अमृतमयी कहलाती है। पान करने वाला जब इस अमृत को पान करता है तो बेटा, उसे अमृत दृष्टिपात आने लगता है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि हे ब्रह्मचारियो! तुम्हें अमृत को प्राप्त करना है, अमृत को अपने में धारण करना है और अमृत को जान करके तुम्हें अमृतमयी बनना है। चन्द्रमा सोम की वृष्टि करता है, सूर्य ऊर्जा देता है, कान्ति देता है, वह वनस्पतियों को परिपक्व बना देता है। यह जो संसार रूपी समुद्र है इस को जानना बहुत अनिवार्य है।

राजर्षि से ब्रह्मर्षि

मैं विश्वामित्र की चर्चा कर रहा था। महाराजा सुनीति नाम के जो राजा थे तो उन्होंने नेत्रों के ऊपर अन्वेषण किया और यह विचारा कि नेत्र तो विश्व का मित्र है। जब तक मैं प्रत्येक को मित्र की दृष्टि से दृष्टिपात

न करूं तब तक मैं मित्र नहीं बनूंगा तो बेटा! उन्होंने नाना गायत्रियों का छन्द सहित पठन-पाठन किया। मुझे उनकी तपस्या का कौतुक स्मरण है जो इतना विचित्र माना गया है कि वह सुनीति से ऋषि विश्वामित्र बने। मुनिवरो! देखो, तपस्यम् ब्रह्मा लोकाम् वाचनम् ब्रह्मे देवा:, वह देवता देवपुरी में रत्त हो जाते हैं। विश्वामित्र जब वशिष्ठ के द्वार पर जाते हैं तब वशिष्ठ ने उनका अभिमान दृष्टिपात करते हुए विश्वामित्र को राजर्षि की उपाधि से अलंकृत किया। विश्वामित्र जी को यह अभिमान हो गया कि मैं राज्य से तो आया हूं इसने मुझे पुन: राष्ट्र में परिणित कर दिया है और उन्होंने वशिष्ठ जी के एक ब्रह्मचारी को दंड दे दिया। मेरे प्यारे! क्रोधाग्नि के जागरूक होने पर और इतना बड़ा दंड देने पर जन्म-जन्मान्तरों के पुण्य समाप्त हो जाते हैं। वे पुण्य जब समाप्त हो गए तो विश्वामित्र जी ने पुन: तपस्या करना प्रारम्भ किया। भयंकर वनों में जा करके उन्होंने मन का दहन प्रारम्भ किया। मन में वहीं तरंगे उन्हें बाध्य करती रहीं कि मैंने क्रोध किया तो मेरा पुण्यवान जीवन समाप्त हो गया है।

बेटा! उन्होंने विचारा कि मैंने एक आश्रम में जा करके एक ब्रह्मचारी को दंडित किया और मृत्यु दंड से मेरे अन्त:करण में जो पुण्यवान कर्म थे, वे नष्ट हो गये हैं। अब मैं क्या करूं और बड़े रुदन के साथ वे पश्चाताप करने लगे। बेटा! उन्होंने वायु का सेवन किया तो वायु का सेवन करने से परमाणुवाद पुन: से उत्पन्न होने लगा। गायत्री छन्दों का पठन-पाठन करते हुए उनका मन स्थिर हो गया। विचार क्या कि मन जब भी स्थिर होगा तो अन्न के द्वारा स्थिर होगा। यदि हमारा अन्न पवित्र है तो मन स्थिर हो जाता है। पवित्रता तब आती है जब अन्न में किसी प्रकार का दोषारोपण नहीं है। सुनीति नाम के राजा जब तपस्या में परिणित हो गए तो उन्होंने छ: माह तक वायु का सेवन किया, अगले छ: माह तक उन्होंने केवल जल को सेवन किया और उसके पश्चात् कुछ अन्न का भी पान किया। देखो, परमाणु वायुमंडल

में स्थिर होते हैं तो मन स्थिर हो करके प्राण के द्वार पर जाता है। कहीं तो प्राण से मन को स्थिर किया जाता है परन्तु मन प्राण के द्वार पर जाता है जैसे माता का प्रिय बालक क्षुधा से पीड़ित हो रहा है और वह माता के द्वार पर जाता है तो माता उसे लोरियों का पान करा कर उसे तृप्त कर देती है। इसी प्रकार यह मन जब प्राण के द्वार जाता है तो प्राण उसे कहता है कि हे सखा! मुझे अपनी लोरियों का पान करा दो। हे प्राणेश्वर! तू संसार को अपने में धारण कर लेता है, तू सूत्र बना हुआ है। परमात्मा का नाम भी प्राणेश्वर है जो इस ब्रह्मांड का सूत्र बना हुआ है। देखो, यह मन जब उस प्राणेश्वर के द्वार पर जाता है तो बुद्धि युक्त हो करके मेधावी प्रज्ञावान और ऋतम्भरा बन करके, यह मन प्राण सूत्र के द्वार पर जाता है। प्राण सूत्र इसे अपना मनका बना लेता है, अपने में धारण कर लेता है। मेरे प्यारे! मन जभी स्थिर होगा जब उसके मूल में जाना होगा।

हमारे ऋषि-मुनि जब भी तपस्या में परिणित हुए हैं तो उन्होंने मन से राष्ट्र का क्रियाकलाप किया और जब तपस्या की और इच्छा आई तो राष्ट्र को त्याग करके भयंकर वन में जा करके तपस्या में परिणत हो गए। **अन्तःकरण को पवित्र बनाना तपस्या है। अन्न जिससे मन स्थिर होगा, उसको हमें शुद्ध करके पान करना है**। मुझे भगवान राम का जीवन स्मरण आता है। लंका को विजय करने के पश्चात् जब अयोध्या में उनका प्रवेश हुआ तो उन्होंने कहा था कि मैं बारह वर्ष तक अपना तपस्या का जीवन व्यतीत करूंगा। उसके पश्चात् मैं किसी राष्ट्रीयता को अपनाऊंगा क्योंकि मेरे अन्तर्हृदय में रजोगुण-तमोगुण छा गये हैं, मैंने संग्राम किया है, मनुष्यों का हनन किया है। मुझे स्मरण है बेटा! राम भयंकर वनों में जा करके वायु और वनस्पतियों का सेवन करते रहे तो बारह वर्ष के पश्चात् उनकी बुद्धि पवित्र बन गई। उसके पश्चात् उन्होंने राष्ट्र को अपनाया। इन्द्रियों की जय और ब्रह्मज्ञान से तपस्वी ही राष्ट्र को ऊंचा बना सकते हैं।

बेटा! विश्वामित्र पुनः जब तपस्या करने लगे तो उन्होंने वायु का सेवन किया, कहीं वनस्पतियों का सेवन किया तो उनका पुण्यवान जीवन पुनः से उत्पन्न हो गया तो वे करोड़ो गायत्री छन्दों का पठन-पाठन करते हुए, अनुष्ठान युक्त हो करके पुनः वशिष्ट मुनि के आश्रम को गमन करते हैं। अस्त्रों-शस्त्रों से युक्त हो करके, अश्व पर सवार हो करके जब वशिष्ठ मुनि के द्वार पर पहुंचे तो वशिष्ठ मुनि ने पुनः कहा कि राजर्षि जी आइये। राजर्षि उच्चारण करते ही विश्वामित्र के हृदय में पुनः अग्नि जागरूक हो गई। द्वेषाग्नि में उन्होंने कहा कि इस ब्राह्मण को, जो अपने को ब्रह्मवेत्ता स्वीकार करता है, मैं इसे आज मृत्यु को पहुंचाऊंगा। विश्वामित्र एक वाटिका में विद्यमान हो गए। पूर्णिमा का दिवस था और वे वाटिका में मृत्यु के लिए स्थिर हैं। माता अरुन्धति और वशिष्ठ मुनि महाराज अपने में चर्चा कर रहे हैं। माता अरुन्धति बोली कि प्रभु! यह चन्द्रमा सोम की वृष्टि करने वाला है। उन्होंने कहा, हां देवी! यह सोम की वृष्टि करता है। देवी ने कहा कि सोम किसे कहते है? वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि वनस्पतियों के रस को सोम कहते हैं। देवी ने कहा कि वनस्पतियों का रस किसे कहते हैं? ऋषि ने कहा कि उसको पान किया जाए जिससे बुद्धि पवित्र बनती है, प्रकाश में आ जाती है। इसीलिए चन्द्रमा अपनी कान्तियों से युक्त हो करके प्रकाशित हो रहा है। देवी ने कहा कि प्रभु! यह चन्द्रमा का प्रकाश बड़ा अद्वितीय कहलाता है। तो वशिष्ठ मुनि ने कहा कि देवी! यह कोई प्रकाश नही, विश्वामित्र की तपस्या का प्रकाश इतना अद्वितीय प्रकाश है कि ऐसे-ऐसे सहस्त्रों चन्द्रमा भी उसकी तपस्या के प्रकाश को आच्छादित नहीं कर सकते।

जब यह वाक्य ऋषि ने कहा तो माता अरुन्धति बोली कि विश्वामित्र ने आपके शिष्य को मृत्यु दंड दिया है, आपको भी दंडित करने के लिए सदैव तत्पर रहता है, अनुचित वाक्य उच्चारण करता है, आप उनकी प्रंशसा कर रहे हैं। वशिष्ठ मुनि ने कहा कि देवी! मैं गुणों की प्रशंसा कर रहा हूं,

अवगुणों के रूप में जो गुणाधान हैं मैं उन गुणों का भी वर्णन कर रहा हूं। वास्तव में उनकी तपस्या, उनका अनुष्ठान बड़ा अद्वितीय माना जाता है। वाटिका में मृत्युदंड देने के लिये विश्वामित्र शान्त स्थिर थे। उन्होंने विचारा कि अरे! तुम तो बड़े धूर्त हो, पामर हो। जब अपने को धिक्कारने लगे तो देखो, नम्रता के अश्रु आने लगे। बेटा! मुझे स्मरण है कि महाराजा विश्वामित्र जो विश्व का मित्र बनने के लिए चले थे, वह वशिष्ठ के चरणों में ओतप्रोत हो गए। वशिष्ठ मुनि ने कहा कि ब्रह्मर्षि! आओ, मेरे हृदय से आलिंगित हो जाओ। उस समय उन्होंने विश्वामित्र जी को ब्रह्मर्षि की उपाधि से अलंकृत किया और कहा कि ब्रह्मर्षि उसे कहते हैं, जिसमें नम्रता का अंश होता है। प्रीति का अश्रु नम्रता से निर्भिमान हो जाता है, अभिमान की ही तो मृत्यु होती है। शरीरनाम भोग्तम प्रव्हा, यह शरीर तो भोगने का एक यन्त्र है और यह भोगता रहता है परन्तु अमृताम् भूः अभिमानम् ब्रव्हे, यह जो अभिमान है, यह मानव को मृत्यु के मुंह में प्रविष्ट कर देता है।

विचार आता है कि जब विश्वामित्र को राजर्षि न कह कर ब्रह्मर्षि कहा है तो वशिष्ठ मुनि ने कहा कि तुम नम्र बन गए हो। क्योंकि परमात्मा नम्र है इसलिए परमात्मा संसार को धारण कर रहा है। आचार्य नम्र होते हैं, ज्ञान के द्योतक होते हैं, इसलिए वह आचार्यत्व को प्राप्त होते हैं। जो ब्रह्म और चरी, दोनों को जानते हैं, वह ब्रह्मचारी कहलाते हैं, परमात्मा की प्रतिभा में रत्त हो जाते हैं। इसी प्रकार हमें नम्र होना चाहिए क्योंकि नम्रता में जीवन है और अभिमान में मृत्यु है इसलिए अभिमानी की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु शरीर के त्यागने का नाम नहीं है, वह शरीर का सूचक नहीं है। मृत्यु कहते हैं जिसका मस्तिष्क अभिमान से नीचे गिर जाता है। अभिमान से ही मस्तिष्क में नृत्त आ जाता है और वह अपने अभिमान से कहीं स्थिर नहीं रहता। इसलिए अभिमान को त्यागना चाहिए और अभिमान का न रहना ही जीवन है और अभिमान का रहना ही मृत्यु है।

बेटा! विश्वामित्र नम्र हो करके ऋषि के चरणों में ओतप्रोत हो गए। ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए वह सदैव तत्पर रहे। क्योंकि ब्रह्मवेत्ता तो वे थे परन्तु केवल इनमें नम्रता नहीं थी। वे नम्र बन गए और माता अरुन्धति के चरणों में भी ओतप्रोत हो गए। माता अरुन्धति बोली कि तुम अपने में महान बनो। विश्वामित्र ने जब विश्व को अपना मित्र बनाने की चेष्टा की तो वह संसार के मित्र बन गए। इसलिए वेद का मन्त्र और महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे ब्रह्मचारियो! तुम याग करना चाहते हो तो तुम्हारे नौ द्वारों पर जो नौ देवता विद्यमान हैं, उनकी पूजा करो और देवत्व को धारण करो कि मेरे स्वरों में, मेरे श्रोत्रों में, मेरे घ्राण में सर्वत्र देवत्व प्राप्त हो जाए। प्रत्येक इन्द्रिय में देवत्व जब आता है तो द्वारों पर भी आता है। जैसे नेत्रों में विश्वामित्र बनने की, घ्राण में सुगन्धिवान बनने की प्रेरणा हमें प्राप्त होती रहती है। हम मानव जीवन में सुगन्धियों को धारण करते रहें, दुर्गन्ध को वहीं त्यागते रहें और इसी प्रकार श्रोत्रों में श्रवण करने की शक्ति विशाल बनी रहे। नौ द्वार हैं, उसके ऊपर देवता विद्यमान हैं। जहां श्रवण किया जाता है तो उस ध्वनि से ध्वनि का मिलान होता रहता है। ध्वनियों को अनन्त रूप में रात्रि में भी परमाणुओं का संघर्ष होता रहता है। उस ध्वनि को जो अपना लेता है, अपने में अपनी ध्वनि को धारण करता है, वह ध्वनिवान बन जाता है।

बेटा! मुखारबिन्दु में एक अत्रि रहता है जो ब्रह्मांड की सब वार्ता को जान लेता है। वह अत्रि, अति खाने वाला, नाना प्रकार के अशुद्ध पदार्थों को भी निगल जाता है और शुद्ध को भी निगल जाता है। पदार्थों के निगलने वाले को भौतिक रूप में अत्रि कहते हैं परन्तु आध्यात्मिकवाद में इसी को अत्रि इसलिए कहा जाता है कि अत्रि संसार की प्रत्येक वस्तु को अपने में धारण करता है और मुखारबिन्दु से उच्चारण करता है, बुद्धि युक्त हो करके, मन युक्त हो करके यह प्रकृति के सर्वत्र अंगों को जान करके उसका बखान करता है इसलिए इसे अत्रि कहते हैं। जैसे आहार करता है ऐसे ही उद्‌गीत

गाता है। मेरे पुत्रो! इसी प्रकार प्रत्येक द्वार पर ऋषिवर विद्यमान हैं। उपस्थ में चन्द्रमा का वास रहता है और चन्द्रमा ही रेतस् को धारण करता है। माता के गर्भस्थल में रेतस् को धारण करने वाला देवता नक्षत्र के आधार पर रेतस् बन करके पुत्रवान बनता है। मेरी प्यारी माता पुत्रवान् बनती है, तमोगुण से रजोगुण-सतोगुण में परिणित करती हुई अपने में सूत्र बन्धन कर देती है। इसी प्रकार यह वनस्पतियों का रस रेतस् है और यही रेतस् चन्द्रमा के रूप में पुत्रवान बन करके जगत में प्रविष्ट हो जाता है। अमृतम् पृथ्वी देवताम् भ्रमना, यह पृथ्वी देवता है। पृथ्वी को घ्राण इन्द्रियों के द्वारा ही जाना जाता है। विचार आता है कि देवाम् भूतम् देवत्वम् ब्रह्मणे वाचा:, देवतापने को धारण करके हमें संसार सागर से पार होने का प्रयास करना चाहिए।

महर्षि याज्ञवल्क्य महाराज ने ब्रह्मचारियों से कहा कि हे यज्ञदत्त! यदि तुम्हें याग करना है तो प्रत्येक इन्द्रिय के देवता और उसके द्वारों को जान करके, ऋषियों को जान करके तुम्हें देवत्व को धारण करना है। जय बनना है और अपने को अपने में धारयामि बन करके सागर से पार होना है। मेरे प्यारे! यज्ञदत्त बड़े प्रसन्न हुए और कहा कि धन्य है प्रभु! आपने हमारे में प्रकाश कर दिया है और हम प्रकाशवान बन गए। आपने यजमान बनने के लिए हमें बाध्य कर दिया है और यजमान वही होता है जो शरीर रूपी यजशाला को जान लेता है। ब्रह्मांड और पिंड की कल्पना करने वाले ऋषि-मुनियों ने इसके ऊपर बड़ा अध्ययन किया है और वेद मन्त्रों में इसका वर्णन आता रहता है। उसी को उन्होंने अपने स्वरूप में लाने का प्रयास किया है। विचार-विनिमय यह कि हमें विश्व का मित्र बनना है। जब संसार को अपना मित्र स्वीकार करेंगे तो हम भी स्वत: संसार के मित्र बन जाएंगे। संसार को, अपने को, घ्राण इन्द्रिय को, श्रोत्रों को जान करके हम देवत्व को प्राप्त हो जाएंगे और हम भी देवतापने को अपने में धारयामि बना सकते हैं।

विचार-विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा को जानते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। यह शरीर रूपी शाला समुद्र के तुल्य कहलाती है। संसार रूपी समुद्र और इस परमात्मा की रचाई हुई यज्ञशाला को जान करके हमें सागर से पार होना है। परमपिता परमात्मा की महिमा को जानना, ऊर्ध्वा में गमन करना और प्रत्येक इन्द्रिय के ऊपर जय होना हमारा कर्त्तव्य है। परमपिता परमात्मा को जानते हुए नम्रता हमारे अन्तर्हृदय में हो जाएगी। क्योंकि **परमात्मा नम्र है इसलिये मानव को नम्र होना है।** माता नम्र है, पुत्र को भी नम्र होना होगा। सर्व जगत् एक नम्रता में ही अपनी-अपनी उपाधियों से अलंकृत होता रहा है। वशिष्ठ ने विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि अलंकृत किया और अपने को अंलकृत पा करके विश्वामित्र ने वशिष्ठ के चरणों की वन्दना की और कहा वन्धनाम् ब्रह्मा वरुणम्। हे ब्रह्मचारियो! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ में परिणित हो जाओ। बेटा! देखो यजम् ब्रह्म यजम् ब्रह्म, याग अपने में बड़ा पूर्णत्व को प्राप्त होता रहा है। इसके ऊपर ऋषि-मुनियों ने बड़ा अध्ययन किया है। सार्वभौम रूप दे करके अपने में जो भी सुक्रियाकलाप हैं, वह सब याग के रूप में परिणित होते रहे हैं। हम पयार्यवाची शब्दों को और अलंकारों को अलंकारिक रूप से विचारें तो हमारे साहित्य और हमारे ज्ञान की रक्षा हो सकेगी और यदि हम अंलकार को अलंकार नहीं जानेंगे और उसको साहित्य रूप में ले लेंगे तो न साहित्य ही रह सकेगा न अलंकार ही रह सकेगा। अलंकारिक को अंलकृत किया जाए, साहित्य को साहित्य में प्रवेश किया जाए तो हम विद्या की रक्षा कर सकते हैं और बुद्धिमान बन करके परमात्मा के आंगन में जाने के लिए हम सदैव तत्पर रहेंगे। यह है बेटा! आज का वाक्, अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

अमृतसर
९-१-१९९२

गोमेध याग

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वह परमपिता परमात्मा महिमावादी है, उसका अनुपम ज्ञान प्रत्येक आभा में निहित रहता है और जिसके ऊपर परम्परागतों से ही मानव अनुसंधान करता रहा है। यौगिक क्षेत्रों में यौगिकता के ऊपर प्रत्येक मानव विचार-विनिमय करता हुआ प्राणतत्व को जानने का प्रयास करता रहता है। इसको जानता हुआ वह एक पगडंडी को ग्रहण कर लेता है तो नाना प्रकार की जो अशुद्ध धारणाएं हैं, उनका क्षय हो जाता है। मानव उस पगडंडी को ग्रहण कर लेता है जिस पथ पर चलने के पश्चात मानव को और पथों की आवश्यकता नहीं रहती। वह श्रेय मार्ग कहलाता है जिसके ऊपर हम सब आचार्यजन अपना अनुसंधान अनुवृतियों में लाते रहे हैं।

बेटा! आज का हमारा वेद मंत्र गोमेध याग के ऊपर विवेचना दे रहा था। हमारे यहां भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का वर्णन है। आज मैं उन यागों में तो नहीं जाना चाहता हूं। गोमेध याग अपने में एक ऐसा याग है जिसके ऊपर राष्ट्र, समाज और यौगिकवाद निर्भर रहता है। वह इस संसार की प्रत्येक वस्तु में तत्पर रहने वाला है, इसलिए परमपिता परमात्मा को गोमेध नामों से वर्णन किया जाता है क्योंकि वह परमपिता परमात्मा हमारा वरणीय है। गोमेध

याग करने वाला याज्ञिक पुरुष जब इस याग में परिणित होता है तो मन यह चाहता है कि हम उस परमपिता परमात्मा के गोमेध याग को चिन्तन में लाते चले जाएं, चिन्तन करें। मननशील प्राणी ही इस संसार की प्रत्येक आभा से पार हो सकता है।

बेटा! हमारे यहां गोमेध याग करने वाले नाना आचार्यजन हुए हैं और राष्ट्र में गोमेध याग होते थे। गोमेध याग विद्यालयों में होता है और आचार्य अपने विद्यालय में इसे करता है। जैसे परमपिता परमात्मा ने इस संसार की रचना कर दी, इस गोमेध यज्ञशाला का निर्माण किया है जिस यज्ञशाला में परमपिता परमात्मा स्वयं ब्रह्मा है, आत्मा यजमान है, पंच महाभूत होता बने हुए हैं और सूर्य उद्गीत गा रहा है, चन्द्रमा सोम की वृष्टि कर रहा है। मेरे पुत्रो! कैसा प्रिय याग हो रहा है। नाना लोक-लोकान्तरों की माला बनी हुई है और वह माला एक दूसरे में पिरोयी हुई है, एक दूसरे में सहायक बन करके प्राणी मात्र और यह परमात्मा की रचाई हुई यज्ञशाला एक दूसरे में ओतप्रोत हो रही है। प्रभु का यह नृत कैसा विचित्र है। यहां नाना प्रकार के विज्ञानवेत्ता होते रहते हैं। वे नाना प्रकार के अणुओं-परमाणुओं को जानते हुए इस संसार का दिग्दर्शन करते रहते हैं। ऋषि-मुनियों ने एक-एक परमाणु को विभक्त करके ब्रह्मांड की सर्वत्रता का दिग्दर्शन किया है। मेरे प्यारे प्रभु का यह कैसा अनूठा विज्ञान है, यह अनन्तमयी कहलाता है। इसके ऊपर हमें विचार और मनन करना चाहिए।

बेटा! आज मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाने के लिये आया हूं जहां ऋषि-मुनि विद्यमान हो करके इसी गोमेध याग पर अनुसन्धान करते रहते थे, विचार-विनिमय करते रहते थे। एक समय ब्रह्मा, महर्षि वैशम्पायन और महर्षि भृगु के मध्य में यही गोमेध याग हुआ था। इसमें महर्षि संघकेतु ऋषि महाराजा विद्यमान थे। उन्होंने ब्रह्मा से कहा कि प्रभ! यह गोमेध याग क्या है? तो ऋषि

ने कहा कि गौ नाम तो इन्द्रियों को कहा जाता है। यहां योग के प्रकरण में गोमेध याग माना गया है। गोमेध याग किसे कहते हैं? जहां इन्द्रियों पर संचन किया जाए, **इन्द्रियों के विषय को एकत्रित करके जो योगाभ्यास में परिणित होता है, योग में रत्त हो जाता है तो वह गोमेध याग कर रहा है।** देखो, यह तो योग का विषय हुआ परन्तु **सूर्य की नाना प्रकार की किरणों को जान करके, नाना रश्मियों को जान करके वैज्ञानिक नाना यन्त्रों का जो निर्माण कर रहा है, वह गोमेध याग कर रहा है क्योंकि सूर्य की किरणों को भी गो कहते हैं।** सूर्य की किरणों को एकत्रित करता हुआ, विचार-विनिमय करता हुआ, उनका मन्थन करता है। मन्थन करके जो ऊर्जा का जन्म होता है, उसी में वह विज्ञानवेत्ता बन जाता है। एक-एक वेद मन्त्र में ब्रह्मांड की चर्चा आती रहती है, इसका मन्थन करना चाहिए।

बेटा! यह पृथ्वी जब विष उगलने लगती है, विषधर कहलाती है तो वहां उस काल में गोमेध याग किया जाता है। उस विष को पान करने वाला शिव कहलाता है। धीमी-धीमी वृष्टि जहां आरम्भ हुई तो विष समाप्त हो जाता है। यहां शिव नाम परमपिता परमात्मा को कहा गया है, सूर्य का नाम भी शिव कहलाता है। जब पृथ्वी विष उगलने लगती है तो यह सूर्य ही तो अपनी किरणों के द्वारा इस विष को अपने में धारण करता है तेजोमयी बन करके समुद्रों के द्वारा इसका समन्वय होता है और मेघों की उत्पत्ति हो करके धीमी-धीमी वृष्टि प्रारम्भ कर देता है। तो विचार क्या कि हम उस शिव की उपासना करें जो शिव वास्तव में गोमेध याग करने वाला है।

जब ब्रह्मा ने ऐसा अलंकारिक वर्णन किया तो महात्मा भृगु ने कहा प्रभु! संसार में सतोगुण रहना चाहिए तो ब्रह्मा ने कहा कि अस्वताम् लोकाम्, मानो यह एक दूसरे का पूरक कहलाता है, एक दूसरे में प्रतिभाषित होने लगता है। हे भृगु! संसार की प्रत्येक आभा में रत्त रहने वाला परमपिता परमात्मा से,

मानो कटिबद्ध रहता है। इस संसार रूपी यज्ञशाला का जिस पिता ने निर्माण किया है वह बड़ा निर्माणित है, बड़ा योजनिक है। वह विज्ञान में रत्त रहने वाला है। इस गोमेध याग को वह पूर्ण करा रहा है।

गोमेध याग राजा भी करता है। गोमेध याग वह राजा करता है जिस राजा के राष्ट्र में गो नाम पशु की रक्षा होती है, गो नाम पशु की सेवा होती है। जितना भी दुग्ध देने वाला है, धेनु है, वह गो कहा जाता है। 'गो मेधां' गो मेधा (बुद्धि) को देने वाला है। हे गो! तेरे द्वार पर आकर हम तुझे दुहते हैं, अपनी बुद्धि को वर्चोसी बनाते हैं। आयुर्वेदाचार्यों ने इसे औषध कहा है तो इसीलिये हमें गोमेध याग करना चाहिए। जो परमात्मा रचियता है वह गोमेध कर रहा है और राजा अपने राष्ट्र के सुखद के लिए गोमेध याग कर रहा है। जिस राजा के राष्ट्र में गो का ह्रास हो जाता है, गोमेध याग नहीं होते वह राजा आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट हो जाएगा। ऐसा वेद का वाक्य कहता है। बहुत पुरातन काल हुआ जब राजा के राष्ट्र में गो का ह्रास हुआ तो राष्ट्र में अग्नि प्रदीप्त हो गई इसलिए हमें गोमेध याग करना है।

बेटा! महर्षि भृगु और ब्रह्मा इत्यादि गोमेध याग पर विचार-विनिमय करने लगे। गो नाम इन्द्रियों का है। पशु का नाम गो है। सूर्य की किरणों का नाम गो है। चन्द्रमा की कान्ति का नाम भी गो कहा जाता है जो रात्रि को अपने में धारण करने वाली हो। गो प्रकाश है और तम नाम अन्धकार है। देखो, आचार्य भी अपने विद्यालय में गोमेध याग करता है। गोमेध याग का अभिप्राय यह है कि **ब्रह्मचारियों को सुमार्ग पर ले जाने वाला, ब्रह्मचारियों को सुशिक्षा देने वाला, योग में परिणित कराने वाला वह (आचार्य) भी गोमेध याग कर रहा है** क्योंकि बालक ब्रह्मचारी, बाल्य में पशु के तुल्य होता है और वह गो कहलाता है। उसे जब मेध में परिणित करा दिया जाता है तो मेध नाम विद्या का है और ब्रह्मचारी विचित्र बन करके, महान बन करके मृत्यु

को विजयी कर लेता है। यहां आचार्य अपने विद्यालय में गोमेध याग कर रहा है। जब ऋषि गोमेध याग करता है, योगीजन गोमेध करते हैं तो वह सूक्ष्म चित्त की तरंगों को, चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करके, कटिबद्ध करते, वह अपने आप में संग्रहित कर लेते हैं। वह हृदय में जब समाहित हो जाते हैं तो मन के आश्रित हो जाते है। मन और प्राण वृत्तियों में रत्त हो करके वह प्राणेश्वर के समीप जाने के लिए जब पथ को अपनाता है तो वह भी गोमेध याग कर रहा है।

दशरथ पुत्रों की शिक्षा

त्रेता के काल में वशिष्ठ मुनि महाराज ने और भी नाना ऋषि-मुनियों ने महर्षि विश्वामित्र को यह आज्ञा दी कि राजकुमारों को धनुर्विद्या प्रदान करायें तो दंडक वन में जाकर उन्होंने लगभग चार वर्ष तक उन्हें धनुर्याग का अध्ययन कराया, परीक्षा कराई। उसके पश्चात ब्रह्मचारियों ने अपने गृह को प्रस्थान किया। महाराजा विश्वामित्र, वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में प्रविष्ट हुए। वशिष्ठ मुनि को उन्होंने बताया कि अपने विद्यालय के ७१ ब्रह्मचारियों को मैंने धनुर्विद्या प्रदान की है। महात्मा वशिष्ठ ने कहा कि हे विश्वामित्र! तुम्हें कुछ काल में इनकी परीक्षा लेनी है। मैं तुमसे एक बात जानना चाहता हूं कि अयोध्या नरेश के चारों पुत्रों ने कौन-कौन सी विद्या अध्ययन की है, उसे मुझे निर्णय कराइये।

महर्षि विश्वामित्र ने बताया कि चारों राजकुमारों में राम और लक्ष्मण धनुर्विद्या में पारायण हैं परन्तु भरत और शत्रुघ्न दूसरों की आज्ञा पालन करने में तथा ब्रह्म विद्या में विशेष हैं। भरत जी में एक विशेषता है कि वह राष्ट्र का पालन करने में तथा त्याग में बड़े पारायण हैं। उनकी त्याग प्रवृत्ति रहती है, मैंने उनके मस्तिष्क का अध्ययन किया है कि वह संग्राम के योग्य नहीं हैं। शत्रुघ्न पृथ्वी के माप-दण्ड में विशेष माने गए हैं। वशिष्ठ जी ने कहा बहुत प्रियतम कि आपने उनके मस्तिष्कों का अच्छी प्रकार अध्ययन किया

है। वेद का ऋषि ऐसा कहते हैं कि जिस विद्यालय में आचार्य हो उसे आयुर्वेद का ज्ञान होना चाहिए। आयुर्वेद में इस प्रकार की विद्या आती रहती है कि जो मस्तिष्क को दृष्टिपात करते हुए यह निर्णय दे देते हैं कि यह बाल्य इस योग्य है, इनका यह विषय बन सकता है।

महर्षि विश्वामित्र राष्ट्रीय, धनुर्वेद और आयुर्वेद के क्रियाकलापों में बड़े पारायण थे। महर्षि वशिष्ठ का सबसे प्रथम विषय ब्रह्म का रहा है और त्याग पूर्वक, नम्रतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर, अध्यापन का क्रियाकलाप करते हुए वह ब्रह्मवेत्ता कहलाते थे। **ब्रह्मवेत्ता वह होता है जिसकी प्रवृत्ति ब्रह्म में स्थिर रहती है और वह ब्रह्म में अपने को स्वीकार करता है तथा अभिमान नहीं रहता।** मुझे द्रव्यपति भी नहीं बनना है क्योंकि द्रव्यों का स्वामी मेरा सखा है, मैं उस परमपिता परमात्मा के आश्रित बन जाऊं। वह क्रोध से भी दूर रहते थे क्योंकि क्रोधाग्नि को जन्म देने वाला, उग्रता चित्त के मंडल का निर्माण करने वाला यह प्रभु है तो मुझे क्रोध की आवश्यकता नहीं क्योंकि वह तो स्वयं तेजोमयी है, उग्रक्रिया वाला है। इस उग्रक्रिया ने ही तो संसार को जन्म दिया है, इस सृष्टि का निर्माण हुआ है तो उग्रता की अब आवश्यकता नहीं है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज का मार्ग श्रेय मार्ग था। वह ज्ञान और प्रयत्न में रत्त रहते थे। विश्वामित्र अपने में महान, महर्षि वशिष्ठ अपने में महान। माता अरुन्धति ऋषि की रक्षा करने वाली थी। वह वेदों का अध्ययन करती, तपस्या करती, स्वत: ब्रह्मवेत्ता बन लोक-लोकान्तरों को निहारती रहती थी, उनमें गमन करती थी। यह उनका क्रियाकलाप रहता था।

राम और लक्ष्मण का दूसरा धनुर्याग

एक समय महर्षि विश्वामित्र और वशिष्ठ मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे। कहीं से भ्रमण करते हुए महर्षि भारद्वाज अपने शिष्यों सहित उनके आश्रम में आ पहुंचे। महर्षि भारद्वाज ने महर्षि विश्वामित्र तथा वशिष्ठ

जी से कहा कि आपने अस्त्रों, शस्त्रों की विद्या राम, लक्ष्मण तथा अन्य ब्रह्मचारियों को प्रदान की है, राम का इसमें कैसा क्रियाकलाप रहा है? उन्होंने कहा राम तो पारायण हैं। लक्ष्मण भी पारायण हैं क्योंकि वह अस्त्रों-शस्त्रों की प्रतिभा को जानते हैं। मैंने उन्हें एक सोमतिती नाम की रेखा का वर्णन कराया है जो वेद के एक मन्त्र में आती है। सोममव्रही व्रतमरतः स्वाहाः वेतु सम्भवव् व्रहे वाचम् प्रवाणम् अग्नम् व्रहे रोता अस्वति। महाराज वशिष्ठ ने कहा कि मैंने इस वेद मन्त्र का अध्ययन कराया है। राम, लक्ष्मण ने उसको अच्छी प्रकार समझा है। इसका अध्ययन आपके विद्यालय में भी हो रहा है। किसी काल में उद्यालक गोत्र के शिकामकेतु मुनि के यहां भी इस रेखा का अध्ययन हुआ था। इस रेखा में यह विशेषता है कि एक परिक्रमा रूप में यह रेखा बद्ध हो जाए तो आन्तरिक जगत में रहने वाला मानव तो सुरक्षित रहता है और वाह्य जो दुरिता भाव से आता है, उसका विनाश हो जाता है, वह इस रेखा के पास आते ही भस्म हो जाता है। ऐसी सोमतिती रेखा को मैंने वर्णन कराया है। उसको लक्ष्मण बड़ी पारायणता से जान गया है। शत्रुघ्न ने उसके ऊपर कोई विचार नहीं किया, उसका मन ही स्थिर नहीं रहा। भरत ने उस रेखा को कठिन जान कर त्याग दिया और भी ब्रह्मचारियों ने इसे अवेहलना युक्त कहा है। एक वर्णित नाम के ब्रह्मचारी ने इस रेखा को जानने का प्रयास किया है। वरुण अस्त्र, अग्नि अस्त्र, ब्रह्मास्त्र में राम बड़े पारायण हो गए हैं।

भारद्वाज जी ने कहा बहुत प्रिय। अब समय हो गया है देखो, चार वर्षों तक राम और लक्ष्मण को ले जाओ, इस रघुवंश का जहां तक राज्य हो, इसकी परिक्रमा को दृष्टिपात करो। कोई ऐसा प्राणी तो नहीं है जो राजा के राष्ट्र को घात पहुंचा रहा हो। तुम गुरु बनो। वह दोनों शिष्य की परम्परा से भ्रमण करें। विश्वामित्र जी ने कहा कि प्रभु! जब मैं धनुर्याग के लिये राजा दशरथ के यहां पहुंचा तो उन्होंने अपने में मोह प्रकट किया था। राजा मोह

करते हैं और इसका कारण कि बड़े प्रयत्न से इन शिशुओं का जन्म हुआ है। उन्हें मोह आता है, यह मोह राष्ट्र के लिए प्रिय नहीं है। महर्षि वशिष्ठ जी बोले कि वह तुम्हारी वार्ता स्वीकार तो कर लेते हैं। विश्वामित्र जी ने कहा कि प्रभु! करते हैं, राजलक्ष्मियां भी करती हैं परन्तु राजा के हृदय से कुछ ऐसा आभास मुझे प्रतीत हुआ है। उन्होंने कहा कोई बात नहीं। एक स्थलि पर राष्ट्र है और एक स्थलि पर राजा का मोह है। राष्ट्र के प्राणी की रक्षा करने के लिए, उसमें अताताई न रहना राजा के मोह के समक्ष सर्वोपरि है। राजा का मोह कोई विशेष नहीं होता है। वशिष्ठ जी ने कहा जाओ, तुम उन दोनों राजकुमारों को ले आओ।

भारद्वाज मुनि बोले कि मैं भी गमन करता हूं। मैं भी विज्ञानशाला में रत्त रहता हूं। मैंने भी श्रवण किया है कि इस समय राजा रावण के राष्ट्र में रूढ़िवाद छा गया है। जिस राजा के राष्ट्र में रूढ़िवाद आ जाता है, उसमें स्वार्थपरता आ जाती है और स्वार्थ होने पर वह आक्रमण कर सकता है। कुछ समय हुआ मैंने श्रवण किया है कि महाराजा सम्पाती के राष्ट्र को रावण ने अपना लिया है तथा सम्पाती और उनके विधाता गरुड़ को उन्होंने यन्त्रों के द्वारा अन्तरिक्ष में प्रवाहित कर दिया है। मैंने श्रवण किया है कि गरुड़ जी तो एक स्थान पर अपना निवास स्थान करने लगे हैं और सम्पाती समुद्र तट पर शान्त मुद्रा में विद्यमान हो गए हैं। उनके राष्ट्र का पालन अक्षय कुमार करते हैं। इस अयोध्या राष्ट्र पर उनका आक्रमण न हो जाए। भारद्वाज जी ने यह कहा कि राजा रावण के राष्ट्र में रूढ़िवाद है क्योंकि जब राष्ट्र में शासक प्रिय नहीं होता तो वहां रूढ़िवाद पनपा करता है। वह रूढ़िवाद समाज का, मानव का ह्रास कर देता है, रक्त भरी क्रान्ति को ला देता है। वह स्वार्थपरता में आ कर प्रियता-अप्रियता को नहीं विचारता है। महर्षि विश्वामित्र जी ने भी इस वाक्य को स्वीकार कर लिया।

बेटा! यहां से विश्वामित्र जी भ्रमण करते हुए अयोध्या पहुंचे। अयोध्या में यह चर्चायें हो रही थीं कि आज महर्षि विश्वामित्र का आगमन हो रहा है, वह बड़े महान प्रियतम हैं। वह महाराजा दशरथ के द्वार पर पहुंचे। राजा दशरथ ने उन्हें आसन दिया। राजस्थली त्याग दी। आइये भगवन! विराजिये। क्योंकि राजा से ऊर्ध्वा में आध्यात्मिक और जो समाज का नि:स्वार्थ क्रियाकलाप करने वाला होता है, वह राजा से प्रबल होता है, उसकी भावना राजा से प्रिय होती है। महर्षि विश्वामित्र तपस्वी थे, आत्मवेत्ता थे, वह राष्ट्र के महापुरोहित थे जो राष्ट्र में सदैव सुखद की कामना करते रहते थे कि सब राष्ट्र प्रियता को ग्रहण करना चाहिए। राजा ने नतमस्तक होकर कहा कि प्रभु! राष्ट्र में आप बिना सूचना के पधारते हैं यह हमारा कितना दुर्भाग्य है। प्रभु! ऋषि का आगमन हो और उसे वाहनों द्वारा न लाया जाए तो राष्ट्र के ऊपर एक प्रकार का भार होता है। महर्षि विश्वामित्र बोले कि कोई बात नहीं राजन्! यह तो हमारा कर्त्तव्य है, हमने तो अपने जीवन को इस प्रकार निर्माणित किया है जिस प्रकार प्रभु का राष्ट्र है। प्रभु का राष्ट्र ऐसा है जिसमें प्रभु विद्यमान हैं परन्तु वह उससे पृथक हैं। हमने अपनी स्थलि को त्याग दिया है, राष्ट्रीयता को त्याग दिया है, हमने तप करके ब्रह्मवेत्ता की उपाधि को प्राप्त किया है। उस ब्रह्मवेत्ता की उपाधि से भी पूर्व हमारे बाल्यकाल के संस्कार अस्त्रों-शस्त्रों में निर्माण के थे, वह हमारे समीप हमारे अन्त:करण में विद्यमान रहते हैं। तो हे प्रभु! मेरा तो यह क्रियाकलाप चलता ही रहता है, मेरी इच्छा तो यह है कि इसके ऊपर आप पश्चाताप न कीजिए। राजा ने कहा कि प्रभु! क्या पान करोगे? उन्होंने कहा कि जो इच्छा हो। वह उन्हें अपने राष्ट्रगृह में ले गए। सर्वत्र देवियां विद्यमान हो गयीं और नाना प्रकार के पदार्थों को पान कराया और वह वाक्य तो उन्होंने पूर्व ही उच्चारण कर दिया था कि मैं राम-लक्ष्मण को लेने आया हूं और राष्ट्र में भ्रमण करने के लिये और दैत्य प्रवृत्ति समाप्त करने के लिए मैं वही धनुर्याग पुनः कर रहा हूं।

माता कौशल्या ने कहा कि कहो राजन! आप दोनों में क्या-क्या चर्चायें हो रही हैं, क्या विवाद हो रहा है? उन्होंने कहा कि हे देवी! हे पुत्री! मैं राम, लक्ष्मण दोनों को अपने साथ ले जाना चाहता हूं क्योंकि मैं पुन: से धनुर्याग कर रहा हूं। एक धनुर्याग तो मैंने उनके बाल्यकाल में किया है जो महर्षि वशिष्ठ और ऋषि-मुनियों की आज्ञा से किया है। अब मैं एक याग और करना चाहता हूं जो सम्पन्नता को प्राप्त करके राष्ट्र को अपने में सम्पन्न बना सके। माता कौशल्या और सब देवियों ने प्रसन्न होकर राजा से कहा कि हे प्रभु! आप मोह क्यों करते हैं? उन्होंने कहा कि देवी! मैं मोह नहीं कर रहा हूं। मैं इसलिए मोह करता हूं कि वह बाल्य है, किशोर हैं। किशोर वन में जायेंगे, उन्हें नाना प्रकार का कष्ट होगा क्योंकि ऋषि तो त्यागपूर्वक होते हैं। देवी ने कहा कि हे राजन! तुम्हें प्रतीत है कि राजकुमारों का मोह तो यह जानो कि राष्ट्र की मृत्यु हो जाना है। क्योंकि जब राजा मोह में, ममता में, सहवास में परिणित होने लगता है तो जानो कि उस राजा विनाश और राष्ट्र का दुर्भाग्य बन जाता है। इसे राष्ट्र का दुर्भाग्य न बनाइये। जैसे ऋषि इन्द्रियों को जय करके अपने जीवन को तपों में व्यतीत कर रहे हैं, इसी प्रकार राजकुमारों को भी इन्द्रियों से जय होना चाहिए। हे राजन! दोनों किशोरों को ऋषि को प्रदान कीजिये। उनकी आज्ञा पालन हो गई। दोनों पुत्रों को लाया गया।

राम और लक्ष्मण, दोनों को माता कौशल्या ने कहा कि हे पुत्रवत! जाओ ऋषि की सेवा करो क्योंकि **ऋषियों की सेवा करना ही ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना है।** जो ऋषि की तपस्या में सहायक नहीं बनता, ऋषि की आज्ञा का पालन नहीं करता वह संसार में अपने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं कर सकेगा। जाओ ब्रह्मचारी इनकी, धर्म की, मानवता की रक्षा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। ऋषि के मुखारबिन्दु से जो यथार्थ धर्म और मानवता से गुथा हुआ शब्द हो, उस शब्द को स्वीकार करना ही इनकी आज्ञा का पालन करना है और वही इनकी सेवा कहलाती है। राम, लक्ष्मण दोनों ने माता-पिता

के चरणों को स्पर्श करके कहा कि धन्य है, हमारी परम्परा तो यही रही है। माता! महापिता महाराज दिलीप जी के विचार हमने लेखनियों में बद्ध स्वीकार किये हैं। वह भी महान तपस्वी थे तथा भयंकर वनों में नन्दिनी की रक्षा करते थे। हम ऋषि के साथ तपश्चर्य बन करके अवश्य इनकी आज्ञा का पालन करेंगे।

महर्षि विश्वामित्र पुनः दंडक वन में उन्हें उसी आश्रम में ले गए जहां उन्होंने अस्त्रों-शस्त्रों का अध्ययन किया था। जैसे ही उनका वहां गमन हुआ तो महर्षि भारद्वाज, सुकेता और कबन्धि, तीनों ने मिलन करने को आश्रम में प्रवेश किया और वेद की आख्यिकायें प्रकट कीं। महर्षि भारद्वाज बोले कि हे राम, लक्ष्मण! तुम धनुर्वेद में इतने पारायण हो जाओ जिससे तुम रूढ़िवाद को समाप्त करके एकोकीवाद का प्रसार कर सको। उन्होंने यह वाक्य स्वीकार कर लिया। महर्षि भारद्वाज छः महीने तक वहां रहे। उन्होंने जल अस्त्र, वरुण अस्त्र तथा एक ऐसे यन्त्र का निर्णय कराया कि जिसमें विद्यमान हो करके यह जाना जाता कि पृथ्वी के गर्भ में कितनी दूरी पर कौन सा परमाणु है, कौन सा खनिज तप रहा है, कौन सा खनिज तप करके क्या-क्या कर रहा है। उन्होंने कहा कि राम! मुझे बाल्यकाल में मेरे पूज्यपाद गुरुदेव इस प्रकार का अध्ययन कराते रहे हैं। एक मेरा यन्त्र है जिसमें विद्यमान हो करके हम लोक-लोकान्तरों की यात्रा करते हैं।

भारद्वाज मुनि बोले कि तब मैं तत्व मुनि महाराज के द्वारा अध्ययन करता था तो ब्रह्मचर्य काल में ही मैं विज्ञान के वांग्मय में प्रवेश हो गया था। लोक-लोकान्तर में मैंने अपने यन्त्रों के द्वारा उड़ान उड़ी है। इन यन्त्रों का निर्णय कराने के लिये मैं तुम्हारे समीप आया हूं। देखो, यह यान जब पृथ्वी से उड़ान उड़ता है तो यह सबसे प्रथम चन्द्रमा में जाता है, चन्द्रमा से उड़ान उड़ कर बुध में जाता है, बुध से उड़ान उड़ कर शुक्र में चला जाता है, शुक्र से उड़ान

उड़ कर मंगल में चला जाता है, मंगल से उड़ान उड़ कर रोहिणी मंडल में प्रवेश कर जाता है। रोहिणी मंडल से उड़ान उड़ कर मृचिका मंडल में प्रवेश कर जाता है। मृचिका मंडल से उड़ान उड़ कर वशिष्ठ मंडल में प्रवेश कर जाता है। वशिष्ठ मंडल से उड़ान उड़ कर अरुन्धति मंडल में चला जाता है। अरुन्धति से उड़ान उड़ कर कृतिका मंडल में चला जाता है। कृतिका मंडल से उड़ान उड़ कर पुष्य नक्षत्र में चला जाता है, पुष्य नक्षत्र से उड़ान उड़ कर स्वाति वाचकेतु मंडल में प्रवेश हो जाता है, वाचकेतु मंडल से उड़ान उड़ कर सौर मंडल में प्रवेश हो जाता है, सौर मंडल से उड़ान उड़ कर यह मूल की आभा में प्रवेश कर जाता है। जब मूल कृतिका मंडल से उड़ान उड़ता है तो यह रोहिणी में प्रवेश हो करके, भू लोकों का भ्रमण करके यह यान पुनः जहां से उड़ान उड़ता है वहीं स्थिर हो जाता है। जब भारद्वाज ने यह वर्णन कराया तो राम, लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए और अपने में ज्ञान का, विज्ञान का अध्ययन करने लगे। यौगिकवाद का अध्ययन उन्होंने बाल्यकाल से ही किया था। एक यन्त्र हमारे यहां इन्द्रेश्वर यन्त्र कहलाता है जिसमें विद्यमान हो करके संग्राम भी करते रहते हैं। वह अन्तरिक्ष में भी उड़ान उड़ता रहता है।

बेटा! यह तो साहित्य है, जब उनके क्रियाकलाप स्मरण आते हैं तो हृदय गद्‌गद् हो जाता है और मैं यह कहता हूं कि विद्यालय पवित्र होने चाहियें। गोमेध याग कौन कर रहा है? गो नाम प्रकृति का है और मेध में अन्तर-हृदय की प्रकृति को लेकर जब नवीन-नवीन यन्त्रों का निर्माण करता है या वह जब आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता है तो वह गोमेध याग कर रहा है। **विद्यालयों में गोमेध याग होते हैं। अन्धकार से प्रकाश में लाने का नाम गोमेध याग कहलाता है।** जो गोमेध याग करता है वही तो वैज्ञानिक है, वही तो योगी है, वही तो राजा है। गो नाम प्रजा का है, मेध नाम राजा का है। जो प्रजा को अन्धकार से प्रकाश में लाता है। वही तो राजा गोमेध याग

करता है। गोमेध याग करने वाला बड़ा विचित्र कहलाता है। गो की रक्षा जिस राजा के राष्ट्र में होती है वह राष्ट्र पवित्र होता है।

आज मैंने वर्णन कराया कि रावण के राष्ट्र में रूढ़िवाद आ गया था। परम्परागत में ऋषियों ने भी यह वर्णन कराया कि रावण दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण कर रूढ़िवाद में प्रवेश कर सकता है, इसीलिये ऋषियों ने राम-लक्ष्मण को धनुर्याग में परिणित कराया, उनको अध्ययन कराया। **जो ब्रह्मचारी जिस विषय का है उसी में उसको निर्धारित करने का नाम विद्यालय में गोमेध याग कराना है।** वाणिज्य करने वाला वाणिज्य विद्या का अध्ययन करता है। जो गोमेध याग करना जानता है वह गोमेधी है। उसे विज्ञानवेत्ता बना दिया जाता है। जो कर्मकांड में पारायण हो उसे पांडित्य की आभा में परिणित करा दिया जाता है। जैसे परमात्मा का गोमेध याग हो रहा है, ऐसे ही मानव के विचारों में गोमेध याग होना चाहिए, ऐसे राष्ट्र में गोमेध याग होना चाहिए। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह कि राम, लक्ष्मण उसी दंडक वन में गोमेध याग में पुनः परिणित हो गए और सर्वत्र राष्ट्र का भ्रमण करते देखते थे कि हमारे राष्ट्र में कोई कुचरित्र तो नहीं है, उसको शिक्षा देते। अब आज का हमारा वाक्य समाप्त, शेष चर्चायें तो कल ही प्रकट कर सकेंगे। अब वेद का पठन-पाठन होगा, इसके पश्चात वार्ता समाप्त।

अमृतसर
४-८-१९८७

कन्या याग

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। जितना भी यह जड़ जगत अथवा चेतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्मांड के मूल में प्राय: मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है,प्रत्येक वेद मन्त्र ऐसे उस परमपिता की गाथा गा रहा है, उसकी महिमा का गुणगान गा रहा है अथवा उसके गुणों का वर्णन कर रहा है जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है, माता का वर्णन कर रहा है, जिस प्रकार यह पृथ्वी ब्रह्मांड की गाथा गा रही है अथवा ब्रह्मांड का वर्णन कर रही है। जिस भी काल में ऋषि-मुनियों ने अथवा वैज्ञानिकों ने इसके सन्दर्भ में गम्भीर चिन्तन प्रारम्भ किया है तो एक चेतना दृष्टिपात आती रही है और उस चेतना को जानने के लिए प्रत्येक मानव परम्परागतों से अनुसन्धान करता रहा है।

हमारे यहां नाना प्रकार की अग्नियों का चयन करने वालों ने इस अग्नि के गर्भ में विद्यमान हो करके उस प्रभु का दिग्दर्शन किया है। आपो में प्रवेश हो करके आपोमयी ज्योति को निहारते-निहारते अग्निमय स्वरूप बनाने के पश्चात उसमें प्रभु का दिग्दर्शन प्राय: विचारक को दृष्टिपात हुआ है। हमारे यहां भिन्न-भिन्न प्रकार की उड़ान उड़ने वालों ने नाना प्रकार के यागों की

चर्चाएं की हैं अथवा उड़ाने उड़ी हैं। यहां संसार में प्रत्येक शुभ कर्म का नामोकरण यागों में चयन किया है और यह कहा है कि **जितना भी शुभ कर्म है, चिन्तनीय कर्म है, जिसमें पूर्णता प्राप्ति होती है उस सर्वत्र का नामोकरण याग में परिणित होता रहा है।** मैं इस सम्बन्ध में कोई विवेचना नहीं देना चाहता हूं। आज का हमारा विचार-विनिमय यह कि वेद-मन्त्र क्या कह रहा है, अथवा वैदिक ध्वनि हमें क्या कहती है, हमें किस मार्ग के लिए प्रेरित करती है ? पुनरुक्तियां, विचारों का उद्घोष करना चाहते हैं। उस प्रेरणा को ले करके हम अपनी आत्मा में परिणित होना चाहते हैं। बेटा! हमारे यहां ऋषि-मुनियों ने परम्परागतों से यागों का वर्णन किया है। कन्या यागाम् ब्रह्मवाचो देव:। एक समय महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने भंयकर वनों में विद्यमान हो करके यागों का वर्णन करना प्रारम्भ किया। उन्होंने जहां अग्निष्टयोग याग, वाजपेयी यागों का वर्णन किया वहां कन्या याग का भी वर्णन किया है।

महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कन्या याग के सम्बन्ध में अपनी लेखनी बद्ध करते हुए कहा कि कन्याम् यागाम भवते देव: अस्वाम ब्रह्म वाचो दिव्यगत:। उन्होंने इस वेद मन्त्र को ले करके जहां कन्या याग का वर्णन किया है, वहां उन्होंने गार्हपथ्य नाम की अग्नि का भी चयन किया है। मुनिवरो! **गार्हपथ्य नाम की अग्नि और कन्या याग एक ही सूत्र के मनके हैं,** दोनो एक ही सूत्र में सूत्रित हो जाते हैं। कन्या याग का अभिप्राय यह कि कन्याम् देव: लोकाम् वाजप्रभिवतो देव:। वेद का मन्त्र कहता है कि जिस समय देवलोक में इसका वास होता है तो देवताजन कन्या की रक्षा करते हैं, देवताजनों में इसका वास रहता है। देव: प्रवृत्ति होती है, देवताजन ही इस ओर की, जनहित की सुरक्षा करने के लिए तत्पर हो जाते हैं, जिस प्रकार माता के गर्भस्थल में शिशु के प्रवेश होने से नाना देवता ही उस शिशु की रक्षा करते हैं। आज का वेद मन्त्र भी यह कह रहा था कि सम्भव: शिशु रुद्रा: गृहे वर्णन ब्रह्मवाचा:।

यहां वसुन्धरा सन्दर्भ में वसुन्धरा नाम माता को वर्णन किया जाता है। वसुन्धरा के भिन्न-भिन्न प्रकार के पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं, परन्तु वसुन्धरा का विशेष सम्बन्ध माता के जीवन से ही रहता है।

एक शिशु के प्रवेश से, संगतिकरण के आभास से ही माता के गर्भस्थल में नाना देवता शिशु की, बिन्दु की. रक्षा करते हैं, परमपिता परमात्मा उनके निर्माण में सहकारिता करते हैं। अग्नि ऊष्ण बनाती है, सूर्य प्रकाश देता है. चन्द्रमा अमृत देता है. प्राण वायु देता है और तारा मंडलों की माला बन जाती है। लघु मस्तिष्क, हृदय कृतिकः, नाना प्रकार के मस्तिष्कों का निर्माण होता है, जिसे योगीजन जानते है। इसी प्रकार कन्या जब देवलोक में होती है तो देवता उसकी रक्षा करते हैं। देवता उसके अंग-प्रत्यंग दोनो की रक्षा करते हैं। जब बाल्यकाल होता है तो देवताजन प्रत्येक इन्द्रिय के समीप विद्यमान होते हैं। महर्षि ने वर्णन करते हुए कहा कि जब परमपिता परमात्मा इस ब्रह्मांड की रचना करते हैं तो ब्रह्मांड की रचना में सप्त होताओं का वर्णन आता है। जब मानव शरीर की रचना होती है तो वहां भी सप्त ऋषियों का वर्णन आता है। जहां कन्या याग का वर्णन आता है. वहां भी सप्त होताओं का वर्णन आता है।

आज मैं केवल तुम्हें परिचय देने आया हूं। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूं, न बुद्धिमान हूं। केवल कन्या याग के सम्बन्ध में तुम्हें एक सूक्ष्म परिचय देना चाहता हूं कि देवताजन उसकी रक्षा करते उसके समूचे हृदय की आभूति बनाते हैं, उसको सन्भूति में लाते रहते हैं। इस हृदय में एक बालिका की प्रतिभा देवताओं से सम्बन्धित है। इस प्रकार कन्या का देव लोक समाप्त हो जाता है, देवताजन जब अन्तर्मुखी हो जाते हैं तो वह पितृलोक में प्रवेश हो जाती है। पितृ लोक उसे कहते हैं, जहां पितृजन उसकी रक्षा करते हैं। ब्रह्मा चरिष्यामि गतः प्रमाणः देवः हिरणय प्रथः। पितृ लोक की चर्चा करते हुए एक समय,

माता अरुन्धति ने वशिष्ठ मुनि महाराज से प्रश्न किया कि महाराज! यह पितृ लोक क्या है? उन्होंने कहा कि देवी! पितृ कहते हैं रक्षक को, जो रक्षा करता है और लोक कहते हैं गृह को, जिस गृह में रहता हो, वही तो पितरों का स्थान माना गया है। देवी ने कहा कि पितरों में कौन-कौन आता है? ऋषि ने कहा कि सबसे प्रथम परमपिता परमात्मा आता है। द्वितीय माता-पिता आते हैं, आचार्यजन आते हैं, पितृजन आते हैं। उसके पश्चात् अनेक समाज के विद्वान और भी नाना प्रतिभाषित होते रहते हैं। तो विचार विनिमय क्या कि पितरों में सूर्य देव, जड़त्व भी पितृवत माने गये हैं। जो रक्षा करता है, वही पितृ कहलाता है। इस प्रकार जब कन्या आचार्य कुल में प्रवेश करती है तो आचार्य उसकी रक्षा करते हैं। उसकी शिक्षा-दीक्षा उसको अनुशासन में लाना ही आचार्य का कर्त्तव्य होता है। ब्रह्मचारी जब याग में प्रवेश करता है तो उस समय पितरों का वर्णन आता है। आचार्य कहता है कि अनुशासन में जो आ जाता है, वह योग में सिद्ध हो जाता है वही पितृ याग में, पितरों के सरंक्षण में रह करके अपने जीवन को अनुशासित बना लेता है। पितृजनों का अभिप्राय यह है कि जिसके सरंक्षण में रह करके हम अपनी प्रवृत्तियों को ऊंचा बना दें, अपनी महत्ता में परिणित हो जाएं। परमपिता परमात्मा का यह जगत भी अनुशासन में निहित रहता है, अनुशासन में बद्ध रहता है। सूर्य है, चन्द्र है, तारा मंडल है, नाना प्रकार की अग्नि का चयन हो रहा है। एक अग्नि परमाणु के रूप में रहती है। वही अग्नि आपो में प्रवेश करती हुई प्राण सूत्र में पिरोई हुई है। इसी प्रकार प्रत्येक लोक-लोकान्तर एक दूसरे में अनुशासित हो रहा है, अनुशासन में बद्ध हो रहा है। प्रातः काल सूर्य उदय होता है, पृथ्वी अपनी परिक्रमा कर रही है, सूर्य अपने में कटिबद्ध हो करके परिक्रमा कर रहा है। नाना लोक-लोकान्तर एक दूसरे में अनुशासित हो रहा है, अनुशासन में बद्ध हो रहा है। नाना लोक-लोकान्तर, नाना प्रकार की निहारिका एक दूसरे की सहकारिता से परिक्रमा कर रही हैं।

बेटा! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में महर्षि भारद्वाज ने यहां कन्या याग का प्रसंग आया। ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी रोहिणीकेतु, ब्रह्मचारी यज्ञदत्त और कवन्धि ने अम्वातक नाम के एक परमाणु का विभाजन किया। यन्त्रों में यन्त्रित हो करके, अनुशासित हो करके जव उसका विभाजन किया तो उसमें सर्वत्र ब्रह्मांड का चित्रण अनुशासन में हो रहा था। मैं अपने विचारों को दूरी न ले जाऊं। पितृ याग का अभिप्राय यह कि अपने को अनुशासन में लाना और कन्या याग करते हुए उसकी रक्षा करना और उसको अनुशासन में लाना। अनुशासन का अभिप्राय यह है कि वह सर्वत्र विज्ञान को जानने वाली हों। मेरी पुत्री **कन्या सर्वत्र विद्या को जान करके अनुशासन में रहने वाली हो।** अनुशासन किसे कहते हैं? आत्म चिन्तन करके आत्मा के अनुकूल जो प्रवृत्तियां हैं, आत्मतत्व की जो प्रवृत्तियां हैं, उनके ऊपर अपना अधिपत्य करना, उसके अनुसार करना। इस प्रकार क्रियाकलाप करने का नाम अनुशासन कहा जाता है।

बेटा! योग में आता है कि योगम् ब्रह्मवाचः देवम् दधिहि। वेद के ऋषियों ने कहा है, वेद का सूत्र कहता है कि अनुशासन का नाम योग है। **प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को जानना, प्रत्येक इन्द्रियों को अनुशासन में लाने का नाम योग कहा जाता है।** हृदयरूपी यज्ञशाला में, हृदयरूपी यज्ञवेदी पर ज्ञानरूपी अग्नि के द्वारा इन्द्रियों के साकल्य को परिणित करने का नाम योग है। विचार विनिमय क्या कि एक माला बनी हुई है और वह मनके किसी सूत्र में पिरोए हुए हैं। जब मनके पिरोए जाते हैं तो अनुशासन एक माला के रूप में आ जाता है। इसी प्रकार यौगिक प्रतिक्रियाओं में जब हम प्रवेश करते हैं, एक-एक वेद मन्त्र के ऊपर अनुशासन की चर्चाएं करने लगते हैं, एक-एक वेद मन्त्र को विचारने लगते हैं तो सर्वत्र ब्रह्मांड एक अनुशासन में दृष्टिपात आता है, एक दूसरे में एक दूसरा मंडल पिरोया हुआ है, एक दूसरे का सहायक बना हुआ है। यह कैसा मेरे प्यारे प्रभु का अनुपम जगत है।

बेटा! मेरे प्यारे प्रभु ने जब सृष्टि का सृजन किया तो इस संसार को यज्ञवेदी के रूप में, अनुशासन के रूप में परिणित करते हुए एक ऐसे भव्य भवन का निर्माण किया, ऐसी सुन्दर ब्रह्मांड की यज्ञशाला का निर्माण किया जिसमें वैज्ञानिकजन चकित हो करके मौन हो जाते हैं। लोक-लोकान्तर के चिन्तनवेत्ताओं को एक निहारिका दूसरी निहारिका में कटिबद्ध हो रही दृष्टिपात आती है, एक निहारिका का दूसरी निहारिका से समन्वय रहता है और उसका भी एक सूत्र बना हुआ है। इसलिए वेद के याज्ञवल्क्य ऋषि कहते हैं कि हमें कन्या याग में विचारना है कि अपने को अनुशासन में लाते हुए कन्या देव लोक से पितृ लोक में प्रवेश करती है। जब पितृ लोक में प्रवेश हो जाती है तो युवावस्था को प्राप्त हो जाती है। जैसे परमपिता परमात्मा का अमूल्य जगत परिवर्तनशील होता रहता है इसी प्रकार कन्या भी परिवर्तनशील पति लोक को प्राप्त होती है और पति लोक को प्राप्त हो करके उसे याग करने का अधिकार प्राप्त होता है। इसके पश्चात वे याग करते हैं। परमपिता परमात्मा ने जैसे ब्रह्मांड की रचना की, इसी प्रकार मानव भी अपने लोक गृहस्थ की रचना करता है। विचार क्या कि वेद का वाक्य कहता है कि वह पति लोक को प्राप्त हो करके गृहस्थ ऊंचा बनाती है। पति का अभिप्राय है रक्षक, जैसे देवता रक्षक, पितृ रक्षक, इसी प्रकार पति भी रक्षक कहलाता है। जैसे परमपिता परमात्मा सर्वत्र पति कहलाता है। **पति का अभिप्राय है जो अपनेपन की धारण को ले करके, रक्षक बन करके अपनी प्रतिभा को ऊंचा बनाने वाला हो।**

अगस्त्य ऋषि

मेरे पुत्रो! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में महर्षि संदीपन ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान होकर विचार-विनिमय करते थे। संदीपन ऋषि महाराज का संस्कार महर्षि टुंडुन ऋषि महाराज की कन्या

से हुआ तो एक समय उनके हृदय में यह कामना जागृत हुई कि हम पुत्र याग करें। उन्होंने तप किया और पुत्र याग के सम्बन्ध में चिन्तन करने लगे। उन्होंने अपनी देवी से कहा कि हे देवी! मैं पुत्र याग करना चाहता हूं। बहुत प्रिय, देवी ने कहा। उन्होंने पुत्र याग किया। याग करने के पश्चात देवी के गर्भ से महान बालक का जन्म हुआ। देव पूजा करने का नाम भी याग है, अग्निष्टोम भी याग कहलाता है परन्तु यहां संसार के ऋषि-मुनियों ने, वेद के मन्त्रों में, वेद की प्रतिभा में बताया है कि सन्तान की उत्पत्ति और उसका विचार बनाना भी याग माना गया है। बेटा! स्वाति नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ तो ऋषि का नामोकरण उन्होंने अगस्त्य के नाम से वर्णित किया। **माता गर्भ में ही बालक को शिक्षा देना प्रारम्भ करती है**, जैसा मैंने अभी-अभी प्रकट किया था कि देवताजन माता के गर्भस्थल में उसकी रक्षा करते हैं।

शिशु की रक्षा करने वाले सर्वत्र देवता होते हैं। देव लोक में, पितृ लोक में इस प्रकार की प्रतिभा का प्राय: वैदिक शास्त्रों में वर्णन आता है। साहित्य को अच्छी प्रकार चिन्तन में लाते हैं तो विचार आता रहता है कि हम अपने में कितना सुदृढ़, कितना विचारधारा को महान बना सकते हैं। हमारे यहां पति के बहुत अभिप्राय हैं क्योंकि हमारे यहां जैसे लोकभाषा में, लोक प्रचलन में लौकिक पति कहलाता है, इसी प्रकार परमपिता परमात्मा जो सर्वत्र तत्वों का निर्माण करने वाला है, सबको उज्जवलता देता है, उसका भी नामोकरण पति कहलाता है, वह भी पति है। सूर्योव्रताम देवा:, सूर्य भी पति कहलाता है। पति का अभिप्राय है रक्षा करने वाला।

गृहपथ्य अग्नि का पूजन

आज हम महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के उस विचार में चले गए जहां हमें एक वेद मन्त्र स्मरण आ रहा था। हमें अपने जीवन को महान

बनाना है। हमें नाना प्रकार के यागों का चयन करते हुए गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करना है जो गृह में प्रज्वलित हो रही है। विचारों की जो अग्नि है, इस अग्नि को हम साकार रूप देना चाहते हैं। अग्नि का अभिप्राय है "विचार"। प्रत्येक हृदय में व्याकुलता लगी रहती है कि मैं स्वर्ग में चला जाऊं। स्वर्ग कहां प्राप्त होता है? स्वर्ग उस काल में प्राप्त होता है जब गृह में गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन होता है। गार्हपथ्य नाम की अग्नि का अभिप्राय यह है, पति-पत्नी एक स्थल पर विद्यमान हैं, अग्निहोत्र हो रहा है, अपने विचारों में संलग्न हैं, दर्शनों की भाषा में अपनी वाणी का प्रभाव हो रहा है, विचारों की अग्नि प्रज्वलित हो रही है, अर्थात उस अग्नि का चयन करके, विचारों का चयन करते हुए उसी के अनुकूल अपने गृह के वायुमंडल को बना लेते हैं तो वह गार्हपथ्य नाम की अग्नि कहलाती है। इससे प्रत्येक गृहवेत्ता स्वर्ग का स्वामी बनता है, गृह की आभा प्रकट हो जाती है।

विचार-विनिमय यह कि जो राजा इस अग्नि का पूजन करता है उस राजा का राज्य पवित्र बन जाता है। राजा का जैसा भी क्रियाकलाप होता है, चयन होता है उसी के अनुसार प्रजा बरतने लगती है। इसी प्रकार गृह में माता-पिता जो इस क्रियाकलाप को अपनाते हैं, चयन करते हैं, हवन कार्य में इसका चयन करके गृह स्वर्ग बन जाता है। राजा के राष्ट्र में यदि राजा तपस्वी है, महान है, गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करता है, विचार पवित्र हैं तो प्रजा भी उसके अनुकूल अनुसरण करके, राष्ट्र पवित्र बन जाता है। इसी प्रकार आचार्य कुल में ब्रह्मचारी उसके अनुकूल अनुसरण करते हैं तो वह स्वर्ग और महान पवित्र पुरी बन जाती है और दर्शनों की प्रतिभा का उसमें प्रसार होता रहता है। प्रत्येक मानव को एक दूसरे का रक्षक बन करके, तपस्वी बन करके अपने जीवन को महान बनाना है, पवित्र बनाना है जिससे मानवीयता मानव के धर्म में प्रवेश हो करके नाना प्रकार के यागों का चयन बना रहे।

मेरे पुत्रो! परमपिता परमात्मा का यह जो अमूल्य जगत है, उसके ऊपर चिन्तन-मनन करना यह हमारा अनुपम मानवीय कर्त्तव्य माना गया है, जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से अनुसन्धान करता रहता है, अन्वेषण करता रहता है, विचार-विनिमय करता रहता है, प्रत्येक आधार में अपने जीवन को पवित्र बनाता है। प्रत्येक वेद मन्त्र हमें यह कहता है कि यह जो अमूल्य परमात्मा का जगत है, यह जड़वत में, चेतन्यवत में दृष्टिपात आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्मांड के मूल में प्रभु दृष्टिपात आता है। एक-एक परमाणु एक-एक अणु में उस प्रभु का दिग्दर्शन होता रहता है। परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वत्रता में एक अनुशासन को निर्धारित किया है। यदि अनुशासन प्राणी मात्रा में नहीं रहता तो रक्तमय जीवन बन जाता है, नारकीय जीवन बन जाता है, उस नारकीय जीवन को हमें लाना नहीं है।

सर्वत्र चेतन्यवत, जड़वत में मेरा प्यारा प्रभु ही दृष्टिपात आ रहा है। प्रत्येक मन्त्र उस प्रभु की गाथा गा रहा है, उसके अनुशासन की चर्चा कर रहा है, उसकी महत्ता की चर्चा कर रहा है। मेरे पुत्रो! जैसे प्रत्येक वेद मन्त्र प्रभु की गाथा गा रहा है, इसी प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है क्योंकि माता को निर्णय कराने वाला माता का पुत्र है। मेरे पुत्रो! जैसे पृथ्वी ब्रह्मांड की गाथा गा रही है, इसी प्रकार परमपिता परमात्मा की गाथा गाते हुए प्रत्येक वेद मन्त्र के ऊपर अनुसन्धान, अन्वेषण करते हुए, अपने में चिन्तन करते हुए हम इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह है बेटा! आज का वाक्, अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

वाराणसी
२०-४-१९८४

यज्ञ और राष्ट्र

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वह परमपिता परमात्मा यजोमयी स्वरूप है और याग उसका आयतन है, उसका गृह है, उसका सदन है और वह प्राय: उसी में वास कर रहा है। उस परमपिता परमात्मा को हमारे वैदिक साहित्य में यज्ञोमयी स्वरूप माना गया है क्योंकि परमपिता परमात्मा ने इस सृष्टि का सृजन किया अथवा निर्माण किया और वह उसी में रत्त है, एक प्रकार की यज्ञशाला के रूप में इस संसार को उन्होंने कटिबद्ध किया है अथवा रचना की है। उस परमपिता परमात्मा की महिमा और उसका जो यज्ञोमयी स्वरूप है, उसको प्राय: अपने में हमें धारण करना चाहिए।

आज का हमारा वेद मन्त्र कह रहा है कि वह परमपिता परमात्मा इस संसार का रचियता है और इसी में उसका वरण किया जाता है, वह हमारा वरणीय कहलाता है। प्रारम्भ में जब परमपिता परमात्मा ने सृष्टि का सृजन किया तो परमपिता परमात्मा स्वत: ब्रह्मा बने, आत्मा यजमान बना, पंच महाभूत में से कोई उद्‌गाता बना, कोई अध्वर्यु बना, यज्ञ प्रव्हा व्रत्तम देवत्वाम, होता बन करके यह प्रिय याग हो रहा है। इसमें स्वत: अपने में

सुगन्ध आ रही है, स्वत: अपने में अपनेपन की प्रतिभा का वर्णन किया गया है तो विचार-विनिमय क्या कि यागाम भू वरुणम ब्रह्मणा व्रत्ता:, वह परमपिता परमात्मा वरणीय है, हम जब उसे वर लेते हैं तो हमारा मानवीयत्व महान और पवित्रत्व में रत्त होता है। आज के हमारे वेद मन्त्र द्वारा हमें प्रेरणा प्राप्त हो रही है कि याग के ऊपर कुछ विचार-विनिमय किया जाए। आज के हमारे वैदिक पठन-पाठन में याग के प्रति नाना प्रकार का उद्गीत गाया जा रहा है **क्योंकि उद्गीत गाना ही परमपिता परमात्मा की स्वर संगम में रत्त रहना है।** जिससे साधक अपनी साधना में, आत्मयाग में लग जाते हैं और वह अपने में अपनेपन को ही चिन्तन में लाना प्रारम्भ करते हैं।

मुझे बेटा! वह काल स्मरण आता रहता है जब महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने विद्यालय में ब्रह्मचारियों को नैतिक शिक्षा देते रहते थे। यह वाक्य मैंने बहुत पुरातन काल में भी वर्णन किया और आज भी मुझे स्मरण आ रहा है। वह ब्रह्मचारियों को शिक्षा दे रहे थे कि यागाम यजनम ब्र्व्हा व्रतम् देवत्वाम ब्र्व्हा। मेरे पुत्रो! देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज वेद का गान गाते हुए बोले कि प्रत्येक मानव को इस संसार में याज्ञिक बनना चाहिए और **जितने भी सुक्रियाकलाप हैं उन सबका नाम याग कहा जाता है।** हमारे यहां एक ही वाक्य तो नहीं कि अग्नि के मुखारबिन्द को भव्य पदार्थों को देना ही याग है। अपने पुत्र और पुत्रियों को अपने गर्भस्थल में महान विचार देते हुए माता भी याग कर रही है। जो राजा राष्ट्र को उन्नत बना रहा है, वह सुसज्जित करके अश्वमेध याग कर रहा है। यह संसार जितना भी मानवत्व में सुदृष्टिपात आता रहता है;वह सब एक प्रकार का याग है। मेरे पुत्रो! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अग्न्याधान करते हुए कहा कि हे ब्रह्मचारियो! तुम नैतिकता में प्रविष्ट हो जाओ और तुम याग में निहित हो जाओ। उन्होंने देद का मन्त्र उच्चारण किया जो कहता है कि यागाम भवितम ब्रह्मा वरुणसुत: प्रव्हा, एक याग ही अपने में ऊर्ध्वा में गमन कराने वाला है और यह याग

द्यौ में मानव की वाणी को, शब्दों को ले जाता है और द्यौ में इसकी तरंगें ओतप्रोत हो जाती हैं और वही तरंगें तरंगित हो करके वायुमंडल को पवित्र और गृह को सुगन्धित बनाती रहती हैं।

वेद का ऋषि जब इस प्रकार की वार्ता प्रकट कर रहा था तो यज्ञदत्त नाम का ब्रह्मचारी उपस्थित हुआ और यज्ञदत्त ने कहा कि हे प्रभु! मैं और सब ब्रह्मचारी यह जानना चाहते हैं कि याग हम कैसे करें? ऋषि ने कहा कि याग में नाना प्रकार की कोणों वाली यज्ञशाला का निर्माण किया जाता है। चतुष कोण, पंचम कोण में याग करो परन्तु **यज्ञशाला के आठ खम्बे होने चाहियें, उसमें चतुष खम्बे भी होने चाहियें** और उसके अन्तर्गत विद्यमान हो करके याग करना चाहिए और प्राणाय, उदानाय, समानाय, व्यानाय, अपानाय, स्वाहा कह कर प्राण की आहुति देनी चाहिए क्योंकि प्राण ही इस संसार में सखा है और यही मन को अपने में धारण करने वाला है। यह प्राण ही प्राणत्व कहलाता है, यह गति है, अभ्युदय व्रता: है, प्राण ही इस ब्रह्मांड को स्थिर किये रहते हैं। इसीलिए **हमें प्राण की आहुति दे करके और वेद मन्त्रों का उद्‌गीत गाना चाहिए।**

मेरे पुत्रो! जब ऋषि ने ऐसा कहा तो यज्ञदत्त ने कहा कि प्रभु! कहीं हमें आठ खम्बे वाली यज्ञशाला के निर्माण करने की सुविधा न प्राप्त हो तो हम याग कैसे करें। ऋषि ने कहा तुम अग्न्याधान करो, साकल्य ले करके तुम समिधा के द्वारा याग करो और प्राणाय स्वाहा:, अपानाय स्वाहा:, व्यानाय स्वाहा:, उदानाय स्वाहा:, समानाय स्वाहा: कह करके हूत करने की अपने में धारणा बनाओ और उसे क्रिया में लाने का प्रयास करो। वह अग्नम् ब्रह्मणा:, अग्नि संसार को उष्ण करती रहती है और यहां तक कि माता के गर्भस्थल में जब शिशु होता है तो वहां भी वह अग्नि ही उसे उष्ण बना करके पनपाती रहती है। इसलिए अग्नि का ध्यान करो और समिधा के द्वारा, साकल्य के

द्वारा अग्नि को चेतना बना करके हूत करो क्योंकि देवत्व देवानाम् भू वरणं ब्रह्मा:, वह देवता कहलाता है। अग्नि देवताओं का मुख है, उसके मुखारविन्द में नाना प्रकार का साकल्य और समिधा को प्रदान किया जाए।

यज्ञदत्त ब्रह्मचारी बोले कि हे प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूं कि यदि कहीं अग्नि और साकल्य-समिधा भी न हों, तो हम याग कैसे करें? ऋषि ने कहा कि हे ब्रह्मचारी! वेद का एक मन्त्र कहता है- अग्नाम् वरणं महव्रति देवत्वाम आपां ब्रव्हे आपां रुद्रा: आपां गतम् ब्रह्मा: वरणस्ते। देखो, कहीं अग्नि भी नहीं, साकल्य भी नहीं है और समिधा भी नहीं हैं तो जल से उसका प्रोक्षण करो, अञ्जलि में जल लेकर कहो कि प्राणाय, उदानाय, समानाय, व्यानाय, अपानाय स्वाहा, इस प्रकार तुम हूत करने के लिए तत्पर हो जाओ।

ब्रह्मचारी यज्ञदत्त ने कहा कि हे प्रभु! यह वाक्य तो हमने स्वीकार कर लिया है परन्तु हम यह जानना और चाहते हैं कि भगवन्! यदि कहीं हमें जल भी प्राप्त न हो तो हम याग कैसे करें? उन्होंने कहा कि यदि कहीं जल भी प्राप्त न हो तो पृथ्वी के रज ले करके स्वाहा कहो क्योंकि पृथ्वी हमारा देवत्व है। यह पृथ्वी वसुन्धरा बन करके रहती है। इसके गर्भ में नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थ विद्यमान होता है जिससे मानव का जीवन संचलित होता है, समाज में एक महानता का जन्म हो जाता है। जिस भी काल में संसार में विज्ञान पनपता है, उस विज्ञान के स्वरूप में पृथ्वी के कणों को जाना जाता है। उसके परमाणुओं, कणों ले करके, पृथ्वी की रज को ले करके कहो कि प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, यह उद्गीत गा करके बेटा! हूत करना चाहिए। मेरे प्यारे! यह पृथ्वी गुरुत्व है, इसकी रज को ले करके हमें हूत करना चाहिए और प्राण के समीप उसकी आभा में परिणित रहना चाहिए।

ब्रह्मचारी यज्ञदत्त ने कहा कि हे प्रभु! कहीं पृथ्वी के रज भी प्राप्त न हों तो हम याग कैसे करें? उन्होंने कहा कि यदि कहीं अग्नि भी न हो, जल भी न हो, और कहीं तुम पर्वतों के असुतों में प्रवेश हो जाओ और रज भी न प्राप्त हो तो उस समय तुम एकान्त स्थलि में अपने आसन को लगा करके कहो प्राणाय स्वाहा, हे प्राण! तू ही तो मेरे जीवन का आधार है। यदि प्राण की गति नहीं रहेगी तो मानव का जीवन शून्यत्व को प्राप्त हो जाएगा। हे प्राण! तेरा ही प्राण का स्वरूप है, तेरा ही अपान का स्वरूप है, तू ही व्यान का स्वरूप है और तू ही समान का स्वरूप बन करके उदान के क्षेत्र में प्रवेश हो जाता है। हे प्राण! तू ही तो मेरा सखा है। पंच रूपों में तेरी गतियां होती रहती हैं तो पांच गतियां और बन जाती हैं। नाग, देवदत्त, धनंजय, कुरू और कृकल यह उप प्राण कहलाते हैं। यह सब प्राणों का वृत्त हो रहा है, इसको कह करके हूत करो जिससे तुम्हारा जीवन मानवीयत्व में प्रवेश हो जाए और अवृत्तियों में रत्त हो जाए।

ऋषि अपने उद्‌गीत गाता हुआ, उच्चारण करता हुआ कहता है कि हे ब्रह्मचारियो! तुम याग करो परन्तु मन के द्वारा याग करो। मन, कर्म, वचन इन तीनों को एक सूत्र में लाते हुए, इनको अपने में धारयामि बना करके और उसके द्वारा तुम हूत करने के लिए तत्पर हो जाओ। मन से और प्राण से सम्मिलित हो करके अपना मानवीय उद्‌गीत गाते रहना चाहिए। विचारवेत्ता कहते हैं कि याग होना चाहिए परन्तु शान्त मुद्रा में विद्यमान हो करके हृदय का समावेश होना चाहिए। मन के द्वारा जब मानव याग करता है तो हृदय को उद्‌गीत रूप में बनाता यजमान का हृदय पवित्रता में रत्त रहना चाहिए। जब तू याग में परिणित हो जाता है तो तेरा दिव्यत्व द्यौ लोक को प्राप्त हो जाता है। याग के ऊपर वैशंम्पायन ऋषि ने तो बहुत ही अध्ययन किया और शिकामकेतु उद्यालक गोत्र के ऋषियों ने बड़ा अध्ययन किया है। महर्षि भारद्धाज मुनि महाराज ने भी चौबीस कोणों से ले करके द्विय कोण के याग का अध्ययन

किया है। मैं उन यागों में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूं। ऋषि-मुनियों ने इस ब्रह्मांड को मापते हुए, इसको यज्ञशाला के रूप में परिणित किया है। हमारा वैदिक साहित्य नाना प्रकार के याग वर्णित कर रहा है और उसकी प्रतिभा में प्रतिष्ठित हो रहा है।

आज का विचार केवल यह कि हम प्रत्येक रूप में याज्ञिक बनें। एक मेरी प्यारी माता के गर्भस्थल में हम जैसा शिशु है परन्तु वह याग कर रही, वह देखो, प्राण और अपान का मिलान मिला करके गर्भस्थली की आत्मा से वार्ता प्रकट कर रही है तो उस समय महान पुत्रों का जन्म होता है, राष्ट्र और समाज पवित्र बनते हैं। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि हे ब्रह्मचारी यज्ञदत्त! तुम याग करो क्योंकि **प्रत्येक दशा में तुम्हें विचारों का याग करना चाहिए जिससे वायुमंडल पवित्र हो जाए और तुम्हारे पवित्र चित्र अन्तरिक्ष में रमण कर जाएं** और द्यौ से तुम्हारे चित्र, तुम्हारे ही अन्तर्हृदय में प्रवेश हो करके तुम्हें महान बना सकते हैं।

आज बेटा! मैं याग के गूढ़तम रहस्यों में ले जाना नहीं चाहता हूं। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मचारियों को नैतिक शिक्षा देते हुए कहते हैं कि हे देवाम् ब्रह्मणे! हे गो वरुणोसुताम! तुम याग करो। हमारे वैदिक साहित्य में भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों जैसे अग्निष्टोम, वाजपेयी, अश्वमेध, अजामेध, गोमेध, पुत्रेष्टि, वृष्टि याग का भी वर्णन आता रहा है, भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन होता रहा है। परम्परा से ही वैदिक साहित्य में, मन्त्रों में नाना प्रकार के विचारणीय यागों की प्रतिभा का वर्णन आता रहा है। हमारा जीवन प्राय: यागमय होना चाहिए और याग हमारे जीवन का एक अंग होना चाहिये जिससे वायुमंडल पवित्र बन जाता है। देखो बेटा! पृथ्वी माता, वसुन्धरा के गर्भ में जो नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थ पनप रहा है उसे जानना है और जान करके विज्ञान के वांग्मय में प्रवेश होना चाहिए। परमपिता

परमात्मा ने एक ही वेद मन्त्र में ब्रह्मांड को माप दिया है क्योंकि जितनी भी रचना है, वह याग के द्वारा होती है और **याग प्रत्येक दशा में मानव की प्रतिभा को ऊंचा बनाता है, राष्ट्र को उन्नत बनाता है।** अब मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे।

महानन्द जी का प्रवचन

ओ३म देवाम् भू वरुणं ब्रह्मा वाचनमं, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! अथवा मेरे भद्र ऋषि मंडल! भद्र समाज! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे, गागर में सागर को भरण कर रहे थे। इनके उद्गार, इनके विचार हमारे अन्तःकरण को स्पर्श करने वाले हैं परन्तु आज मैं पूज्यपाद गुरुदेव के विचारों की प्रशंसा करने भी नहीं आया हूं, केवल विचार यह कि मेरा अन्तरात्मा प्राय: यागों में प्रसन्न रहता है। यागाम् भू वरुणं, यह जो पृथ्वी मंडल पर आधुनिक काल है, यह एक प्रकार का वाम मार्ग कहलाता है, जो उलटे मार्ग पर गमन करता है और जहां जिन घरों में याग होता है वहां द्रव्य का सदुपयोग संगतिकरण और दानेषु प्रवृत्तियां उत्पन्न हो जाती हैं। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह अवगत कराना चाहता हूं कि जहां हमारी यह वाणी पूज्यपाद के शरीर द्वारा जा रही है, वहां एक याग सम्पन्न हुआ है। मेरा अन्तरात्मा यजमान के साथ होता है और मैं यह कहता रहता हूं कि हे यजमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे और तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे क्योंकि द्रव्य का सदुपयोग होना ही संसार में बहुत अनिवार्य है। जहां द्रव्य का सदुपयोग होता है वहां द्रव्य का भरण हो जाता है और जहां द्रव्य का दुरुपयोग होता है तो एक समय आता है कि अप्रता व्रही, यह द्रव्य वहां से प्रस्थान कर जाता है। आधुनिक का जो काल चल रहा है, वह बड़ा विचित्र काल है। इस काल में जहां सुरा, सुन्दरी और द्रव्य की लोलुपता में यह मानव अपने में कटिबद्ध है, वहीं वह अपने में वाम मार्गी प्रथा को धारण कर रहा है।

पूज्यपाद! मैंने कई काल में कहा भी है कि विडम्बना होने से, विचारों में एक प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व आने के कारण एक मानव दूसरे मानव का भक्षक बन रहा है, रक्तमयी क्रान्ति का संचार होने जा रहा है। इसके मूल में क्या है, ऐसा क्यों हो रहा है? यह प्रश्न प्रत्येक मानवीय हृदयों में और हमारे अन्तर्हृदयों में भी प्रवेश होता रहा है। यह इसीलिये कि अधिकार और अनाधिकार को नहीं विचारा जा रहा है। जहां भी अधिकार और अनाधिकार को नहीं विचारा जाता वहां प्रायः रक्त भरी क्रान्तियां आती रहती हैं। द्रव्य की लोलुपता में मानव अपने कर्त्तव्य से विहीन हो गया है, विज्ञान का दुरुपयोग होने जा रहा है। इसके मूल में केवल वाम मार्ग की प्रथा है। हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! पुरातन काल में जब निर्वाचन प्रणाली के द्वारा ब्रह्मज्ञानी राजा का निर्वाचन होता तो ब्रह्म में निष्ठ होकर समाज को उन्नत बनाया जाता था। परन्तु जहां अधिकार-अनधिकार को नहीं विचारा जाता वहां प्रायः रक्तमयी क्रान्ति का संचार हो जाता है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का वह काल मैंने दृष्टिपात किया है जब राष्ट्र का बुद्धिमान ब्रह्मवेत्ता और जिज्ञासु, राजा का निर्वाचन करता रहा है। जब बुद्धिमान निर्वाचन करने वाला होगा तो निर्वाचन प्रणाली भी पवित्र होगी और उस समय राष्ट्र भी पवित्रता को प्राप्त होता रहेगा। मुझे पूज्यपाद गुरुदेव ने वह काल स्मरण कराया कि राम का जब राज्याभिषेक हुआ तो उस समय विवेकी पुरुषों ने उनका राज्याभिषेक किया। जब एक समय रावण का राज्यभिषेक होना था तो महात्मा कुक्कुट ऋषि महाराज, महर्षि सबरेति, महात्मा भुन्जु, वैशम्पायन, ऋषि कौटिल्य और भी नाना ऋषिवर विद्यमान थे। महात्मा पुलस्त्य ने कहा कि रावण का राज्यभिषेक करो तो ब्रह्मणेव्रतम, सभापति महात्मा कुक्कुट ऋषि महाराज अंगिरस ने कहा कि मैं इसका राज्यभिषेक नहीं करूंगा क्योंकि मैंने इसका मस्तिष्क अध्ययन कर लिया है और इसके मस्तिष्क में वह तरंगे नहीं है जो राष्ट्र को ऊंचा बना सकें। यह राजा बन

कर विज्ञान दे सकता है, यह नाना प्रकार के यन्त्र दे सकता है, अन्तरिक्ष में उड़ाने उड़ सकता है परन्तु समाज को यह चरित्र नहीं दे सकेगा, इसलिए मैं रावण का राज्यभिषेक नहीं करूंगा।

विचार कि महात्मा पुरुष अपने में जब निर्वाचन करते थे तो जो निर्वाचन के योग्य नहीं, उसको तिलांजली दी गई है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो सब जानते हैं कि यह सर्वत्र एक साहित्यिक विचारधारा है जिसे मानव को विचारना है। यदि रक्तमयी क्रान्ति को पुनः से शान्त करना है तो निर्वाचन प्रणाली का परिवर्तन होना है। जब उसका परिवर्तन हो जायेगा तो विज्ञान में विज्ञानता आ जाएगी दुरुपयोगिता नहीं रहेगी और राष्ट्र पुनः उन्नत बन सकता है। जहां मेरी पुत्रियों के अश्लील चित्रों से मानव के चरित्र के ऊपर प्रहार किया जा रहा हो देखो, यह आधुनिक काल का विज्ञान मुझे प्रिय नहीं है। महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज ने यही तो कहा था कि राष्ट्र को यदि उन्नत बनाना है तो कर्त्तव्यवाद का पालन किया जाए क्योंकि कर्त्तव्यवाद राष्ट्र को उन्नत बनाता है। जहां अधिकार की पुकार होती रहती है यदि वह अधिकार प्राप्त भी हो जाए तो उसमें मानव रक्तमयी क्रान्ति में परिणित हो जाता है, क्योंकि अधिकार को सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक कोई भी पूर्ण नहीं कर सका है। अरे मानव! तू अपने कर्त्तव्य का पालन कर, तुझे अधिकार स्वतः प्राप्त हो जायेगा क्योंकि अधिकार तो कर्त्तव्य के साथ निहित रहता है। इसलिए जहां अधिकार की पुकार ही पुकार रहती है वहां रक्तमयी क्रान्तियां आ जाती हैं और जब विज्ञान का दुरुपयोग होने लगता है तो वह ब्रह्मचर्य दूषित हो जाता है इसलिए विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए।

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को अवगत करा रहा हूं कि समाज को उन्नत बनाना है तो ब्रह्मवेत्ता राजा होना चाहिए और राजा के राष्ट्र में ईश्वर

के नाम पर नाना प्रकार की रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। जब नाना प्रकार से धर्म को रूढ़ि में परिणित किया जाता है तो एक समय आता है कि समाज रूढ़ि से रक्तमयी धारा में परिणित हो जाता है। महात्मा कुक्कुट मुनि, वैशम्पायन भारद्वाज मुनि महाराज, महर्षि कौटिल्य, अव्राहत मुनि और गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज का भी यही मन्तव्य रहा है। पूज्यपाद गुरुदेव तो कई समय उपदेश देते रहते हैं कि राजा ब्रह्मवेत्ता हो और जितने रूढ़ियों के आचार्य हैं, उन सबको एकत्रित करना चाहिए, उनका शास्त्रार्थ होना चाहिए। विज्ञान, धर्म, दर्शन के ऊपर जो विचारधारा सन्तुलित हो जाए, उसी विचारधारा को स्वीकार करके हमें अग्रणीय बनाना है। इस प्रकार राष्ट्र का कल्याण हो सकता है अन्यथा ईश्वर के नाम पर परिणित नाना प्रकार की रूढ़ियां राष्ट्र का विनाश करती हैं और वही रूढ़ियां प्रजा के वैभव को अपने में संग्रह करने वाली बन जाती हैं।

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कई कालों में कहा है,यदि राष्ट्र को उन्नत बनाना है तो उसमें धर्मज्ञ और विवेकी पुरुषों का निर्वाचन हो। जब अपठित समाज अपठित राजा को चुनता है तो वह राजा समाज का कल्याण नहीं कर सकता। वह उसी प्रकार की वृत्तियों में रत्त रहेगा। **जब राजा का आहार पवित्र बनेगा और व्यवहार में ब्रह्मज्ञान आ जायेगा तो उसी समय राष्ट्र उन्नत हो जाएगा।** मैं कोई विशेष राष्ट्र की चर्चा देने नहीं आया हूं, विचार केवल यह कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने याग के ऊपर अपना मन्तव्य दिया। मेरा अन्तर्हृदय यजमान के साथ है, हे यजमान! मेरे अन्तर्हृदय की यह पुकार है कि तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे और याग जैसे देवत्व कार्य तुम्हारे गृह में होते रहें और तुम्हारे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का भी यही मन्तव्य रहता है कि मानव को सुवृत्तियों में रत्त रहना चाहिए। मैंने याग के ऊपर इन्हें प्रेरणा दी और याग के ऊपर इनका विचार-विनिमय हुआ। राष्ट्र को उन्नत बनाना है तो राजा **ब्रह्मवेत्ता** हो

और वह रूढ़ियों के आचार्यो को एकत्रित करके, उनका मध्यस्थ हो करके वह नाना प्रकार की रूढ़ियों को विनाश के मार्ग पर ले जाए, ऐसा मेरा मन्तव्य है। पूज्यपाद गुरुदेव ने भी हमें ऐसा ही वर्णन कराया है। अब मैं पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

(गुरु जी) मेरे प्यारे ऋषिवर! अभी-अभी मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपना मन्तव्य दिया। इनके विचारों में राष्ट्र के प्रति कितनी दाह है, कितनी विडम्बना है और कितना कर्त्तव्यवाद के ऊपर बल देते हैं। वह समय भी आयेगा जब राष्ट्र और समाज अपने धर्म और मानवीयता को विचारने लगेगा क्योंकि धर्म मानव की इन्द्रियों में निहित रहता है और मानव जब इन्द्रियों के ऊपर चिन्तन प्रारम्भ कर देता है तो धर्म और मानवीयता उसके समीप आ जाती है। **जब मानव अपनी इन्द्रियों के धर्म को विचारने लगेगा कि नेत्रों का धर्म है सुदृष्टिपात करना, घ्राण का धर्म है सुसुगन्धि को ग्रहण करना, त्वचा का धर्म है सुप्रेम को ग्रहण करना और सुशब्दों को श्रोत्रों में और वाणी जब सत्य उद्‌गीत गाने लगेगी तो वह धर्मज्ञ बन जाएगा।** धर्म की मीमांसा करने वाला वेद मन्त्र यही कहता है कि प्रत्येक इन्द्रिय का जो विषय है, वह धर्म है और उस धर्म को हमें अपने में क्रियात्मकता में लाना है। यह आज का विचार अब सम्पन्न होने जा रहा है। मेरे प्यारे महानन्द जी के हृदय में परम्परा से ही एक बड़ी विडम्बना रही है, वह विडम्बना विडम्बित अप्रेहे तो यह वाक्य इनका बड़ा प्रिय है। इसी प्रकार की विचारधारा मनु वंश से ले करके बहुत क्रियात्मकता में रही है, अब का तो मुझे इतना प्रतीत नहीं है परन्तु बहुत समय दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। अब यह वाक्य समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

पीतमपुरा, दिल्ली
६-१-१९९१

परमात्मा का यज्ञरूप संसार

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। वेद ज्ञान परम्परागतों से ही मानवीय मस्तिष्को में समाहित रहा है और नाना प्रकार से इसके पठन-पाठन का वर्णन किया जाता है। हमारा यह माला पाठ रूपों में वेद मन्त्रों का उद्गीत उस प्रभु की महानता का वर्णन कर रहा है। वह परमपिता परमात्मा यज्ञमयी स्वरूप है। याग ही उसका आयतन है, उसका गृह है, उसका सदन है और वह उसी में वास कर रहा है। इसीलिए परमपिता परमात्मा को यज्ञोमयी वर्णित किया जाता है और वह याग में रत्त रहने वाला है।

आज कहीं से मुझे प्रेरणा प्राप्त हो रही है कि याग के सम्बन्ध में दो शब्द उद्गीत रूप में उच्चारण करें। परमपिता परमात्मा का रचाया हुआ यह ब्रह्मांड एक प्रकार की अनुपम यज्ञशाला है। इससे एक प्राणी दूसरे प्राणी का सहायक बना हुआ है। एक लोक दूसरे लोक का सहायक बना हुआ है। इस यज्ञशाला में वह परमपिता परमात्मा स्वयं ब्रह्मा है और आत्मा इसका यजमान है। यह जो पंचीकरण हैं, इनमें कोई उद्गाता, कोई अध्वर्यु है, कोई पुरोहित बन करके यह याग हो रहा है। मेरे पुत्रो! याग के चार प्रकार के बन्धन मान जाते हैं। सबसे प्रथम वह ब्रह्मा का बन्धन है, जो परमपिता परमात्मा संसार का रचियता है, निर्माणवेत्ता है और द्वितीय आत्मा है जो उस निर्माण किए हुए क्रियाकलाप को भोग करता है। आत्मा ही तो पंच महाभूतों का

नृत करने वाला है। आत्मा जब पंच महाभूतों के लोक में विद्यमान होता तो यह अपने में क्रियाकलाप करता रहता है। यही प्रजापति बनता है, यही इन्द्र रूप में परिणित हो जाता है, यही विष्णु के रूप में याग में परिणित हो जाता है। मेरे पुत्रो! यह आत्मा यजमान बन करके हूत कर रहा है, परमात्मा के भव्य याग में अपने जीवन को जागरूक कर रहा है। वह ज्ञान रूपी ब्रह्म अग्नि जो प्रदीप्त हो रही है, उसको चेता रहा है। इन पंच महाभूतों में उद्‌गीत गाने वाला प्राणों के सहित एक वायु है, जो ब्रह्मांड रूपी यज्ञशाला में गान गाता हुआ परमाणुओं का आदान-प्रदान करता रहता है। देखो, यज्ञशाला में अग्नि प्रदीप्त होते ही वायु आती है, उन परमाणुओं को अपने में धारण करती है और उद्‌गीत चलता रहता है। इसी प्रकार आपाम ब्रह्मे वृतम् देवा, यह जो आपो है, यही अमृत में समाहित हो करके चन्द्रमा जैसे लोकों में शीतलता प्रदान करता है और इसी का समन्यव समुद्रों में गमन करने वाला है। इस आपो को हमारे यहां ज्योतिवान कहा जाता है। यज्ञ का अध्वर्यु पृथ्वीतत्व माना गया है, जिसमें नाना प्रकार के पदार्थ हैं, वनस्पतियां परिपक्व हो रही हैं, नाना प्रकार का खाद्य, खनिज पिपादों में परिवर्तित हो रहा है। वही तो अध्वर्यु है। देखो, वह द्रव्यों का स्वामी है। वह पृथ्वी अध्वर्यु बन करके गुरुत्व के रूप में विद्यमान रहती है जिससे साकल्य बना करके, वह स्वाहा कह करके प्राणों को प्रदान कर देता है और प्राण अपने में प्राणेश्वर बन करके उसे भोक्तव्य में लाते हैं।

विचार आता रहता है बेटा! हमारे यहां परमपिता परमात्मा ने जो यह भौतिक संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया है, आज हम उस यज्ञशाला को विचारने वाले बनें। हमारे वेद मन्त्रों में कई समय से यागों का वर्णन आ रहा था। याग अपने में बड़ा विचित्रत्व तरंगों वाला है और आत्मा को उन्नत बनाता है। जीवन में एक मानव सत्यवादी है, वह सत्य उच्चारण कर रहा

है तो सत्य में याग कर रहा है। एक मानव जो नेत्रों से सुदृष्टिपात करता है, वह भी याग कर रहा है। एक मानव घ्राण से सुगन्ध ले करके उसका उपयोग करता है, वह भी याग कर रहा है। एक मानव अपनी प्रत्येक इन्द्रियों को संयम में लाता है तो वह गोमेध याग कर रहा है। यागाम भविते ब्रह्मणा वृत्म देवा:, देखो, अपने याग को सम्पन्नता के मार्ग पर ले जाना उसका कर्त्तव्य कहलाता है। आज का हमारा वाक्य कह रहा है कि हम याज्ञिक बनें और यागाम् भूतम ब्रह्मा:, याग में हम परिणित हो जाएं।

मेरे प्यारे! विचार यह आता है कि याग अपने में पूर्णता को प्राप्त होता रहा है। यह पृथ्वी के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक मानवीय मस्तिष्कों में जो क्रियाकलाप चल रहा है मानो, यह याग चल रहा है, चाहे वह ब्रह्मांड के रूप में हो, चाहे वह भौतिकवाद के रूप में हो, चाहे वह साकल्य चरू के रूप में क्यों न हो, परन्तु उनका जो विधान उनके कर्मकांड की जो पद्धति है, वह एक ही तुल्य मानी गई है जैसे परमपिता परमात्मा का यह ब्रह्मांड कर्मकांड से गुथा हुआ रहता है। इसी में परमात्मा ब्रह्मा है, आत्मा यजमान है, जो पंच महाभूत हैं उनमें कोई उद्‌गाता है, कोई अध्वर्यु है, कोई पुरोहित बन करके याग कर रहा है। पुरोहित उसे कहते हैं जो पराविद्या को देने वाला है और पराविद्या में अग्नि का व्यवधान आता है। अग्नम ब्रह्मा: देवत्वाम् ब्रहे:, देवताओं का मुख होने से अग्नि में देखो, ब्रह्मयाग की प्रतिष्ठा हो जाती है। बेटा! इसी प्रकार परमात्मा का रचा जो यह मानव शरीर है, यह भी यज्ञशाला है। नाना प्रकार के साकल्यों को ले करके हम हृदय रूपी यज्ञशाला में याग करते हैं, जिससे हृदय पवित्र होता है। जितना हृदय पवित्र होता है उतना ही मन पवित्र होता है। जितना मन पवित्र है, उतनी ही पवित्र बुद्धि है और जितने मन और बुद्धि दोनों पवित्र हैं, उतनी ही तरंगों से तरंगित होता यजमान अपने द्यौ को प्राप्त कर लेता है, प्रत्येक मानव अपने द्यौ में प्रवेश हो जाता है।

परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए ब्रह्मचारियों के मध्य में याज्ञवल्क्य मुनि महाराज का उपदेश प्रारम्भ है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि हे यजमान! तू होता बन करके आहुति दे और तू ग्यारह होताओं के द्वारा हूत कर और ग्यारह होता भी यदि तेरे वशीभूत हो गए हैं तो तू नौ द्वारों के ऊपर अपने इस ब्रह्मांड को जानने का प्रयास कर। इन नौ द्वारों में किसी द्वार का देवता जमदग्नि है तो किसी का कश्यप है, किसी का अत्रि है तो किसी का गौतम गाना गया है। इसी प्रकार यह नौ द्वार हैं और नौ द्वारों पर नौ ऋषि विद्यमान हैं। उन ऋषियों को जानने का प्रयास करो जिससे तुम्हारा याग सफलता को प्राप्त हो जाए और तुम गोमेध याग में परिणित हो जाओ, जिससे गोधन की सेवा हो सके और गोधन को एकाग्र करके तुम याज्ञिक बन जाओ। मेरे प्यारे! जब एकाग्र का प्रश्न आयेगा तो वहां इन्द्रियां आएंगी और जहां गोधन का सम्बन्ध होगा, वहां गो नाम का पशु होगा और जहां गो नाम ब्रह्मचारी कहायेगा, बेटा! वहां ब्रह्मज्ञान को गोमेध याग कहते हैं। यहां नाना प्रकार के यागों का विधान आता रहता है परन्तु आज इस सम्बन्ध में विशेषता नहीं, केवल यह कि अध्वर्यु नाम राजा का है। जो राजा अपने राष्ट्र को ऊंचा बनाना चाहता है वह अध्वर्यु कहलाता है। जैसे यज्ञशाला में एक अध्वर्यु होता है, वह द्रव्य का स्वामी बनता है, वह द्रव्य को प्रदान करता रहता है। इसी प्रकार राजा का नाम भी हमारे यहां अध्वर्यु कहलाता है जो सर्वत्र का स्वामित्व करने वाला है, जो राष्ट्र का स्वामी है। अब मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे।

महानन्द जी का प्रवचन

ओ३म देवाम् भूतम भविवरुणस्तम् देवा: वाचन् नम:। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अथवा मेरे भद्र ऋषि मंडल! अभी-अभी मेरे प्यारे पूज्यपाद गुरुदेव गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे। वे अपने विचारों से इस ब्रह्मांड को

प्राय: मापते रहते हैं और आज भी माप रहे थे। परमपिता परमात्मा को ब्रह्मा के रूप में, आत्मा को यजमान के रूप में, पंच महाभौतिकता को अपने में यज्ञशाला के रूप में इन्होंने वर्णन किया है। **नाना प्रकार के यागों का जो कर्मकांड है, वह कर्मकांड की पद्धतियां प्राय: पूज्यपाद को स्मरण रहती हैं।** मैने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा कि मैं कोई शब्द उच्चारण नहीं करूं तो उन्होंने आज मुझे पुन: से समय प्रदान किया है।

आज जहां हमारी वाणी जा रही है, वहां एक याग सम्पन्न हुआ है और जो काल चल रहा है, वह वाममार्ग का काल है। वाममार्ग उसे कहते हैं जो उलटे मार्ग पर गमन करता है। आधुनिक काल में राजा भी वाममार्गी है और प्रजा भी वाममार्गी है। जिस प्रजा में मानव सुरा-सुन्दरी में लगा हुआ है, मानो सुरा को पान कर रहा है और सुन्दरी में संलग्न है और द्रव्य को एकत्रित करने में लगा हुआ तो वह उलटे मार्ग पर गमन करता है और उसे वाममार्गी कहते हैं। राजा भी इसी प्रकार है। अभी-अभी पूज्यपाद गुरुदेव उच्चारण कर रहे थे कि जो अध्वर्यु है उसे राजा कहते हैं। राजा स्वत: अध्वर्यु बन करके अपना स्वामित्व और अपनी आभा दे करके राष्ट्र को उन्नत बनाता है और वही राष्ट्र महानता को प्राप्त हो करके अध्वर्यु का रूप धारण करता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे औरर मैं भी राजा के सम्बन्ध में अपने विचार देता रहता हूं। मेरा तो सदैव एक ही मन्तव्य रहता है, मैं यजमान को अपने हृदय की आभा को प्रकट करते हुए कहता हूं कि हे यजमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे और तेरे जीवन में सदैव महानता की प्रतिभा का जन्म होता रहे। हे यजमान! तू अमृत को पान करता रहे, यह तेरे जीवन का सौभाग्य है कि द्रव्य का सदुपयोग होता हो, देवताओं के द्वारा तेरा द्रव्य जाता हो और अग्नि के मुखारबिन्दु में तेरा द्रव्य प्रदान किया जाता हो।

राज्य संचालन

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यज्ञ को वसु कहा है क्योंकि यज्ञ ही तो बसाने वाला है, वह बसाता है। यज्ञ नहीं होगा तो मानव बसेगा नहीं। यदि सुक्रियाकलाप नहीं होगा, सुधर्म नहीं होगा तो मानव बस नहीं सकता। इसीलिए वेद का ऋषि, वेद का मन्त्र कहता है कि वसु को अपने में धारण करना हमारा कर्त्तव्य है और उसकी रचियता में जा करके क्रियात्मक बनाना, उसमें परिणित होना है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई कालों में नाना प्रकार के विचार दिये। अभी मैंने भी यही कहा कि इस समय वर्तमान में राजा वाममार्गी है। राष्ट्र में संग्रह करने की प्रवृत्ति वैश्यजन की होती है क्योंकि उनकी वितरण प्रणाली पवित्र रहती है और जब राजा संग्रह करता है तो देखो, राष्ट्र में अशान्ति हो जाती है। राष्ट्र में अशान्ति नहीं होनी चाहिए इसीलिए जब राजा को द्रव्य की आवश्यकता हो तो वह घोषित करे कि हे वैश्यजनो! मुझे द्रव्य प्रदान करो। राष्ट्र के लिए वैश्यजनों से द्रव्य ले करके राष्ट्र को उन्नत बनाते हैं और जब राजा स्वयं वैश्य प्रवृत्ति का बन जाता है, मानो व्यवसाय करने वाला बनता है तो वह राजा नहीं कहलाता, वह राष्ट्र के लिए अशान्ति ही अशान्ति का प्रतीक बन जाता है। वह राजा प्रजा को अशान्ति देता है और उससे उग्रवाद की प्रवृत्तियों का जन्म होता है। क्योंकि **उग्रवाद का प्रारम्भ राष्ट्रवाद से होता है, जब राजा वैश्यजनों से द्रव्य ले करके अपने कोष में वृद्धि करता है।** राजा के द्वारा कोष होना चाहिए, द्रव्य लेना चाहिए। मैं इसका विरोधी नहीं हूं परन्तु इसका विरोधी हूं कि जो अपने स्वार्थ के लिए, अपने लिए संग्रह कर रहा है, वह राजा पापाचार करता है, वह प्रजा में एक क्रान्ति की प्रतिभा लाने का प्रयास कर रहा है। इसीलिए राजा को चाहिए कि द्रव्य वैश्य के द्वारा हो या राष्ट्र का एक कोष होना चाहिए जिससे राज्य ऊंचा बने, पवित्रता को धारण करता रहे और अपने राष्ट्र को उन्नत बनाए।

देखो, जब कोई राजा शासन करता है तो वह शासन का प्राचार्य कहलाता है। जैसे आचार्य अपने विद्यालय को पवित्र बनाता है, ऐसे ही यह जो राष्ट्र है, वह राजा का विद्यालय है। राजा अपने विद्यालय को ऊंचा बनाने में लगा रहे और स्वयं को ऊंचा नहीं बनाएगा तो विद्यालय ऊंचा नहीं रहेगा। स्वयं राजा को ब्रह्मवेत्ता होना चाहिए और राज्य में नाना प्रकार की रूढ़ि नहीं पनपनी चाहिए। जब राजा स्वयं ब्रह्मवेत्ता नहीं रहता और ब्राह्मण जब नहीं होते तो उस राजा के राष्ट्र में ईश्वर के नाम पर नाना प्रकार की रूढ़ियां पनपती हैं, राष्ट्र में अज्ञान आ जाता है और नाना सम्प्रदाय पनप जाते हैं तो उस काल में रक्त भरी क्रान्ति के अवसरों का जन्म हो जाता है। राजा को चाहिए कि वह ब्रह्मवेत्ता बन करके, ब्रह्मज्ञान को अपना कर अपने राष्ट्र को उन्नत बनाए और राष्ट्र में द्रव्य का सदुपयोग हो। राजा के राष्ट्र में द्रव्य का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। राजा स्वयं अपनी इन्द्रियों पर जय करने वाला हो और एक महान विचार जिसमें विज्ञान और मानवता स्थिर हो जाए, उसको अपना करके अपने राष्ट्र को उन्नत बनाना चाहिए।

पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था कि राजा रावण के काल में भी नाना प्रकार के मत-मतान्तरों की प्रतिभा का जन्म हो गया था, नाना सम्प्रदाय बन गए थे। राक्षस एक सम्प्रदाय था, रावण उस सम्प्रदाय में रत्त था। मेघनाथ भी एक देवी सम्प्रदाय में रहते थे और उसमें तमोगुणी याग में परिणित रहते थे। इस प्रकार के सम्प्रदायों का जब समूह बन जाता है तो कोई महापुरुष आ करके उसे विनाश के मार्ग पर ले जाता है और राष्ट्र को उन्नत बनाता है। यदि ब्रह्मज्ञान राजा को नहीं है तो राजा राष्ट्र का अधिकारी नहीं है वह प्रजा को नेतृत्व नहीं दे सकेगा। वह प्रजा को विज्ञान में ले जा सकता है परन्तु देखो, सात्विक नेतृत्व न दे करके वह रक्त भरी क्रान्तियां उत्पन्न कर सकता है। हे यजमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे। तेरे गृह में

सदैव द्रव्य का सदुपयोग होता रहे और देवत्व अग्नि के मुखारबिन्दु में अग्नाध्यान होता रहे, ऐसा मेरा सदैव मन्तव्य रहता है। विचार केवल यह कि हे राजन्! तू अपने राष्ट्र को ऊंचा बना। इसी प्रकार राष्ट्रीयता की चर्चा मेरे अन्तर्हृदय में सदैव निहित रहती है। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से विराम चाहता हूं।

(गुरु जी) मेरे प्यारे ऋषिवर! अभी-अभी मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने कुछ विचार दिए। इनके विचारों में राष्ट्र के प्रति कितनी विडम्बना है कि मानव कैसा हो। राजा भी ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए क्योंकि वह राजा वशिष्ठ कहलाता है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने बड़े ऊर्ध्वा में अपने उद्‌गार दिये हैं और वे वेदना से युक्त उद्‌गार हैं कि राजा के राष्ट्र में ईश्वर के नाम पर नाना प्रकार की रूढ़ि नहीं रहनी चाहिएं। क्योंकि रूढ़ि ब्रह्मज्ञान से अंकित की जाती हैं, ब्रह्मज्ञान से उनका निर्णय किया जाता है तो वह निर्णय निर्णायक होता है। राजा अपने में निर्णायक बने और अपने पुरोहित के द्वारा उसको मन्थन में लाये। ईश्वर के नाम पर रूढ़ियां प्राय: विनाश के मार्ग पर ले जाती हैं, मानव समाज को समाप्त कर सकती हैं। आज का वाक्य अब सम्पन्न होने जा रहा है। आज के विचारों का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और परमात्मा के यज्ञ रूपी संसार को जानते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह संसार परमपिता परमात्मा का यज्ञमयी स्वरूप है, मानो यज्ञ उसका आयतन, उसका गृह है और वह उसी में वास करता रहता है। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

अमृतसर
१०-१-१९९२
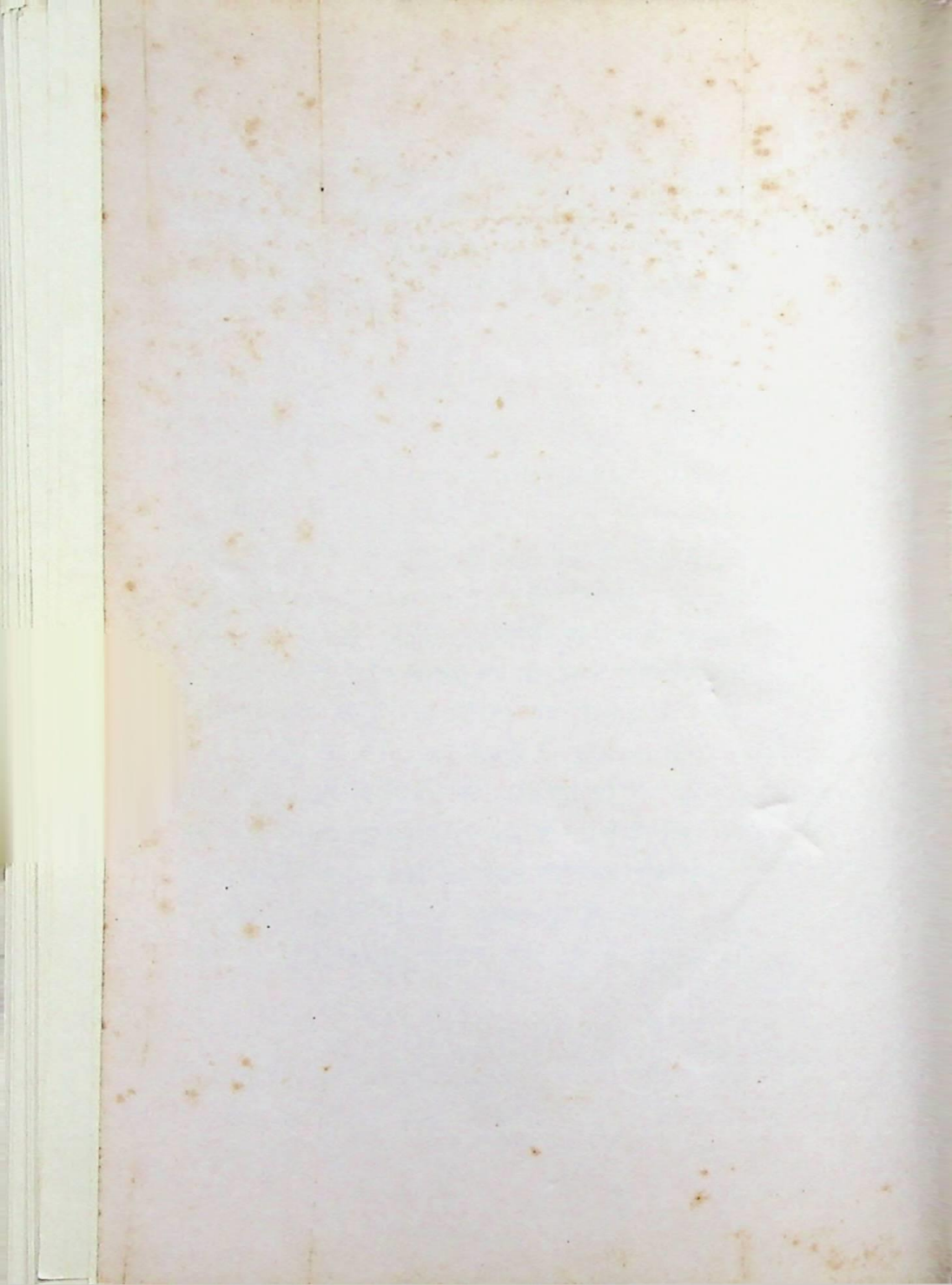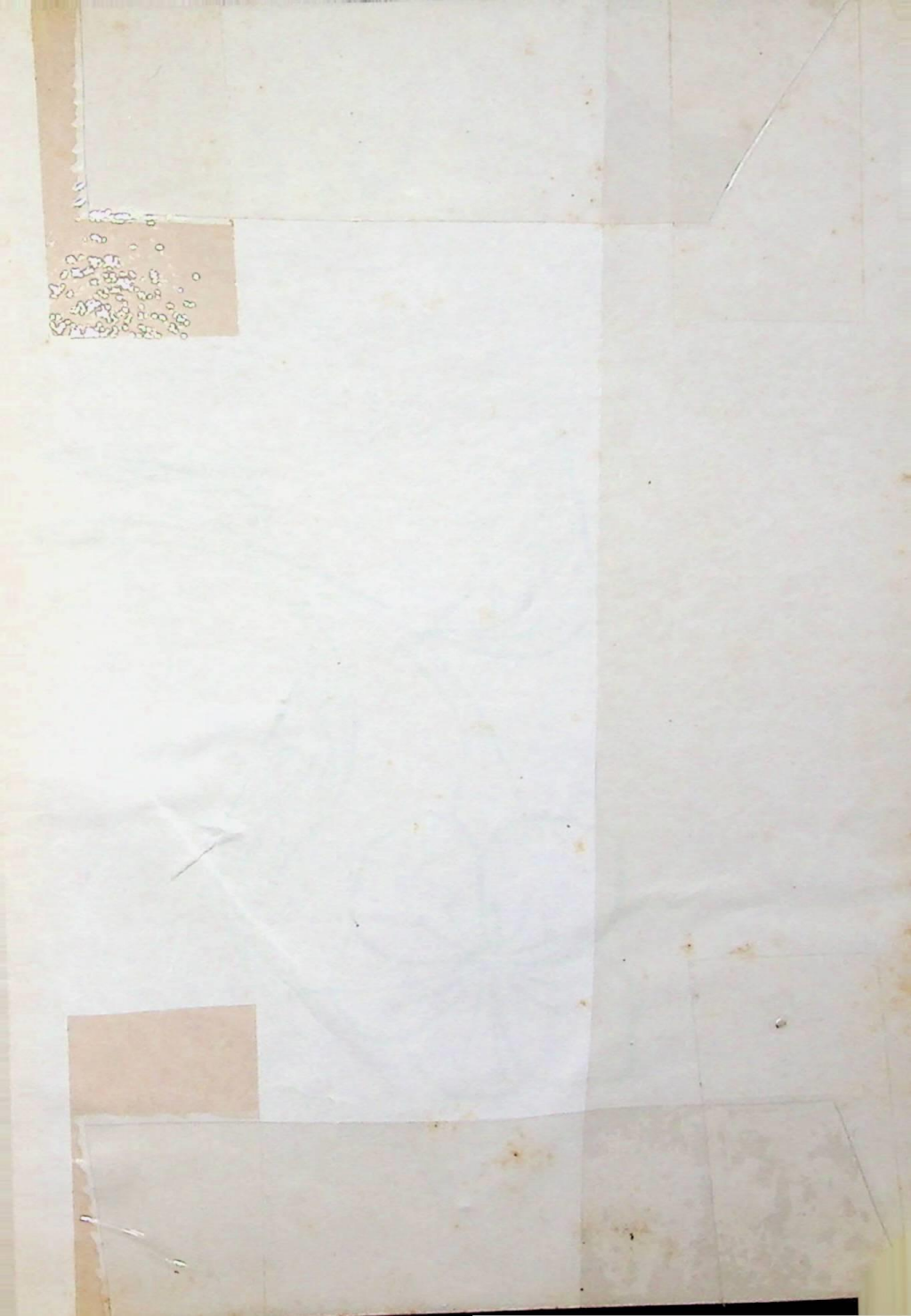
ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी इस युग के अद्भुत वेद वक्ता थे। इस जन्म में उन्हें किसी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला परन्तु वे पूर्व जन्मों की स्मृति से वेद संहिताओं का पाठ और फिर उन मंत्रों की व्याख्या करते थे। अपने प्रवचनों में उन्होंने पूर्व जन्मों में देखी अनेक घटनाओं का विवरण दिया जिनसे प्राचीन भारतीय इतिहास के कई लुप्त अथवा विकृत तथ्यों की बुद्धिसंगत वास्तविकता का पता चलता है।

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी कर्मों के भोग, आत्मा के पुनर्जन्म और अंतःकरण से जन्म-जन्मान्तरों के संचित ज्ञान के स्पष्ट प्रमाण थे। पन्द्रह अक्तूबर १९९२ को उन्होंने ५० वर्ष की अवस्था में अपने नश्वर शरीर को त्यागा परन्तु इसकी उद्घोषणा उन्होंने ३० वर्ष पहले ही ९ मार्च १९६२ को कर दी थी।

उनके कुछ महत्वपूर्ण प्रवचनों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजिकृत)

१, (प्रथम तल) गोखले मार्केट, तीस हजारी कोर्ट के पास,

दिल्ली-११००५४, फोनः २५१००७१, २९३२९०४